BED IV- CPS 21

शान्ति शिक्षा

Peace Education

शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

ISBN: 13-978-93-85740-92-3
BED IV- CPS 21 (BAR CODE)

BED IV- CPS 21

शान्ति शिक्षा

Peace Education

शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अध्ययन बोर्ड	विशेषज्ञ समिति
□**प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल** (अध्यक्ष- पदेन), निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल** (अध्यक्ष- पदेन), निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**प्रोफेसर मुहम्मद मियाँ** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), पूर्व अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय, जामिया मिल्लिया इस्लामिया व पूर्व कुलपति, मौलाना आजाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय, हैदराबाद	□**प्रोफेसर सी० बी० शर्मा** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), अध्यक्ष, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा
□**प्रोफेसर एन० एन० पाण्डेय** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, एम० जे० पी० रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली	□**प्रोफेसर पवन कुमार शर्मा** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय व सामाजिक विज्ञान संकाय, अटल बिहारी बाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल
□**प्रोफेसर के० बी० बुधोरी** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), पूर्व अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय, एच० एन० बी० गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, उत्तराखण्ड	□**प्रोफेसर जे० के० जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**प्रोफेसर जे० के० जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**प्रोफेसर रम्भा जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**प्रोफेसर रम्भा जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**डॉ० दिनेश कुमार** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**डॉ० दिनेश कुमार** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**डॉ० भावना पलड़िया** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**डॉ० भावना पलड़िया** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**सुश्री ममता कुमारी** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं सह-समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**सुश्री ममता कुमारी** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं सह-समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** (सदस्य एवं संयोजक), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** (सदस्य एवं संयोजक), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	

दिशाबोध: प्रोफेसर जे० के० जोशी, पूर्व निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

कार्यक्रम समन्वयक:	कार्यक्रम सह-समन्वयक:	पाठ्यक्रम समन्वयक:	पाठ्यक्रम सह समन्वयक:
डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**सुश्री ममता कुमारी** सह-समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**डॉ ० आद्याशक्ति राय** सह प्रोफेसर, विशिष्ट शिक्षा संकाय, शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ	**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड

प्रधान सम्पादक	उप सम्पादक
डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**डॉ० आद्याशक्ति राय** सह प्रोफेसर, विशिष्ट शिक्षा संकाय, शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

विषयवस्तु सम्पादक	भाषा सम्पादक	प्रारूप सम्पादक	प्रूफ़ संशोधक
डॉ० आद्याशक्ति राय सह प्रोफेसर, विशिष्ट शिक्षा संकाय, शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ	**डॉ० आद्याशक्ति राय** सह प्रोफेसर, विशिष्ट शिक्षा संकाय, शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ	**सुश्री ममता कुमारी** सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**श्रीमती मनीषा पन्त** अकादमिक परामर्शदाता, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

सामग्री निर्माण

प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**प्रोफेसर आर० सी० मिश्र** निदेशक, एम० पी० डी० डी०, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

© उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, 2017

ISBN-13-978-93-85740-92-3

प्रथम संस्करण: 2017 (पाठ्यक्रम का नाम: शान्ति शिक्षा, पाठ्यक्रम कोड- BED IV- CPS 21)

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पुस्तक के किसी भी अंश को ज्ञान के किसी भी माध्यम में प्रयोग करने से पूर्व उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति लेना आवश्यक है। इकाई लेखन से संबंधित किसी भी विवाद के लिए पूर्णरूपेण लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निपटारा उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय, नैनीताल में होगा।

निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा निदेशक, एम० पी० डी० डी० के माध्यम से उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय के लिए मुद्रित व प्रकाशित। **प्रकाशक:** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय; **मुद्रक:** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय।

कार्यक्रम का नाम: बी० एड०, कार्यक्रम कोड: BED- 17 पाठ्यक्रम का नाम: शान्ति शिक्षा, पाठ्यक्रम कोड- BED IV- CPS 21		
इकाई लेखक	**खण्ड संख्या**	**इकाई संख्या**
डॉ ० आद्याशक्ति राय सह प्रोफेसर, विशिष्ट शिक्षा संकाय, शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ	**1**	**1**
डॉ० सोमू सिंह सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तरप्रदेश	**1**	**3 व 4**
डॉ ० बृजेश कुमार राय सहायक प्रोफेसर, विशिष्ट शिक्षा संकाय, शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ	**1**	**5**
डॉ० पीयूष कमल पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, आई० ए० एस० ई०, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली	**2** **3**	**3** **2**
डॉ० नीलम दलाल सहायक प्रोफेसर, प्रारम्भिक शिक्षा विभाग, माता सुंदरी कॉलेज फॉर विमेन, नई दिल्ली	**3**	**3 व 5**
डॉ० स्वेता द्विवेदी सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, मिजोरम केन्द्रीय विश्वविद्यालय, आइजोल, मिजोरम	**4**	**1 व 3**
डॉ० बबिता सिंह अध्यक्ष, शिक्षा विभाग, मेवाड़ इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश	**4**	**2**
डॉ० प्रेरणा मन्ध्यान सहायक प्रोफेसर, सीमांचल मानोरिटी बी० एड० कॉलेज, कटिहार, बिहार	**4**	**4**

BED IV- CPS 21
शान्ति शिक्षा
Peace Education

खण्ड 1		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के कार्य, शिक्षा के वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य में समानता तथा अन्तर; द्वन्द्व, पुर्वाग्रह, आक्रामकता एवं हिंसा के स्रोत एवं कारण, पर्यावरणीय सरोकार, मानव एवं प्रकृति के मध्य अन्योन्याश्रित संबंध	2-23
2	इकाई: दो	-
3	व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्व; अंतरवैयक्तिक, सांप्रदायिक तथा राष्ट्रीय संदर्भ में द्वैत तथा द्वंद की अवधारणा	24-38
4	द्वंद की समझ	39-53
5	विद्यालय में जीवन का विश्लेषण: प्रतिस्पर्धा का वातावरण; शारीरिक दण्ड एवं उसके परिणाम; परिवार की भूमिका; लैंगिक भूमिका एवं रूढ़िवाद	54-66

खण्ड 2		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	इकाई: एक	-
2	इकाई: दो	-
3	संवाद: संकल्पना और उसके अनुप्रयोग (जीवन में, परिवार में, स्कूल में और साथियों में)	68-90
4	इकाई: चार	-

खण्ड 3		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	इकाई: एक	-
2	शांति के बारे में प्राचीन भारतीय विचार (बौद्ध धर्म और जैन धर्म)	92-118
3	गाँधी जी और शांति शिक्षा	119-127
4	इकाई: चार	-
5	जिददु कृष्णमूर्ति और शांति शिक्षा	128-136

खण्ड 4		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	न्याय और शांति: संविधान, संघर्ष समाधान के साधन के रूप में	138-150
2	राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक और पारिस्थितिक क्षेत्रों में चल रहे संघर्ष के अध्ययन, शान्ति के लिए सफल संघर्ष और संवाद की चल रही प्रक्रियाओं का अध्ययन	151-192
3	राष्ट्रवाद और इसकी आलोचना; युद्ध और बाज़ार; वैश्वीकरण का अर्थ और इसकाअर्थव्यवस्था, राजनीतिक, तकनीकी निहितार्थ	193-205
4	बाल्यावस्था में द्वंद विन्यासः कुछ क्षेत्रों का केस अध्ययन जहां विभिन्न प्रकार के द्वंदों ने विस्थापन, हिंसा अथवा सामाजिक अशांति की ओर प्रेरित किया	206-225
5	इकाई: पाँच	-

खण्ड 1

Block 1

इकाई -1 व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के कार्य, शिक्षा के वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य में समानता तथा अन्तर; द्वन्द्व, पुर्वाग्रह, आक्रामकता एंव हिंसा के स्त्रोतएंव कारण, पर्यावरणीय सरोकार मानव एवं प्रकृति की अन्योन्याश्रित

Functions of Education for Personal life, social relationships, National and International perspectives. Compatibility and differences in these functions; sources and causes of conflicts, prejudices, Hostility and Violence; Environmental concerns reciprocity between Humans and Nature

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के कार्य
1.4 शिक्षा के वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य में समानता तथा अन्तर
1.5 द्वन्द्व, पुर्वाग्रह, आक्रामकता एंव हिंसा के स्त्रोतएंव कारण
1.6 पर्यावरणीय सरोकार मानव एवं प्रकृति की अन्योन्याश्रित
1.7 सारांश
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व को विकसित करने वाली प्रक्रिया है। यही प्रक्रिया उसे समाज में एक वयस्क की भूमिका निभाने के लिए समाजीकृत करती है तथा समाज के सदस्य एंव एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए व्यक्ति को आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है।शिक्षा मानव विकास का मूल है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व का विकास होता है। अत: शिक्षा के कार्य इन्हें ध्यान में रखकर ही निर्धारित किये जाते है।

वर्तमान इकाई में आप व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के कार्य, शिक्षा के वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य में समानता तथा अन्तर; द्वन्द्व, पुर्वाग्रह, आक्रामकता एंव हिंसा के स्त्रोतएंव कारण, पर्यावरणीय सरोकार मानव एवं प्रकृति की अन्योन्याश्रित का अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

1. व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के कार्य को बता सकेंगे।
2. शिक्षा के वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य में समानता तथा अन्तर का विश्लेषण कर सकेंगे।
3. द्वन्द्व का अर्थ बता सकेंगे तथा इसके स्रोतों एवं कारणों की विवेचना कर सकेंगे।
4. पुर्वाग्रह, आक्रामकता एंव हिंसा के स्त्रोत एंव कारण का वर्णन कर सकेंगे।
5. पर्यावरणीय सरोकार में मानव एवं प्रकृति की अन्योन्याश्रित की विवेचना कर सकेंगे
6. मानव एवं प्रकृति की अन्योन्याश्रित को समझते हुए इस ज्ञान का अपने जीवन में प्रयोग कर सकेंगे।

1.3 व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के कार्य

संकुचित अर्थ में शिक्षा किसी समाजमेंएक निश्चित समय तथा निश्चित स्थानों (विद्यालयों, महाविद्यालय) में सुनियोजित ढंग से चलने वाली एक सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा छात्र निश्चित पाठ्यक्रम को पढ़कर अनेक परीक्षाओं को उत्तीर्ण करना सीखता है। व्यापक अर्थ में शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके

ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। शिक्षा की कुछ परिभाषाएं निन्म्वत हैं ।

- शिक्षा का अर्थ अन्त: शक्तियों का बाह्य जीवन से समन्वय स्थापित करना है- **हर्बट स्पेन्सर।**
- शिक्षा मानव की सम्पूर्ण शक्तियों का प्राकृतिक,प्रगतिशील और सामंजस्यपूर्ण विकास है- पेस्तालॉजी।
- शिक्षा व्यक्ति के समन्वित विकास की प्रक्रिया है- जिद्दू कृष्णमूर्मि।
- शिक्षा व्यक्ति की उन सभी भीतरी शक्तियों का विकास है जिससे वह अपने वातावरण पर नियंत्रण रखकर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सके- जॉन डीवी।
- मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है- स्वामी विवेकानन्द।
- शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है- महात्मा गॉधी।

सामान्यत: जब हम शिक्षा की बात करते है तो उसका अर्थ साक्षरता लगा लिया जाता है परन्तु, वास्तव में शिक्षा एक विस्तृत सम्प्रत्यय है एवं साक्षरता एक लघु सम्प्रत्यय है। शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है जबकि साक्षरता सीमित अवधि तक चलती है। शिक्षित होने से तात्पर्य है- सुसंस्कृत होना जबकि साक्षर होने का अर्थ है- पढ़ा लिखा होना। उदाहरण के लिए हम कह सकते है कि कबीर साक्षर नहीं थे कबीर शिक्षित थे। अकबर साक्षर नहीं थे शिक्षित थे।

शिक्षा के द्वारा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी का विकास होता है।शिक्षा व्यक्ति को अपने जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने योग्य बनाती है।शिक्षा मनुष्य का सामाजीकरण करती है, सामाजिक नियन्त्रण रखती है और सामाजिक परिवर्तन करती है।शिक्षा का कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। मानव या समाज का कोई ऐसा पहलू नहीं है जिस पर शिक्षा विचार न करती हो। शिक्षा के लक्ष्य व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के हितों को ध्यान में रखकर निर्धारित किये जाते हैं। वर्तमान में ग्लोबलाइजेशन का दौर चल रहा है ऐसे में शिक्षा अन्तर्राष्ट्रीयता पर भी विचार करती है। आज प्रत्येक राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एंव अन्तर्राष्ट्रीयता को स्थान दिया जाता है।

व्यक्तिगत जीवन में शिक्षा के कार्य – प्रत्येक व्यक्ति किसी समाज का सदस्य या नागरिक होता है तथा व्यक्ति के विकास से उस समाज का विकास होता है अत:प्रत्येक समाज अपने नागरिकों के व्यक्तिगत जीवन के बहुमुखी विकास की व्यवस्था शिक्षा के माध्यम से करता है।मनुष्य का शरीर समस्त प्रकार के ज्ञान ग्रहण करने का साधन है, शरीर जितना अधिक स्वस्थ होगा व्यक्ति उतना ही अधिक सीखेगा। जैसा कि **अरस्तू** ने कहा है कि, ''स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का सृजन होता है।''अत: शिक्षा मनुष्य का शारीरिक विकास करती है, उसकी इन्द्रियों का प्रशिक्षण करती है और उसकी जन्मजात शक्तियों का

विकास तथा उदात्तीकरण करती है। मनुष्य विचारो के आदान-प्रदान भाषा के माध्यम से करता है फिर चाहे वह भाषा लिखित हो, मौखिकहो या सांकेतिक हो। शिक्षा का कार्य मनुष्य को भाषा का ज्ञान कराना, उसकी मानसिक शक्तियों का विकास करना और उसे विविध विषयों का ज्ञान कराना है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज में ही उसका अस्तित्व है, अत: शिक्षा का कार्य मनुष्य का सामाजीकरण करना और उसे अपने समाज में समायोजन करने योग्य बनाना है। हर समाज की अपनी एक संस्कृति होती है तथा सभ्य समाज में हर व्यक्ति उस संस्कृति का पालन करता है। शिक्षा ही मनुष्य को अपने समाज की संस्कृति से परिचित कराती है एवं तदनुकूल आचरण करने का प्रशिक्षण देती है।

शिक्षा मनुष्य में नैतिक एवं चारित्रिक विकास करके उसमें मूल्यों का निर्माण करती है। शिक्षा मनुष्य को अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने योग्य बनाती है। शिक्षा मनुष्य को व्यवसाय में निपुण करती है और रोजी-रोटी कमाने योग्य बनाती है। शिक्षा मनुष्य को उसके देश के शासनतन्त्र से पिरचित कराकर उसे राज्य का श्रेष्ठ नागरिक बनाने में सहायता करतीहै। शिक्षा मनुष्य में धार्मिक सहिषणुता एंव आध्यात्मिक चेतना का विकास करती है।

इस प्रकार शिक्षा का मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

मानव जीवन (व्यक्तिगत जीवन) में शिक्षा के कार्य-

- शिक्षा आत्मज्ञान, आत्म अनभिज्ञता तथा आत्मवंचन को दूर करता है।
- शिक्षा मानव को पूर्ण जीवन जीने की तैयारी कराता है।
- शिक्षा मानव की समस्त योग्यताओं, क्षमताओं तथा कौशलों को प्रोत्साहन तथा पोषण देती है।
- शिक्षा व्यक्ति केा इस योग्य बनाती है कि वह विपरीत परिस्थितियों में भी सामंजस्य स्थापित कर सके।
- शिक्षा व्यक्ति में सहयोग की भावन का विकास करती है।
- शिक्षाबालक में उचित मूल्यों की स्थापना करती है।
- शिक्षा जाति, गरीबी और लैगिकता से जुडी़ परंपरागत रूढियों और पूर्वाग्रहों का अन्त करती है।
- शिक्षा जाति, लिंग, रंग,आर्थिक स्तर और कर्म का ख्याल किये बिना मावन मात्र की समानता, अधिकारों और गरिमा का सम्मान करने की भावना पैदा करती है।
- शिक्षा बालक को सौहार्द के साथ मिल-जुलकर जीने की कला सिखाती है।
- शिक्षा बालक में अंधविश्वास को समाप्त कर वैज्ञानिक अभिवृत्ति पैदा करती है।

- शिक्षा बालक में अपनेआचरण को उचित बनाए रखने और प्रभावकारी ढंग से समय का प्रबंधन करने की योग्यता पैदा करती है।
- शिक्षा बालकमें शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्वास्थ्य, चारित्रिक विकास, आध्यात्मिक विकास करती है।

शिक्षा का वैयक्तिक उद्देश्य सार्थक समाज की अपेक्षा व्यक्ति को बडा़ मानता है क्योंकि व्यक्ति के बिना समाज केारी कल्पना है। व्यक्ति के विकास से ही समाज का विकास होता है। शिक्षा का वैयक्तिक उद्देश्य नया नहीं है। प्राचीनकाल में ग्रीस, भारत तथा अन्य पाश्चात्य देशोंमें भी शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य को पमुख स्थान दिया जाता था।

सामाजिक जीवन में शिक्षा के कार्य: शिक्षा की व्यवस्था समाज में संतुलन स्थापित करने हेतु की जाती है। शिक्षा समाज का उत्थान करती है। सामाजिक दृष्टि से शिक्षा के कार्य है- समाजीकरण, सामाजिक नियन्त्रण और सामाजिक परिवर्तन। शिक्षा समाज के प्रत्येक नागरिक के शारीरिक, ऐन्द्रिय और जन्मजात शक्तियों के विकास की व्यवस्था करती है। शिक्षा समाज की भाषा एंव ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-प्रसार करती है। शिक्षा के माध्यम से समाज की संस्कृति संरक्षण, संवर्द्धन एवं स्थानान्तरण होता है। शिक्षा समाज के व्यक्तियों में सांस्कृतिक मूल्यों के विकास करती है। साथ ही समाज के व्यक्तियों में नैतिकता एवं चारित्रिक विकास करती है। समाज में प्रत्येक क्षेत्र में कार्यको सुचारू रूप से चलाने हेतु उसे क्षेत्र के विशेषज्ञ की आवश्यक्ता होती है। शिक्षा विशेषज्ञों का निमार्ण करती है। समाज की शासन प्रणाली क्या है शिक्षा इसका ध्यान रखती है तथा नागरिकों को इससे परिचित कराती है।

शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य का जन्म एवं शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ है। इसमेंव्यक्ति की अपेक्षा समाज को ऊँचा मानते है। समाजवादियों के अनुसार व्यक्ति के अपेक्षा समाज बड़ा है। अत: वे शिक्षा सामाजिक उद्देश्य पर विशेष बल देते है। इनका विश्वास है कि व्यक्ति सामाजिक प्राणी है। वह समाज से अलग रहकर अपना विकास नहीं कर सकता है। अत: उनके अनुसार व्यक्ति को अपनी वैयक्तिकता का विकास समाज की आवश्यकताओं तथा आदर्शो को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए।सामाजिक दृष्टि से शिक्षा के उद्देश्य निम्न बिन्दुओं में रख सकते है-

- शिक्षा समाजवादी समाज की स्थापना करती है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु 'जातिहीन तथा वर्गहीन समाज' की स्थापना की व्यवस्था करती है।
- शिक्षा सामाजिक कुप्रथाओं को समाप्त करती है। शिक्षा दहेज प्रथा, बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह निषेध, पर्दा प्रथा, छुआछूत, दास प्रथा इत्यादि कुप्रथाओं के प्रति बालक को जागरूक करती है।
- शिक्षा धार्मिक समस्याओं पर भी कुठाराघात करती है। शिक्षा ही आडम्बरों, छुआछूत आदि के बारे में बालक को जागरूक करती है तथा बालक धर्म एवं आडम्बर में भेद कर सके।

- समाज में शान्ति स्थापना हेतु बालक में नेतृत्व तथा अनुशासन के गुणों का विकास करती है।
- शिक्षा का सर्वप्रमुख उद्देश्य बालक को सुयोग्य नागरिकता का प्रशिक्षण देना है।

राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के कार्य –

- शिक्षा हर बच्चे में राष्ट्र के प्रति गर्व की भावना विकसित करती है।
- शिक्षा धर्मनिरपेक्षता की भावना का विकास करती है।
- शिक्षा बालक में लोकतांत्रिक संस्कृति को प्रेरित करती है।
- शिक्षा समस्त विद्यार्थियों को देश के विभिन्न पहलुओं का ज्ञान कराती है।
- समस्त विद्यार्थियों को स्वतन्त्रता प्राप्ति से सम्बन्धित विशेष बातों से परिचित कराती है।
- राष्ट्रीय एकता के विकास के लिए समस्त जातियों, सम्प्रदायों एवं राज्यों में अधिक मेल पैदा करने वाली लिखाई-पढाई को प्रोत्साहित करती है।
- शिक्षा बालकों को इस प्रकार शिक्षित करती है, जिससे उत्पादन में वृद्धि हो।
- प्राद्योगिकी शिक्षा के द्वारा देश के आधुनिकीकरण को सुनिश्चित करती है।
- शिक्षा प्रजातन्त्र की सुदृढता प्रदान करती है।
- शिक्षा बालक में राष्ट्रीय एकता का विकास करती है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के कार्य-

- शिक्षा मानव/बालक में विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास करती है।
- विश्वजनों में शान्ति की स्थापना करती है।

  मारिया माण्टेसरी के अनुसार, ''सारी शिक्षा शान्ति के लिए ही है।''

  महात्मा गॉधी के अनुसार, ''अगर हम विश्व के वास्तविक शान्ति का पाठ पढ़ाना चाहते हैं, तो हमें शुरूआत बच्चों से करनी होगी।''
- शिक्षा विविधता के लिए सम्मान की भावना पैदा करती है जिससे विश्व में शान्ति स्थापित होती है।
- शिक्षा बालक का विश्व नागरिकता क लिए तैयार करती है।
- शिक्षा बालककी संकीर्ण एवं अन्धी राष्ट्रीयता को समाप्त करती है।
- शिक्षा बालक में यह ज्ञान पैदा करती है कि समस्त राष्ट्र एक दूसरे पर आश्रित हैं।

- शिक्षा बालको उन सभी समस्याओं से परिचित कराती है जो सभी देशों से सामान्य रूप से सम्बन्धित है।
- शिक्षा सांस्कृतिक विभिन्नताओं में मानव हित के लिए कल्याणकारी समान तत्वों को खोजने के लिए प्रोत्साहन तथा प्रशिक्षण प्रदान करती है।
- शिक्षा बालक को समस्त राष्ट्रों की उपलब्धियों का आदर करना सिखाती है जिससे मानव संस्कृति तथा विश्वनागरिकता का विकास होता है।
- शिक्षा बालक में विश्व समाज के निर्माण के लिए मूल्यों का विकास करती है।
- शिक्षा बालक में स्वतन्त्र चिन्तन, निर्णय, लेखन तथा भाषण की योग्यता का विकास करती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. किसका कथन हैं की "मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है"
2. शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। (सत्य/असत्य)
3. शिक्षा एवं साक्षरता का अर्थ भिन्न नहीं है। (सत्य/असत्य)
4. शिक्षा मानव को पूर्ण जीवन जीने की तैयारी कराता है।(सत्य/असत्य)

1.4 शिक्षा के वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य में समानता तथा अन्तर-

किसी भी देश के शिक्षा के उद्देश्य व्यक्ति, समाज एंव राष्ट्र को ध्यान में रखकर निर्धारित किये जाते हैं क्योंकि व्यक्ति समाज में रहता है और समाज व्यक्ति से बनता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास समाज में होता है ऐसी स्थिति में व्यक्ति समाज की अवहेलना नहीं कर सकता। दूसरी ओर हम देखते हैं कि समाज व्यक्तियों का समूह है। बिना व्यक्तियों के समाज की कल्पना करना उतना ही भ्रामक है जितना कि समाज के बगैर व्यक्ति की कल्पना करना। व्यक्ति अपनी शक्ति और कुशलता को राष्ट्र या समाज बनाने में व्यय करता है और राष्ट्र या समाज उन उचित परिस्थितियों की व्यवस्थाकरने में संलग्न करता है जिसमें व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सके। शिक्षा के वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य एक दूसरे के विरोधी नहीं है अपितु एक दूसरेके पूरक हैं वर्तमान में ग्लोबलाइजेशन कर दौर है तो शिक्षा में अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्यों को भी ध्यान रखा जाता है।

शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य के केन्द्र में व्यक्ति होता है, जबकि शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य के केन्द्र में समाज होता है, शिक्षा के राष्ट्रीय उद्देश्य के केन्द्र में राष्ट्र होता है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य के केन्द्र में पूरा विश्व होता है।अत: हम शिक्षा के इन सभी कार्यो केा एक दूसरे के विरोधी नहीं अपितु पूरक मान सकते है।

अभ्यास प्रश्न-

5. शिक्षा बालक को समाज का योग्य नागरिक नहीं बनाती है। (सत्य/असत्य)
6. शिक्षा बालक में विश्वबन्धुत्व की भावना नहीं पैदा करती है। (सत्य/असत्य)
7. शिक्षा के वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य एक दूसरे के पूरक है ।(सत्य/असत्य)

1.5 द्वन्द्व, पुर्वाग्रह, आक्रामकता एंव हिंसा के स्त्रोत एंव कारण

द्वन्द्व – जब कोई व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में रूकावटों का सामना करता है तो वह तनावग्रस्त हो जाता है। यह अक्सर व्यक्ति में द्वन्द्व और निराशा की भावना पैदा करता है। प्रबल निराशा मिलने के कारण यह द्वन्द्व और भी तनावपूर्ण हो जाता है। आमतौर पर व्यक्ति द्वन्द्व में तब पड़ जाता है जब उसके सामने परस्पर विरोधी परिस्थितियॉं हो।

द्वन्द्व के प्रकार - (क) प्रस्ताव- प्रस्ताव द्वन्द्व उदा0 विवाह (2)

(ख) परिहार – प्रस्ताव द्वन्द्व उदा0 कुँआ-खाई

(ग) प्रस्ताव – परिहार द्वन्द्व उदा0 विवाह

मिश्रित – अनुग्रह

- जातिवाद और सांप्रदायिकता के कारण द्वन्द्व
- समूहों में जब द्वन्द्व होता है, तब सामाजिक गतिशीलता की संभावना बढ़ जाती है। द्वन्द्व से पराजित व्यक्ति में बिखराव भी आता है।

द्वन्द्व के कारण –

(1) जब कोई अपनी तुलना दूसरेां से करता है और अपने को अपेक्षाकृत कमतर पाता है तो इससे वंचन या द्वन्द्व की भावना पैदा होती है जो द्वन्द्व को उद्दीप्त करता है।
(2) दोषपूर्ण संप्रेषण द्वन्द्व का एक प्रमुख कारण है।
(3) पूर्वाग्रह भी द्वन्द्व के मूल में या जड़ में होते हैं।

आज समूह अनेक प्रकार के द्वन्द्व से घिरा हुआ है। ये द्वन्द्व जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र भाषा आदि से सम्बन्ध रखते हैं।

गार्डनर मरफी ने 'इन द माइंडस ऑफ मेन' नामक पुस्तक लिखी। अधिकतर द्वन्द्व व्यक्ति के मन से शुरू होते हैं, इसके पश्चात् वे बाहर आते हैं। इस तरह के द्वन्द्वों का व्याख्यान संरचनात्मक, सामूहिक तथा

व्यक्तिगत स्तरां पर किया जासकता है। संरचनात्मक दशाओं के अनुसार निर्धनता की उच्च दर, आर्थिक और सामाजिक स्तरीकरण, असमानता, सीमित राजनीतिक एवं सामाजिक अवसाद इत्यादि निहित होते है। समूह स्तर के कारकों पर किये गये अध्ययन यह दर्शाते हैं कि सामाजिक अनन्यता, संसाधनों हेतू समूहों के मध्य होने वाले यथार्थवादी द्वन्द्व तथा समूहों के मध्य असमान शक्ति सम्बन्ध द्वन्द्व को बढ़ाते है। व्यक्तिगत स्तर पर विश्वास, पूर्वाग्रही अभिवृत्तियॉं तथा व्यक्तिगतकी विशेषताएँ महत्वपूर्ण निर्धारक होते हैं।

पूर्वाग्रह- शब्द अंग्रेजी शब्द प्रेजुडिस का हिन्दी रूपान्तर है। इस शब्द को लैटिन भाषा प्रेजुडिसियस से लिया गया है जिसका अर्थ है वह निर्णय जो पूर्व निश्चयों पर निर्भर है। प्रेजुडिस शब्द का अर्थ वह व्यक्ति जो धर्मया जाति व लिंग के कारण किसीको ना पसंद करना अन्य शब्दोंमें इसका अर्थ वह निर्णय जो तथ्यों के अपेक्षित परीक्षा से पूर्व कर लिया गया हो एक अपरिपक्व या जल्दी में भाग लिया निर्णय। पूर्वाग्रह एक पूर्वकल्पित विवेकहीन निर्णय है। अधितर समाज मनोवैज्ञानिकों जैसे-सेकर्ड तथा बेंकमैन(1987), फेल्डमैन (1985), मेयर्स (1987), बरोन तथा बर्न (1977) ने पूर्वाग्रह को एक तरह की मनोवृत्ति माना है।मेयर्स (1987) के अनुसार, ''पूर्वाग्रह किसी समूह एंव उसके सदस्यों के प्रति अनुचित नकारात्मक मनोवृत्ति को कहा जाता है।''

पूर्वाग्रहको स्वीकारात्मक एवं नकारात्मक मनोवृत्ति दोनों मानागया है। स्वीकारात्मक पूर्वाग्रह मनोवृत्ति के फलस्वरूप व्यक्ति स्नेह एवं प्यार प्रदर्शित करता है जबकि नकारात्मक पूर्वाग्रह मनोवृत्ति के फलस्वरूप व्यक्ति घृणा प्रदर्शित करता है।पूर्वाग्रह में संज्ञानात्मक, भावनात्मक तथा व्यवहारात्मक ये तीनों तत्व शामिल होते हैं। अमीर वर्ग का गरीब के प्रति, शहरी वर्ग का ग्रामीण के प्रति दृष्टिकोण पूर्वाग्रह से युक्त होता है।

पूर्वाग्रह की प्रमुख विशेषताएँ –

- पूर्वाग्रह विवेकहीन होता है।
- पूर्वाग्रह में संवगात्मक रंग होता है।
- पूर्वाग्रह एक सप्रयास अर्जित मनोवृत्ति है।
- पूर्वाग्रह सुनी-सुनाई बातों पर आधारित होती है। पूर्वाग्रह का सम्बन्ध वास्तविकता से नहीं होता है।
- पूर्वाग्रह का स्वरूप कार्यात्मक होता है।
- पूर्वाग्रह दृढ़ तथा स्थिर सामान्यीकरण पर आधारित होता है।
- पूर्वाग्रह पूर्णरूपेण किसी समूहकी ओर संचालित होती है।

पूर्वाग्रह के स्त्रोत –

प्रजातीय – इस पूर्वाग्रह में लोग अपनी प्रजातिको श्रेष्ठ तथा दूसरों की प्रजाति को दोषी मानते है। उदाहरण के लिए अमेरिका में गोरे लोग नीग्रो को कम बुद्धि व असभ्य समझते है। भारत में भी एक प्रजाति दूसरी प्रजाति के प्रति नकारात्मक पूर्वाग्रह से ग्रसित है तथा इसी कारण एक प्रजाति दूसरे के प्रति आक्रामकता का प्रदर्शन करती है।

मौन- विभिन्न समाजोंमें पुरूष एवं महिलाओं के बीच भेदभाव दृष्टिगोचर होता है। अधिकांशत: पुरूषोंकीमहिलाओं के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति होती है। पुरूषों को यह लगता है कि महिलाएं कमजोर, कम बुद्धि वाली, कम परिश्रमी, नेतृत्व गुण रहित होती हैं। यदि किसी महिला की छवि इसके विपरीत होती है तो उसे अपवाद समझा जाता है।

भाषा- हर वर्ग अपनी भाषा को दूसरी भाषा से श्रेष्ठ मानता है। भाषा के आधारपर विभिन्न समूहों का निर्माण हो जाता है जैसे- हिन्दी भाषी, तमिल भाषी आदि। भाषा के आधार पर आये दिन दंगे होते रहते है।

राजनीति- किसी भी पार्टी का सदस्य अपने पार्टीके सिद्धान्तों, उसके एजेण्डों, उसके सदस्यों को अच्छा मानता है जबकि दूसरे दल के सिद्धान्तों, एजेण्डों की आलोचना करता है। वर्तमान में हर नेता अपने दल के नेता को साफ-सुथरा तथा दूसरे दल के नेताओं को भ्रष्ट मानता है।

साम्प्रदायिकता- वर्तमान समय में असम्प्रादायिकता एक बड़ी समस्या है। एक सम्प्रदाय दूसरे के प्रति एक घिनौनी मानसिकता पाले बैठा है जिसके फलस्वरूप साम्प्रदायिक दंगे होते रहते हैं। हिन्दु, मुस्लिम, सिख आदि सभी एक दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित है। कश्मीर, पंजाब आदि में आये दिन साम्प्रदायिक दंगे होते रहते हैं।

क्षेत्रीय - क्षेत्रीयता भी पूर्वाग्रह का एक प्रमुख आधार है। शहरी क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्ति ग्रामीणों को अनपढ़, असभ्य, मूर्ख, लड़ाकू समझते हैं वहीं दूसरी ओर ग्रॉव में रहने वाले लोग शहर वालों को चालाक, दिखावे की प्रवृत्ति रखने वाला, बड़बोला, अहंकारी, असामाजिक आदि समझते हैं। इसी प्रकार बड़े शहर तथा छोटे शहर वाले एक दूसरे के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखते है।

जाति- समाज में अनेक जातियों का वर्गीकरण है। प्रत्येक जाति अपनी जाति के प्रति सकारात्मक मनोवृत्ति रखती है जबकि दूसरी जाति के प्रति नकारात्मक मनोवृत्तिरखती है इस नकारात्मक मनोवृत्ति के चलते विद्वेष की भावना बढ़ जाती है तब यह जातीय दंगों का रूप धारण कर लेती है।

उम्र- उम्र भी पूर्वाग्रह का स्त्रोत है जैसे हर युवा पीढ़ी वद्धों को आलसी, नकाराएवं पिछड़ा मानती है जबकि वद्ध युवा पीढ़ी को असभ्य, भटका हुआ, आलसी आदि समझते हैं। इसी पूर्वाग्रह के चलते अनके परिवारों में आये दिन लड़ाई होती है। जबकि न तो हर युवा और न ही हर वद्ध बुरा होता है।

धर्म- पूर्वाग्रह का एक प्रमुख आधार/स्त्रोत धर्म भी है। पश्चिम मनोवैज्ञानिक जाबेलक(1980) ने अपने अध्ययन के आधार पर पाया कि ईसाइयों की पूर्वधारणा नीग्रो के प्रति अधिक नकारात्मक होती है। हिन्दु–

मुस्लिम एक दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित है। ये धार्मिक पूर्वाग्रह धार्मिक दंगे का आधार बनते है और इनका समाज पर कुप्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार अनेक स्त्रोत है जो पूर्वाग्रह को निर्धारित करते हैं।

पूर्वाग्रह के कारण-

ऑलपोर्ट ने पूर्वाग्रहके निम्न पॉच उपागमों पर प्रकाश डाला है-

(1) ऐतिहासिक उपागम
(2) परिस्थितिजन्य उपागम
(3) मनोगतिकी उपागम
(4) संज्ञानात्मक उपागम
(5) सामाजिक – सांस्कृतिक उपागम

1- **ऐतिहासिक उपागम -** विभिन्न ऐतिहासिक घटनाएं पूर्वाग्रहका कारण बनती है। किसी समाज में औरतों का यदि प्रताड़ित किया जाता था तो धीरे-धीरे ये पूर्वाग्रह का रूप धारण कर लेता है। सवर्णो का हरिजनों के प्रति दृष्टिकोणअमीर का गरीब क प्रति, गोरों का नीग्रो लोगों के प्रति मनोवृत्ति ऐतिहासिक पूर्वाग्रह पर आधारित है।

2- **परिस्थिति जन्य उपागम-** इस उपागम में पूर्वाग्रह विकास से जुड़े वे तत्व होते हैं जो व्यक्ति के तत्कालीन परिवेश से उत्पन्न होते है। फैल्डमैन के शब्दों में, ''पूर्वाग्रह के स्थिति उपागम उन तरीकों पर बल डालता है जिसमें व्यक्ति के तत्कालिक वातावरण पूर्वाग्रही मनोवृत्ति पैदा करते हैं।''

पारिस्थितिजन्य उपागम के तीन कारक हैं-

(i) **सामाजिक अधिगम** – बालक का समीपी वातावरण जैसा होता है बाल का सामाजिक विकास भी वैसा ही होता है। बालक अपने माता-पिता, भाई-बहन, आस-पड़ोस आदि से दूसरो के प्रति व्यवहार करना सीखता है। ये जैसा सिखाते है बालक वैसी ही मनोवृत्ति विकसित कर लेता है।

मनोवैज्ञानिकों जैसे काली प्रसाद (1964), हसन (1977), एवं (1980) ने भी अपने अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि बच्चों में पूर्वाग्रह का विकास उनके माता-पिता द्वारा पालन-पोषण में अपनाई गई विधियों से काफी प्रभावित होता है।

(ii) **जनसांख्यिकीय विशेषताएं** – प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मेकेविच ने गोरे अमेरिकन में नीग्रो के प्रति नकारात्मकता के अध्ययन में तीन जनसांख्यिकीय विशेषताओं को अधिक महत्वपूर्ण पाया है। ये तीन है- भौगोलिक क्षेत्र, शैक्षिक स्तर तथा उम्र।

(iii) **असुरक्षा और चिन्ता** - असुरक्षा और चिन्ता भी पूर्वाग्रह का एक प्रमुख कारण है। जिन व्यक्तियों में असुरक्षा की भावना अधिक होती है, वह हमेशा उस व्यक्ति की ताक में रहता है जिस पर उनकीअसुरक्षा का आोप लगाया जा सके। फलस्वरूप व्यक्तियों में पूर्वाग्रह बहुत ही तीव्र गति से उत्पन्न होता है।

चिन्ता भी पूर्वाग्रह की उत्पत्ति का एक कारण है। जब व्यक्ति अधिक चिंतित होता है तो पूर्वाग्रह की मात्रा बढ़ जाती है। सिंह(1980), एवं इनायतुल्लाह (1980), ने अपने अध्ययनों में चिन्ता तथा पूर्वाग्रह के बीच धनात्मक सहसम्बन्ध बतलाया है।

3- **मनोगतिकी उपागम -** ऐसे अनेक मनोवैज्ञानिक कारण है जिनसे व्यक्ति के व्यक्तित्व में कुण्ठा, असुरक्षा, चिन्ता आदि उपजती है और यहीं पूर्वाग्रह का कारण बनते है।

(i) **कुण्ठा एवं आक्रामकता** – कुण्ठा के कारण भी व्यक्ति में पूर्वाग्रह की मनोवृत्ति पैदा होती है। इसे पूर्वधारणा का कुण्ठा सिद्धान्त या 'बलि का बकरा' सिद्धान्त भी कहा जाता है। मिलर तथा बग्लेसकी (1947) द्वारा किया गया प्रयोग इस सिद्धान्त का समर्थन करता है।

(ii) **सत्तावादी व्यक्तित्व** – अनेक अध्ययनों में सत्तावादी व्यक्तित्व तथा पूर्वाग्रह में सीधा सम्बन्ध पाया गया है। इस सन्दर्भ मं समाज मनोवैज्ञानिकों का माननाहै कि सत्तवादी व्यक्ति वाले व्यक्तियों को बचपन में अपने माता-पिता से अनुशास्नका सख्त प्रशिक्षण मिला होता है। सख्त अनुशासन में पले बच्चे अपने माता-पिता से नाखुश रहते है परन्तु उनके प्रति सख्त अनुशासन का औचित्य समझकर प्रकट करने में असमर्थहोते है। फलस्वरूप वे अपने इस बैर भाव की अभिव्यक्ति अन्य बाहरी समूहों या व्यक्तियों के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति दिखाकर करते है।

उदाहरण – एक स्त्री यदि पहलवान बन जाये तो लोग कहेंगेसंयोगवश बन गई परन्तु यदि स्त्री किसी घटना को देखकर सहम जाए तो पुरूष कहेंगे-स्त्री की प्रकृति ही डरपोक होती है।

4- **संज्ञानात्मक उपागम** – इस सिद्धान्तया उपागम के आधार पर पूर्वाग्रह में पूर्वाग्रही व्यक्तियों द्वारा पूर्वाग्रह के लक्ष्य के बारे में प्रत्यक्षण तथा उसके बारे में प्राप्त सूचनाओं के संसाधन पर किया जाता है। संज्ञानात्मक उपागम के आधार पर पूर्वाग्रह के 2 सिद्धान्त है।

(i) **आरोपण सिद्धान्त** – इस सिद्धान्त के आधार पर पूर्वाग्रही व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति या समूह के प्रति किये गये नकारात्मक व्यवहार की वजह से उस व्यक्ति या समूह में विदित व्यक्तिगत गुणों को माना जाता है। परन्तु जब उसके द्वारा कोई धनात्म्क व्यवहार किया जाता है तो पूर्वाग्रही व्यक्ति उनकी प्रशंसा करके उसका कारण भाग्य, अधिक प्रयास, अपवादात्मक व्यवहार आदि बताता है।

(ii) **नौकरी में प्रतियोगिता-** जिन वर्गो में आर्थिक सम्पन्न्ता है वे ही लोग अच्छी शिक्षा प्राप्त करके सरकारी/गैरसरकारी नौकरियॉ प्राप्त करते हैं ऐसे में यह पूर्वधारणा बनी हुई है कि जो अल्पसंख्यक या निम्न वर्ग के लोग है उन्हें आरक्षण का दिया जाने वाला लाभ अनुचित है।

5- **सामाजिक** – सांस्कृतिक उपागम –पूर्वाग्रह के अनेक सामाजिक सांस्कृतिक कारण भी है। ये कारण निम्नवत् हैं-

(i) **सामाजिक वर्ग** – उच्च सामाजिक वर्ग मध्य सामाजिक वर्ग तथा निम्न सामाजिक वर्ग एक दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित होते है। भारत में हुए अध्ययनों के अनुसार मध्यम तथा उच्च स्तर वाले व्यक्तियों में नकारात्मक मनोवृत्ति पाई जाती है।

(ii) **शिक्षा**- शिक्षा चाहे औपचारिक हो या अनौपचारिक व्यक्ति की पूर्वाग्रह मनोवृत्ति पर प्रभाव डालतीहै। यह प्रभाव सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों हो सकता है। सिन्हा (Sinha & Sinha 1972), ने 2000 उत्तर भारतीयोंकी पूर्वधारणा का अध्ययन करने पर पाया कि, औपचारिक शिक्षा का स्तर अधिक ऊँचा होने से व्यक्तियों के प्रति मनोवृत्ति काफी उदार हो जाती है।

(iii) **धार्मिक समूह** – एक धार्मिक समूहके व्यक्ति दूसरे धार्मिक समूह के विषय में तुच्छ धारणा रखते हैं। सिंह (1980), हसन एवं सिंह (1973), नटराज (1965) आदि ने अपने अध्ययनों में पाया कि हिन्दू, मुस्लिम, यहूदी आदि दूसरे धर्मो के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं।

(iv) **नगरीकरण** – नगरों में यदि कोई समस्या जैसे गन्दगी, असुरक्षा आदि होती है तो लोग किसी ऐसे वर्ग को जो ज्यादा ही उसको इसका दोषी मान लेते है जो पूर्वाग्रह के कारण होता है।

(v) **जाति** – प्रसाद (1979), ने अध्ययन में पायाकि उच्च जाति के हिन्दुओं में जाति पूर्वाग्रह निम्न जाति के हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक होता है। इस प्रकार जाति भी पूर्वाग्रह का एक कारण है।

(vi) **शहरी-ग्रामीण क्षेत्र**- शोध से पता चलता है कि शहरी व्यक्तियों की अपेक्षा ग्रामीण व्यक्तियों में पूर्वाग्रह का अधिक समावेश होता है। इसके अलावा वे अपेक्षाकृत रूढ भी होते हैं।

(vii) **जन समूह माध्यम** – रेडियों, टी0वी0, समाचार पत्र आदि में किसी घटनाका इतने प्रभावकारी तरीके से दिखाया सुनाया जाता है कि ये भी पूर्वाग्रह का कारण बन जाती है।

(viii) **सामाजिक संघर्ष** –विभिन्न शाधों से पता चला है कि सामाजिक समूहों के मध्य होने वाला संघर्ष भी पूर्वाग्रह को जन्म देता है।

आक्रामकता मेयर्स (1988) के अनुसार, ''आक्रामकता एक ऐसा शारीरिक या शाब्दिक व्यवहार होता है जिनका उद्देश्य दूसरों को चोट पहुँचाना होता है।'' अत: आक्रामकता उद्देश्य के साथ की जाती है बिना उद्देश्य के नहीं।

आक्रामकता के प्रमुख सिद्धान्त(स्त्रोत) –

(1) **मूलप्रवृत्तिक सिद्धान्त** – इसके अनुसार आक्रामकता का स्त्रोत व्यक्ति में निहित जन्मजात मूल प्रवृत्तियॉ है। यह आक्रामकता का प्रमुख सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त में मूलरूप से दो सिद्धान्तों को रखा गया है (a) फ्रायडका मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त, (b) लोरेन्ज का आचारशास्त्रीय सिद्धान्त।

फ्रायड ने मूलप्रवृत्ति को दो भागों में बॉटा जीवन मूलप्रवृत्ति तथा मृत्यु मूलप्रवृत्ति। फ्रायड के अनुसार जीवन अक्सर मृत्यु मूलप्रवृत्ति के विध्वंसकारी लक्ष्य को अवरूद्ध कर देता है और उसे बाहरी वस्तुओं या वस्तुओं के प्रति आक्रामकता तथा हिंसा दिखलाना प्रारम्भ कर देता है।

लारेन्स ने पशुओं पर प्रयोग कर यह सिद्ध किया कि अस्तित्व लक्ष्य की मूल में आक्रामकता की मूलप्रवृत्तिहोती है।

(2) **कुंठा-आक्रामकता सिद्धान्त** – इस सिद्धान्त में डोलार्ड एवं उनके सहयोगियों ने आक्रामकता का कारण या कुंठा या निराशा माना है। इस सिद्धान्त के अनुसार लक्ष्य प्राप्त करने वाले व्यवहार बाधित या अवरूद्ध होने पर व्यक्ति में पहले कुंठा तथा फिर आक्रामकता उत्पन्न होगी यह कई बातों पर निर्भर करती है।

जिस स्त्रोत या एजेन्ट के द्वारा कुण्ठा पैदा होती है। व्यक्ति सीधे उसी के प्रति आक्रामकता दिखाता है। व्यक्ति सीधे उसी के प्रति आक्रामकता दिखाता है। इसे प्रत्यक्ष आक्रामकता कहा जाता है। लेकिन कभी-कभी आक्रामकता दिखलाने वाले स्त्रोत को व्यक्ति अपने से अधिक शक्ति वाला पाता है या उससे उसे दण्ड मिलने की संभावना तीव्र होती है या स्त्रोत स्वयं उपस्थित नहीं होता है, तो वैसी परिस्थिति में व्यक्ति का आक्रामक व्यवहार किसी दूसरे से मिलते- जुलते स्त्रोत या एजेण्ट के प्रति विस्थापित हो जाता है। इसे विस्थापित आक्रामकता की भी संज्ञा दी जाती है।

परिपर्तित कुंठा – आक्रामकता सिद्धान्त –

यह कुंठा आक्रामक सिद्धान्त का परिवर्तित रूप है। इस सिद्धान्त में दो परिवर्तन हुए-

(i) मिलर ने स्वीकार किया कि कुंठा से हमेशा आक्रामकता उत्पन्न नहीं होती अपितु कुंठा के प्रति की गई अनेक अनुक्रियाओं में से हमेशा आक्रामकता एक है।

(ii) बार्कोविज (1965) ने कहा कि कुंठा से आक्रामक व्यवहार सीधे उत्पन्न नहीं होते है बल्कि कुंठा व्यक्तिमें आक्रामक व्यवहार करने के लिए कए तत्परता उत्पन्न कर देता है जो एक ऐसी सांवेगिक स्थिति होती है जिसे क्रोध की संज्ञा दी जाती है। इस क्रोध से व्यक्तिआक्रामक हो जाता है। दूसरी तरफ वातावरण में व्यक्ति को कुछ ऐसा संकेत मिल जाता है जिससे उसकी छिपी आक्रामकता भड़क उठती है।

सामाजिक सीखना सिद्धान्त - इस सिद्धान्त का सारतत्व यह है कि व्यक्ति अन्य व्यवहारों के समान आक्रामकता को भी सीखता है और साथ ही साथ यह भी सीखता है किन-किन अवस्थाओं में ऐसी आक्रामकता की अनुक्रिया वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने में मदद करती है। अत: आक्रामक व्यवहार एक सीखा गया व्यवहार होता है।

इस सिद्धान्त के आधार पर तीन प्रश्नों का उत्तर मिलता है-

(1) आक्रामकता की उत्पत्ति के स्त्रोत क्या हैं।

मुख्य स्त्रोतनिम्न हैं-

(i) **प्रत्यक्ष निर्देश** – कभी-कभी व्यक्ति को आक्रामण व्यवहार के लिए प्रत्यक्ष निर्देश दिये जाते हैं। उदा0 युद्ध में सैनिकों को आक्रामण व्यवहार दिखाने का निर्देश दिया जाताहै तब सैनिक आक्रामकता दिखाता है।

(ii) **प्रत्यक्ष और त्रुटि सीखना** – आक्रामकता के प्रमुख स्त्रोत में प्रयत्न एंव त्रुटि सीखना प्रमुख माना जाता है। उदा0- जब एक बच्चा दूसरे बच्चे पर आक्रामण करता है और यदि वह बच्चा नहीं भाग पाता तो वह विवश होकर पीटन (आक्रामकता) फिर से सामने आती है तो वह बालक उसी व्यवहार को दिखाता है।

(iii) **प्रेक्षणात्मक सीखना** – यह भी आक्रामकता का प्रमुख स्त्रोत है। 'बन्डूरा के अनुसार' जब व्यक्ति दूसरों को आक्रामक व्यवहार करते देखता है, तो वह भी वैसा ही करना प्रारंभ कर देता है। बन्डूरा के अनुसार प्रेक्षणात्मक सीखना जीवन पर्यन्त घटित होता रहता है। सामान्य जीवन में भी इस प्रकार के स्त्रोत देखने को मिलते हैं।

जैसे- परिवार में उपलब्ध मॉडल, चलचित्र एंव दूरदर्शन पर दिखलाए जाने वाले आक्रामकता के दृश्य, शिक्षण संस्थान एंव अन्य व्यवसायों के सामाजिक सन्दर्भ में उपलब्ध मॉडल आदि।

(2) **आक्रामक व्यवहार के उत्तेजक कारक**-

(i) **विरूचि विवेचन** – दुखदायी, कष्टकर तथा कुंठित अनुभवों से व्यक्ति न केवल सांवेगिक रूप से उत्तेजित ही होता है, बल्कि उसमें आक्रामकता की भी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।

(ii) **निर्देश** – किसी के द्वारा आक्रामकता प्रदर्शन करने के बाद निर्देश दिये जाने पर व्यक्ति आक्रामकता का प्रदर्शन करता है।

(iii) **प्रेक्षण** – जब व्यक्ति किसी के आक्रामक व्यवहार का प्रेक्षण करता है तो उसमें वैसा ही आक्रामक व्यवहार करने की प्रेरणा उत्पन्न हो जाती है। उदा0- टी0वी0 पर आक्रामक चित्र/दृश्य देखकर बच्चे वैसा ही प्रदर्शन/व्यवहार करते है।

(iv) **प्रोत्साहन या पुरस्कार मिलने की आशा** – बण्डूरा (1963) के अनुसार, आक्रामक व्यवहार को व्यक्ति बाध्य पुर्नबलन, आत्म–पुनर्बलन तथा स्थानापन्न पुनर्बलन के आधार पर सीखता है।

आक्रामकता तथा हिंसा के कारण –

वर्तमान में चारों तरफ समाज में हिंसा, अराजकता एंव आक्रामकता फैलीहुई है इसके प्रमुख कारण निम्नवत् है।

(1) **अवैयक्तिकता-जिवार्डो (1969) तथा डाइनर (1969) के अनुसार**, अवैयक्तिकता से व्यक्ति में आत्मचेतना कम हो जाती है तथा नकारात्मक मूल्यांकन का डर समाप्त हो जाता है जिसकी वजह से व्यक्ति आक्रामक एंव समाज विरोधी व्यवहार अधिक करने लगता है।

(2) **भौतिक वातावरण** – भौतिक वातावरण की आक्रामकता की वृद्धि करता है जैसे- कोलाहल, तापमान आदि। तापमान या कोलाहल में वृद्धि होने व्यक्ति की आक्रामकता बढ़ती है। कभी-कभी कष्टदायक उच्चस्तरीय तापमान से आक्रमकता की मात्रा में कमी भी आती है।

(3) **व्यक्तिगत कारण** – कम बुद्धि परन्तु लंबे डील-डौल व्यक्ति अधिक आक्रामक होते हैं। क्योंकि वे काम करने में सक्षम नहीं होते लेकिन उनका शरीर उनकी आक्रामक व्यवहार के अनुकूल होता है।

(4) **प्रत्यक्ष छेड़-छाड़** – किसी बालक या व्यक्ति को यदि रोक-टोक की जाए तो उसमें आक्रामकता बढ़ती है। गीन (1968)ने अपने अध्ययन में पाया कि यदि प्रयोत्यों पर शाब्दिक रूप से आक्रमण किया जाता है तो इससें उनमें आक्रमण करने वाले व्यक्ति के प्रति आक्रामकता उस परिस्थिति की तुलना में बढ़ जातीहै जिसमें उन्हें सिर्फ कुंठित किया जाता है।

(5) **उत्तेजन स्तर** –कुछ व्यक्तियों में सामान्य व्यक्तियों की तुलनामें उत्तेजना स्तर अधिक होता है कुछ स्त्रोत जैसे शारीरिक व्यायाम, कुछ प्रकार के चलचित्र, लैगिंक रूप से उत्तेजक चित्र आदि से जब व्यक्ति उत्तेजित होती है तो वह अपने उत्तेजन के कारण समझने के लिए तथा उसे वर्गीकृत करने के लिए वातावरण में संकेत खोजना प्रारम्भ कर देता है। यदि व्यक्ति की उत्तेजना को अनुप्रयुक्त ढंग से विभक्त किया जाए तो ये स्त्रोत व्यक्ति में ज्यादा आक्रामकता उत्पन्न करता है।

(6) **कुंठाग्रस्त व्यवहार का उद्देश्य** – आक्रामकता को प्रभावित करने में कुंठा भी एक कारण है। कुंठा व्यक्ति में आक्रामकता तभी उत्पन्न करती है जब कुंठा में स्त्रोत व्यवहार का उद्देश्य ही कुछ ऐसा होता है। व्यक्ति में आक्रामकता की भावना तब उत्पन्न नहीं होती जब व्यक्ति को इसके स्त्रोत की जानकारी हो जाती है।

(7) **वातावरण में आक्रामकता-** वातावरण में कुछ ऐसे तत्व मौजूद होते हैं जिनसे मनुष्य में आक्रामकता बढ़ती है। जैसे-वातावरण में हथियार की उपस्थिति से आक्रामकता बढ़ती है।

(8) **मदिरा एवं मादक औषधियों का प्रभाव** – ऐसे व्यक्ति जो मादक पदार्थ एंव मादक औषधियों का सेवन अधिक करते हैं उनमें आक्रमकता अधिक पाई जाती है। इसके विपरीत जो मादक पदार्थो का सेवन नहीं करते उनमें आक्रमकता की कमी पाई जाती है।

अभ्यास प्रश्न

8. उम्र पूर्वाग्रह का कारण नहीं है। (सत्य/असत्य)
9. साम्प्रदायिक्ता द्वन्द्व का कारण है। (सत्य/असत्य)
10. हिंसा भौतिक वातावरण से प्रभावित होती है। (सत्य/असत्य)

1.6 पर्यावरणीय सरोकार मानव एवं प्रकृति की अन्योन्याश्रित

प्रकृति जीवन का आधार है प्रकृति के बिना मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। प्रकृति से हमें खाने के लिए भोजन,पीने के लिए पानी तथा रहने के लिए आवास मिलता है अर्थात् हम प्रकृति पर पूर्णतया निर्भर है, अत: हमें प्रकृति का संरक्षण करनाचाहिए। प्रकृति के संरक्षण हेतु मनुष्य ही प्रयास करता है इस प्रकार प्रकृति भी मानव पर आश्रित है। प्रकृति मानवसे श्रेष्ठ है परन्तु वर्तमान में ज्ञान-विज्ञान के चलते मनुष्य प्रकृति का विनास कर रहा है। वह अपनी शक्ति के नशे में यह भूल बैठा है कि प्रकृतिके विनाश से उसका भी अंतत: विनाश होगा। अत: शिक्षा वर्तमान में यह व्यवस्था करती है कि कैसे इन दोनों के बीच संतुलन स्थापित किया जाए। मानव प्रत्येक प्रकार के क्रियाकलापों के लिए पर्यावरण पर निर्भर है। मानव एक कलाकार के रूप में पर्यावरण द्वारा प्रदत्त रंगमंच पर कार्य करता है। कहीं पर्यावरण उसे प्रभावित करता है तो कहीं वह उसके साथ अनुकूलन तथा परिवर्तन करता है। इसे पर्यावरण समायोजन भी कहते हैं। व्हाइट और रैनर ने भौगोलिक पर्यावरण के महत्व को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है-

"भौतिक वातावरण मानव के बड़े समूहों को स्पष्टतः प्रत्यक्ष रूप में और प्राथमिक तरीके से प्रभावित करता है। प्रत्येक समूह, जनजाति, राज्य, राष्ट्र और पृथ्वी के सभी साम्राज्य इसके द्वारा सीधे तौर पर सफलता के साथ निरन्तर रूप से प्रभावित होते हैं। मानव की कोई भी बड़ी महत्वपूर्ण क्रिया बिना इसकी सहायता के, बिना इसकी रुकावटों और निर्देशों के स्वतन्त्र नहीं है। प्राकृतिक पर्यावरण मानव समाज के लिए वही करता है जो सामाजिक पर्यावरण व्यक्तिगत मनुष्य के लिए।" मानव पर पड़ने वाले भौगोलिक प्रभावों को चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

i) प्रत्यक्ष भौतिक प्रभाव, ii) मांनसिक प्रभाव, iii) आर्थिक और सामाजिक प्रभाव, तथा iv) मानव की गतियों को प्रभावित करने वाले प्रभाव

प्रत्यक्ष भौतिक प्रभाव- पर्यावरण के सभी तत्वों में जलवायु का प्रभाव सबसे अधिक महत्वपूर्ण है जो मानव को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। जलवायु का प्रभाव प्राकृतिक वनस्पति और मिट्टियों द्वारा

मनुष्य पर पड़ता है। जलवायु का प्रभाव मनुष्य के कद, शरीर की बनावट, रंग, आदि पर पड़ता है। इसी प्रकार पर्यावरण मनुष्य की शारीरिक शक्ति को भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है जिससे उसके शरीर का एक भाग दूसरे की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ और बलिष्ठ बन जाता है।

मानसिक प्रभाव- इस प्रकार के प्रभाव मनुष्यों के धर्म उनके साहित्य, भाषा, आचार-विचार में दिखायी देते हैं। मनुष्य के धार्मिक विचार उसके पर्यावरण की ही उपज हैं। भाषा पर भी पर्यावरण का प्रभाव रहता है।

आर्थिक और सामाजिक प्रभाव- किसी स्थान की भौगोलिक अवस्थाएँ ही इस बात का निर्धारण करती हैं कि वहाँ आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति सरलता से होगी अथवा कठिनाई से, वहाँ किस प्रकार के उद्योग स्थापित किए जा सकते हैं। इस प्रकार के प्रभाव ही मानव समाज के आकार को, निर्धारित करते हैं। जिन क्षेत्रों, द्वीपों या पर्वतीय भागों में आर्थिक संसाधन कम मात्रा में पाए जाते हैं, वहां मनुष्य भी छोटे समुदायों में पाए जाते हैं, क्योंकि उन क्षेत्रों में उनके लिए उपयुक्त पर्यावरण नहीं मिलता।

मानव की गतियों को प्रभावित करने वाले प्रभाव- मानव समूह के आवास-प्रवास को भौतिक पर्यावरण के सभी तत्व विशिष्ट एवं अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं। इनके अन्तर्गत पहाड़ों, मरुस्थलों, दलदलों, समुद्रों, आदि का प्रभाव मानव के प्रवास पर पड़ता है। ये सभी उसके मार्ग का निर्धारण करते हैं, उसे सहयोग अथवा असहयोग देते हैं। उदाहरणार्थ, मानव ने नदी मार्गों का यातायात के साधनों के रूप में उपयोग किया, जिससे अनेक मानव जातियों ने दूर-दूर जाकर अपनी बस्तियां स्थापित कीं। पर्वत अवरोध उत्पन्न करते हैं। भारतवर्ष के उत्तर में हिमालय पर्वत ने मध्य एशिया से सम्पर्क को सदैव रोकने का प्रयास किया है।

अपने भौतिक पर्यावरण के साथ मानव का सामंजस्य अत्यन्त प्राचीनकाल से चला रहा है, जबकि वह पत्थर युग में था। इस युग में मनुष्य ने अपनी सुरक्षा के लिए घर बनाने, प्रकृति की वस्तुओं का भोजन के रूप में उपयोग करने, पत्थर को काट-छांट, घिसकर औजार बनाने, जंगली पशुओं को पालतू बनाने, जादू आदि पर विश्वास करने और सामूहिक रूप से सुरक्षा आदि करने के रूप में मनुष्य ने अपने सांस्कृतिक पर्यावरण को जन्म देने में योग दिया है तभी से मनुष्य भौतिक पर्यावरण के साथ सामंजस्य करता रहा है, मनुष्य ने विज्ञान, तकनीकी ज्ञान और आर्थिक क्रियाओं में बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन करके अपने को भौतिक पर्यावरण के साथ सामंजस्य करने की रीतियों में बड़ा प्रसार किया है। इस प्रकार सामंजस्यों को प्रधानत: तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है- आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक और राजनीतिक

1.आर्थिक समंजन इस प्रकार का अनुकूलन समाज द्वारा कार्यप्रतिमानों के रूप में किया जाता है। मनुष्य कौन-सा कार्य करता है यह उसकी इच्छाओं, विचारों और उसकी कुशलता पर निर्भर करता है। मोटे तौर पर यह बात भौतिक पर्यावरण में मिलने वाली सम्पदा द्वारा प्रभावित होती है। आर्थिक समंजन मुख्यतः चार श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं-

2. सामाजिक एवं सांस्कृतिक समंजन - मानव समाज अपने भौतिक पर्यावरण के साथ इस प्रकार का सामंजस्य भी स्थापित करता है। इसके अन्तर्गत जनसंख्या का घनत्व, भूमि पर स्वामित्व, सामाजिक वर्ग, परिवार, समाज-सम्बन्ध, आदि बातें सम्मिलित होती हैं। इसी प्रकार के समंजन में मनुष्य के व्यवहार एवं आदतें, उनका स्थायी जमाव व घुमक्कड़ जीवन, उसके वस्त्र, भोजन, घर, आचार-विचार, धार्मिक विश्वास एवं आस्थाएं, कला, आदि बातों का भी समावेश किया जाता है।

3. राजनीतिक समंजन- मानव समाज अपने भौतिक पर्यावरण से नागरिक तथा राजनीतिक समंजन भी स्थापित करता है। इस क्रिया के अन्तर्गत स्थानीय, प्रान्तीय या राष्ट्रीय सरकारों की स्थापना, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, सैन्य नीतियां तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून आदि की व्यवस्था सम्मिलित होती हैं।

अभ्यास प्रश्न –

11. मानव पर पड़ने वाले भौगोलिक प्रभावों को बताओ।
12. मानव एक कलाकार के रूप में पर्यावरण द्वारा प्रदत्त रंगमंच पर कार्य करता है।(सत्य /असत्य)

1.7 सारांश

शिक्षा के द्वारा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी का विकास होता है।शिक्षा व्यक्ति को अपने जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने योग्य बनाती है।शिक्षा मनुष्य का सामाजीकरण करती है, सामाजिक नियन्त्रण रखती है और सामाजिक परिवर्तन करती है।शिक्षा का कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। मानव या समाज का कोई ऐसा पहलू नहीं है जिस पर शिक्षा विचार न करती हो। शिक्षा के लक्ष्य व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के हितों को ध्यान में रखकर निर्धारित किये जाते हैं। वर्तमान में ग्लोबलाइजेशन का दौर चल रहा है ऐसे में शिक्षा अन्तर्राष्ट्रीयता पर भी विचार करती है। आज प्रत्येक राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एंव अन्तर्राष्ट्रीयता को स्थान दिया जाता है।

किसी भी देश के शिक्षा के उद्देश्य व्यक्ति, समाज एंव राष्ट्र को ध्यान में रखकर निर्धारित किये जाते हैं क्योंकि व्यक्ति समाज में रहता है और समाज व्यक्ति से बनता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास समाज में होता है ऐसी स्थिति में व्यक्ति समाज की अवहेलना नहीं कर सकता। दूसरी ओर हम देखते हैं कि समाज व्यक्तियों का समूह है। बिना व्यक्तियों के समाज की कल्पना करना उतना ही भ्रामक है जितना कि समाज के बगैर व्यक्ति की कल्पना करना। व्यक्ति अपनी शक्ति और कुशलता को राष्ट्र या समाज बनाने में व्यय करता है और राष्ट्र या समाज उन उचित परिस्थितियों की व्यवस्थाकरने में संलग्न करता है जिसमें व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सके। शिक्षा के वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य एक दूसरे के विरोधी नहीं है अपितु एक दूसरेके पूरक हैं वर्तमान में ग्लोबलाइजेशन कर दौर है तो शिक्षा में अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्यों को भी ध्यान रखा जाता है।

शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य के केन्द्र में व्यक्ति होता है, जबकि शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य के केन्द्र में समाज होता है, शिक्षा के राष्ट्रीय उद्देश्य के केन्द्र में राष्ट्र हेाता है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य के केन्द्र में पूरा विश्व होता है।अत: हम शिक्षा के इन सभी कार्यो केा एक दूसरे के विरोधी नहीं अपितु पूरक मान सकते है।

द्वन्द्व – जब कोई व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में रूकावटों का सामना करता है तो वह तनावग्रस्त हो जाता है। यह अक्सर व्यक्ति में द्वन्द्व और निराशा की भावना पैदा करता है। प्रबल निराशा मिलने के कारण यह द्वन्द्व और भी तनावपूर्ण हो जाता है। आमतौर पर व्यक्ति द्वन्द्व में तब पड़ जाता है जब उसके सामने परस्पर विरोधी परिस्थितियॉं हो।

शब्द अंग्रेजी शब्द प्रेजुडिस का हिन्दी रूपान्तर है। इस शब्द को लैटिन भाषा प्रेजुडिसियस से लिया गया है जिसका अर्थ है वह निर्णय जो पूर्व निश्चयों पर निर्भर है। प्रेजुडिस शब्द का अर्थ वह व्यक्ति जो धर्मया जाति व लिंग के कारण किसीको ना पसंद करना अन्य शब्दोंमें इसका अर्थ वह निर्णय जो तथ्यों के अपेक्षित परीक्षा से पूर्व कर लिया गया हो एक अपरिपक्व या जल्दी में भाग लिया निर्णय। पूर्वाग्रह एक पूर्वकल्पित विवेकहीन निर्णय है।

आक्रामकता मेयर्स (1988) के अनुसार, ''आक्रामकता एक ऐसा शारीरिक या शाब्दिक व्यवहार होता है जिनका उद्देश्य दूसरों को चोट पहुँचाना होता है।'' अत: आक्रामकता उद्देश्य के साथ की जाती है बिना उद्देश्य के नहीं।

प्रकृति जीवन का आधार है प्रकृति के बिना मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। प्रकृति से हमें खाने के लिए भोजन,पीने के लिए पानी तथा रहने के लिए आवास मिलता है अर्थात् हम प्रकृति पर पूर्णतया निर्भर है, अत: हमें प्रकृति का संरक्षण करनाचाहिए। प्रकृति के संरक्षण हेतु मनुष्य ही प्रयास करता है इस प्रकार प्रकृति भी मानव पर आश्रित है। प्रकृति मानवसे श्रेष्ठ है परन्तु वर्तमान में ज्ञान-विज्ञान के चलते मनुष्य प्रकृति का विनास कर रहा है। वह अपनी शक्ति के नशे में यह भूल बैठा है कि प्रकृतिके विनाश से उसका भी अंतत: विनाश होगा। अत: शिक्षा वर्तमान में यह व्यवस्था करती है कि कैसे इन दोनों के बीच संतुलन स्थापित किया जाए। मानव प्रत्येक प्रकार के क्रियाकलापों के लिए पर्यावरण पर निर्भर है। मानव एक कलाकार के रूप में पर्यावरण द्वारा प्रदत्त रंगमंच पर कार्य करता है। कहीं पर्यावरण उसे प्रभावित करता है तो कहीं वह उसके साथ अनुकूलन तथा परिवर्तन करता है।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स्वामी विवेकानन्द।
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य

5. सत्य
6. असत्य
7. सत्य
8. असत्य
9. सत्य
10. सत्य
11. मानव पर पड़ने वाले भौगोलिक प्रभावों को चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-
    i) प्रत्यक्ष भौतिक प्रभाव,
    ii) मांनसिक प्रभाव,
    iii) आर्थिक और सामाजिक प्रभाव, तथा
    iv) मानव की गतियों को प्रभावित करने वाले प्रभाव
12. सत्य

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. खान,वसीम अहमद (2010), सामाजिक मनोविज्ञान, नई दिल्ली, डिस्कवरी पब्लिकेशन हाउस प्राइवेट लिमिटेड।
2. लाल, रमन बिहारी (2012), शिक्षा के दार्शनिक एंव समाजशास्त्रीय सिद्धान, मेरठ रस्तोगी पब्लिकेशन।
3. शर्मा, योगेश कुमार : शर्मा, मधुलिका, (2008), शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार नई दिल्ली, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्टीब्युटर्स।
4. Aggarwal. J. C. (1992). Development and Planning of Modern Education: New Delhi Vikas Publishing House Pvt. Ltd.
5. Anand, S. P. (1993).The Teacher & Education in Emerging Indian Society, New Delhi: NCERT.
6. Biswas. A. (1992). Education in India, Arya Book Depot. New Delhi
7. Biswas. A., & Aggarwal, J.C. (1992). Education in India, Arya Book Depot New Delhi.
8. Chandra, B. (1997). Nationalism and Colonialism, Orient Longman: Hyderabad.
9. Deshpande, S. (2004). Contemporary India: A Sociological View. Penguin: New Delhi.
10. Dubey, S. C (2001). Indian Society, National Book Trust: New Delhi.

11. Jagannath. M. (1993). Indian Education in the Emerging Society, New Delhi Sterling publishers Pvt. Ltd.
12. Sapra. C. L., & Aggarwal, A. (1987): Education in India some critical Issues. New Delhi: National Book Organisation.
13. Saraswathi, T. S. (1999). Culture, Socialization and Human Development, New Delhi: Sage Publications.
14. Steven, B. (1998). School and Society, New Delhi: Sage Publications.
15. Weber. O.C. (1990). Basic Philosophies of Education, New York Holt, Rinehart and Winston.

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के कार्यों की विवेचना कीजिए।
2. शिक्षा के वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य में समानता तथा अन्तर का विश्लेषण कीजिए।
3. द्वन्द्व से आप क्या समझते हैं ?द्वन्द के प्रकारों , स्रोतों एवं कारणों की विवेचना कीजिए।
4. पुर्वाग्रह, आक्रामकता एंव हिंसा के स्त्रोत एंव कारण का वर्णन कीजये।
5. पर्यावरणीय सरोकार में मानव एवं प्रकृति की अन्योन्याश्रित की विवेचना कीजिए।

इकाई 3 - व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्व; अंतरवैयक्तिक, सांप्रदायिक तथा राष्ट्रीय संदर्भ में द्वैत तथा द्वंद की अवधारणा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 स्व की अवधारणा
    3.3.1 स्व के प्रकार
    3.3.2 व्यक्तिगत स्व
    3.3.3 सामूहिक स्व
3.4 द्वैत तथा द्वंद
    3.4.1 द्वैत एवं द्वंद की अवधारणा
    3.4.2 द्वैत एवं द्वंद: अंतर वैयक्तिक संदर्भ
    3.4.3 द्वैत एवं द्वंद: सांप्रदायिक संदर्भ
    3.4.3 द्वैत एवं द्वंद: राष्ट्रीय संदर्भ
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय में प्रत्येक मनुष्य स्वयं से लगातार संघर्ष कर रहा है। आधुनिक समाज में आगे बढ़ने की होड़ में मनुष्य इतना व्यस्त है कि कहीं न कहीं वह अपने स्व अर्थात आत्म के विषय में नही समझ या सोच पा रहा है। स्व की पहचान से ही हमारी पहचान होती है जब तक हम स्वयं अपने विषय में नही जानेंगे तब तक परिवार, समूह, या समाज हमारे विषय में नही जान सकता। व्यक्तिगत स्व तथा समूहिक स्व का हमारे व्यक्तित्व विकास के साथ-2 पहचान में भी मुख्य भूमिका होती है। स्व का ज्ञान ही हमें समायोजन में मदद करता है। इस स्व की पहचान हेतु ही कभी-2 मनुष्य के मन तथा चेतना में द्वैत की

भावना जन्म लेती है। तत्पश्चात द्वंद की स्थिति उत्पन्न हो उठती है। ये द्वंद की स्थिति जब विकराल रूप लेती है तब इसको हम अंतवैयक्तिक द्वंद के रूप में अर्थात दो लोगों के मध्य उत्पन्न द्वंद महसूस करते है। कभी-2 यही द्वंद की स्थिति सांप्रदायिक रूप ले लेती है अर्थात जब इसे धार्मिक मान्यताओं से जोड़ देते है तो समाज में अस्थिरता तथा द्वंद उत्पन्न हो जाता है। राष्ट्रीय द्वंद , राष्ट्र में अथवा राष्ट्रों के मध्य किसी बात पे एक मत न होने से इस प्रकार का द्वंद उत्पन्न हो जाता है जिससे शांति भंग होती है तथा उसमें रहने वालें लोगों की मूल्य आधारित विचारों का भी हनन होता है जिसके उपरांत उनके अंदर ही अंदर अविश्वास तथा बदले की भावना प्रबल होने लगती है। प्रस्तुत इकाई में स्व की अवधारणा तथा द्वंद एवं द्वैत को अंतर वैयक्तिक, साम्प्रदायिक एवं राष्ट्रीय संदर्भों में समझने का प्रयास करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप यह स्पष्ट कर सकेंगे कि

1. स्व क्या है तथा उसके कितने प्रकार है?
2. व्यक्तिगत स्व तथा सामूहिक स्व में क्या अंतर है?
3. द्वैत तथा द्वंद की अवधारणा क्या है?
4. अंतरवैयक्तिक द्वैत तथा द्वंद की अवधारणा क्या है?
5. सांप्रदायिक द्वंद की अवधारणा क्या है?
6. सांप्रदायिक द्वंद के प्रमुख कारण क्या हैं?
7. सांप्रदायिक द्वंद को कम कने के क्या उपाय हैं?
8. राष्ट्रीय द्वंद की अवधारणा क्या है?

3.3 स्व की अवधारणा

स्व, एक व्यक्ति द्वारा एक ही व्यक्ति के लिए एक संदर्भ है यह संदर्भ आवश्यक रूप से व्यक्तिपरक है। व्यक्ति परिप्रेक्ष्य अपने व्यक्तिगत पहचान को आत्मनिष्ठा से अलग करता है। तंत्रिका विज्ञान में आत्म या स्व, इनूलसा मस्तिष्क में एक क्षेत्र है, जो मस्तिष्क की निओकोर्टिकल की सतह के नीचे आलोकोर्टेक्स में स्थित होता है। दर्शन के अनुसार, स्व किसी व्यक्ति के लिए वह आवश्यक गुण है जो उस व्यक्ति को विशिष्टता प्रदान करता है अथवा विशेष बनाता है। व्यक्ति की विशिष्टता हेतु आवश्यक गुणों की व्याख्या हेतु अनेक प्रकार के उपागम उपस्थित है। स्व पर विचार करने से हमारे अंदर चेतना का संचार होता है। व्यक्ति के विचार तथा क्रियाएँ उसकी प्रकृति निर्धारित करती है तथा साथ ही साथ समय के साथ चेतना का संचार भी करती है। मनोविज्ञान के अनुसार स्व, किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत पहचान का संज्ञानात्मक या भावात्मक पक्ष का प्रदर्शन है।

3.3.1 स्व के प्रकार

स्व पाँच प्रकार का होता है –

i. **परिस्थितिकी स्व** :- इस प्रकार का स्व, भौतिक वातावरण के संबंध में देखा जाता है अर्थात व्यक्ति जिस जगह पर है तथा जिस गतिविधि में लिप्त है उसी परिप्रेक्ष्य में उसके विषय में समझा जाता है।

ii. **अंतर वैयक्तिक स्व :-** इस प्रकार का स्व का रूप आरंभिक शैशवावस्था से प्रकट होता है जैसा कि परिस्थितिकी स्व में होता है। यह व्यक्तियों के मध्य के घनिष्ठता को प्रदर्शित करता है।

iii. **विस्तारित स्व :-** यह स्व मुख्य रूप से हमारे व्यक्तिगत चेतना तथा पूर्व ज्ञान पर आधारित होता है। यह अनुभव कराता है कि मै वह व्यक्ति हूँ जिसके पास कुछ निश्चित अनुभव है जो कि व्यक्ति को नियमित रूप से कुछ निश्चित विशिष्ट दिनचर्या से जोड़ता है।

iv. **निजी स्व :-** इस प्रकार का स्व सर्वप्रथम उस समय प्रकट होता है जब बच्चों द्वारा यह अनुभव किया जाता है कि उनके द्वारा प्रत्यक्ष किया जा रहा अनुभव दूसरों के साथ नहीं बांटा जा सकता क्यूंकी दूसरे लोग उसे समझ नहीं पाएंगे जैसे- किसी विशेष परिस्थिति में बच्चें जिन नियमों या दर्द के बारे में अनुभव कर रहे है, दूसरा कोई उन नियमों तथा दर्द को महसूस नहीं कर पायेगा। अर्थात बच्चों द्वारा अपने निजी अनुभव को सर्वोच्च समझा जाता है।

v. **संकल्पनात्मक स्व :-** संकल्पनात्मक स्व को समझने हेतु स्व संकल्पना के अर्थ को समझना होगा जैसा कि और संकल्पना के विषय में जानकारी प्राप्त करते है। इसका अर्थ व्यक्तिगत स्व के परिकल्पनाओं तथा इससे संबन्धित मान्यताओं में अंतर्निहित होता है। स्व को हम व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप में भी समझ सकते है।

3.3.2 व्यक्तिगत स्व का अर्थ

व्यक्तिगत स्व, से अभिप्राय स्वचेतन मन से है जो कि हमारे शरीर का वह भाग है जो इस भौतिक संसार में स्वयं के प्रति एक विशिष्ट व्यक्तित्व के रूप में चैतन्य रूप से जागरूक है। इसी को वस्तुनिष्ठ मन की संज्ञा दी जाती है। व्यक्तिगत स्व के कारण हम व्यक्तिगत तथा वस्तुनिष्ठ रूप से स्वयं को अपने आस-पास के भौतिक वातावरण के अन्य व्यक्तियों तथा वस्तुओं से अलग अनुभव करते है। स्व चेतन मन, चेतन मन का वह भाग है जो हमारे व्यक्तित्व स्तर पर कार्य करता है तथा स्व जागरूक चेतना का विस्तार करता है।

3.3.3 सामूहिक स्व का अर्थ

सामूहिक स्व, स्व का वह पक्ष है जो कि समूह में आपकी सदस्यता तथा सहभागिता पर आधारित होता है। यह स्व का प्रत्यक्षीकरण कुछ सामाजिक वर्गो के विनिमेय नमूने के रूप में करता है न कि एक विशिष्ट व्यक्ति के रूप मे करता है। सामूहिक स्व, दूसरे के साथ हमारे अनौपचारिक बंधन पर आधारित होता है। यह अनौपचारिक बंधन सामाजिक समूह मे हमारी व्याप्त पहचान से उत्पन्न होता है। इस प्रकार के अनौपचारिक बंधन बनाने के लिए सामाजिक समूह के लोगों के मध्य प्रगाढ़ व्यक्तिगत संबंध आवश्यक

नही है। सामूहिक स्व, उन विशेषताओं से बना होता है जिनके कारण किसी समूह में लोग उस विशेषता के आधार पर पूर्व मे उस व्यक्ति से परिचित रहते है अर्थात समूहिक स्व वह संकल्पना है जो किसी की पहचान को एक समूह से दूसरे समूह में अलग करता है।

3.3.4 व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्व का महत्व

व्यक्तिगत स्व हमारे अंदर चेतना का प्रसार करता है तथा यह चेतना ही हमे अपने अंदर उपस्थित विशिष्टताओं से परिचित करता है जो हमे कोई विशिष्ट कार्य करने के लिए आत्मविश्वास प्रदान करता है। व्यक्तिगत स्व के माध्यम से ही हम अपने विषय में पूर्ण रूप से जान पाते है तथा अपने को इस भौतिक जगत से अलग कर पाते है। सामूहिक स्व, सामाजिक समूह में हमारी विशेष पहचान बनाने में सहायता करता है। सामाजिक स्व, समाज में हमारे अनौपचारिक बंधनों तथा क्रियाकलाप का निर्धारण करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. व्यक्तिगत स्व से क्या तात्पर्य है?
2. समूहिक स्व का क्या अर्थ है?

3.4 द्वैत तथा द्वंद

3.4.1 द्वैत एवं द्वंद की अवधारणा

द्वैत दो विपरीत बलों के मध्य उत्पन्न द्वंद के शक्तियों की विवेचना करता है। अर्थात जो द्वंद उत्पन्न हुआ है वह किस श्रेणी का है उससे संघर्ष उत्पन्न होने की क्या संभावनाएँ बनती है तथा उसमें कितनी प्रबलता है। ये बल एक दूसरे के पूरक भी हो सकते है या तो किसी पैमाने के दो अलग-2 सिरे भी हो सकते है किन्तु हर परिस्थिति में इसमें संतुलन अवश्य स्थापित होना चाहिए। द्वंद की स्थिति से यह आवश्यक नहीं कि कोई विजयी बन कर निकल जायें अर्थात यह स्थिति अनिश्चितकाल तक बनी रह सकती है, जबकि द्वैत एक मध्य मार्ग के रूप में उपस्थित हो सकता है जिसके द्वारा अन्य पक्षों पर ध्यान केन्द्रित न करते हुए द्वंद की स्थिति से ऊपर उठ कर स्व को प्राप्त किया जा सकता है। कभी -2 द्वैत को पूरक अर्थों में भी प्रयोग किया जाता है अर्थात जब किसी एक का अस्तित्व दूसरे के बिना संभव न हो जैसे शरीर के बिना मन का अस्तित्व नहीं है वैसे ही मन के बिना शरीर का क्या अस्तित्व।

द्वंद हमारे जीवन का प्रकृतिक हिस्सा है। हम सभी समय पर द्वंद का अनुभव करते है अधिकांश लोग द्वंद को नकारात्मक रूप में लेते है। जबकि द्वंद न तो नकारात्मक है न ही सकारात्मक है केवल द्वंद का परिणाम अच्छा या बुरा होता है। यदि हम कुशलतापूर्वक द्वंद से निपट ले तो हमे अधिक अच्छे सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो सकते है। कभी कभी द्वंद से निपटने के अनुपयुक्त तरीके हमे वांछित परिणाम तक नही ले पाते अपितु तनाव उत्पन्न हो जाता है। द्वंद एक ऐसी समस्या नही है जिसको नज़रअंदाज़

किया जाए अपितु एक प्रक्रिया है जो व्यक्तिगत और सामाजिक प्रगति को गति प्रदान करती है। यदि द्वंद से बुद्धिमतापूर्ण तरीके से निपटा जाए तो यह हमे दूसरों के परिप्रेक्ष को समझने में मदद करता है और स्वयं की गलतियों से भी परिचित कराता है। और इस प्रकार व्यक्ति भविष्य के द्वंद से और बेहतर तरीके से निपटने हेतु अपनी योग्यता में वृद्धि करता है। समाज में और स्वयं के अंदर शांति स्थापित करने के लिए द्वंद से निपटने की योग्यता महत्वपूर्ण है।

द्वंद हमारे दैनिक जीवन का अवहेलना न करने योग्य पक्ष है। द्वंद का सामान्य अर्थ आवश्यकताओं, इच्छाओं, दृष्टिकोणों और मूल्यों की असंगति है जिसका मतलब है कि व्यक्तियों की दो वर्तमान आवश्यकताओं अथवा लक्ष्यों की पूर्ति एक साथ नहीं की जा सकती है। जब भी हमारी धन, शक्ति और संसाधनों की आवश्यकताएं का किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकताओं के साथ संघर्ष होगा तो वहाँ पर निश्चित रूप से द्वंद होगा। जब भी किसी भी व्यक्ति के क्रियाकलाप को बाधित किया जाता है तो वहाँ पर द्वंद उत्पन्न होता है। कभी- कभी व्यक्ति यह सोचते हैं कि उनके लक्ष्य असंगत हैं किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता है। यह मात्र उनका प्रत्यक्षीकरण होता है। यह आवश्यक नहीं है कि द्वंद हर समय कार्य अथवा शब्दों में अभिव्यक्त हो कभी –कभी यह अव्यक्त भी हो सकता है।

द्वंद एक ऐसी परिस्थिति है जिसमें व्यक्ति को दो या दो से अधिक परस्परिक विलक्षण लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु दो असंगत रास्तों के मध्य निर्णय लेना पड़ता है । विरोधाभासी विकल्पों में लगभग समान आकर्षण होता है । किसी एक के चुनाव का अर्थ होता है कि दूसरे विकल्प को अस्वीकार करना इस कारण व्यक्ति हिचकिचाता है और इस दौरान वह बहुत तनाव की स्थिति में रहता है ।

द्वैतवाद की उत्पत्ति लैटिन शब्द के "डुओ' से हुई इसका अर्थ होता है "दो" अर्थात दो भागों की स्थिति को दर्शाना। इस शब्द की उत्पत्ति मूल रूप से सहशाश्वत, द्वियाधारीय विपक्ष को निरूपित करने हेतु हुई है । द्वैतवाद का अर्थ आध्यात्म में संरक्षित है तथा दार्शनिक द्वैत प्रवचनों में व्याप्त है किन्तु इसको अन्य प्रयोगों में लाने के लिए अधिक सामान्यीकृत किया गया जो कि एक प्रणाली की ओर इंगित करे जिसके दो आवश्यक भाग हों। द्वैत दो विपरीत बलों के मध्य उत्पन्न द्वंद के शक्तियों की विवेचना करता है । अर्थात जो द्वंद उत्पन्न हुआ है वह किस श्रेणी का है उससे संघर्ष उत्पन्न होने की क्या संभावनाएँ बनती है तथा उसमें कितनी प्रबलता है । ये बल एक दूसरे के पूरक भी हो सकते है या तो किसी पैमाने के दो अलग-2 सिरे भी हो सकते है किन्तु हर परिस्थिति में इसमें संतुलन अवश्य स्थापित होना चाहिए

द्वंद का सामान्य अर्थ आवश्यकताओं, इच्छाओं, दृष्टिकोणों और मूल्यों की असंगति है जिसका मतलब है कि व्यक्तियों की दो वर्तमान आवश्यकताओं अथवा लक्ष्यों की पूर्ति एक साथ नहीं की जा सकती है। जब भी हमारी धन, शक्ति और संसाधनों की आवश्यकताएं का किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकताओं के साथ संघर्ष होगा तो वहाँ पर निश्चित रूप से द्वंद होगा। द्वंद हमारे जीवन का प्रकृतिक हिस्सा है। हम सभी समय पर द्वंद का अनुभव करते है अधिकांश लोग द्वंद को नकारात्मक रूप में लेते है । जबकि द्वंद न तो नकारात्मक है न ही सकारात्मक है केवल द्वंद का परिणाम अच्छा या बुरा होता है ।

3.4.2 द्वैत एवं द्वंद: अंतर वैयक्तिक संदर्भ

अंतर्वैयक्तिक द्वैत तथा द्वंद दो व्यक्तियों के मध्य अलग-अलग विचार होने के कारण उत्पन्न द्वंद है। इस प्रकार का उत्पन्न द्वंद यह दर्शाता है कि व्यक्ति किस प्रकार से एक दूसरे से अलग है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व अलग अथवा विशिष्ट है जो की उस व्यक्ति की असंगत चयन तथा मतों के लिए जिम्मेदार होता है। वास्तव में देखा जाए तो यह एक प्रकार की प्राकृतिक घटना है जो व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत विकास तथा साथ ही साथ दूसरों के साथ संबंध बनाने में मदद करता है। इसके अलावा इस प्रकार के द्वंद उत्पन्न होने पर समायोजन करने की क्षमता आवश्यक होती है।

इस प्रकार के द्वंद मानव अंतःक्रिया का अभिन्न अंग होते है जो कि शांति निर्माण के लिए महत्वपूर्ण माने जाते है ऐसे द्वंद भी लक्ष्यों, आवश्यकताओं, मूल्यों, विश्वासों इत्यादि में असंगति के कारण विद्यमान होते है।

आइये इसको एक कहानी के माध्यम से समझते हैं -

"यह कहानी एक स्कूल की है घटना में एक वरिष्ठ शिक्षक और एक नव प्रवेशी शिक्षिका सम्मिलित है। रचना जो कि उच्च वर्ग से संबन्धित है, स्कूल की वरिष्ठ, योग्य और अनुभवी शिक्षिका हैं। वह अहंकारी स्वभाव की थी और स्वयं को सम्पूर्ण समझती थी सुनीता भी योग्य शिक्षिका थी किन्तु उसमें आत्मविश्वास की कमी थी और वह एक ऐसे समुदाय से थी जिसका समाज में उच्च दर्जा प्राप्त नहीं है। वह ईमानदार, सीधी किन्तु संवेदनशील थी। कुछ शुरुआती वार्तालाप के दौरान यह कनिष्ठ शिक्षिका अपने वरिष्ठ शिक्षिका के शाब्दिक एवं अशाब्दिक व्यवहार से आहत हुई। धीरे- धीरे उन दोनों के बीच आपसी अविश्वास पैदा हो गया। कुछ समय बाद दोनों के बीच बातचित लगभग बंद हो गयी। दोनों एक दूसरे पर बहुत कठोर और आहत करने वाली टिप्पणी करने लगी दोनों अत्यंत अड़ियल रही। यह घटना स्कूल के अधिकारियों के संज्ञान में आई किन्तु उन्होने इस संबंध में कोई कार्यवाही नही की। यहाँ तक कि विद्यार्थियों को भी इस घटना की जानकारी होने लगी। स्कूल के एक शिक्षक के द्वारा अनुसूचित जाति-जनजाति प्रकोष्ठ ने इस मामले में हस्तक्षेप किया और यह खबर समाचार पत्रों के माध्यम से बाहर प्रचारित हुई। सभी संबन्धित अधिकारियों और व्यक्तियों को इस मामले में शांति स्थापित करने में काफी प्रयास करने पड़े किन्तु दुर्भाग्यपूर्ण तरीके से उन दोनों के बीच विद्वेष जारी रहा।"

उपरोक्त घटना में दोनों शिक्षिकाओं का स्वभाव असंगत था यह असंगति उनके दृष्टिकोण, मूल्यों, महत्वाकांक्षाओं में थी। वरिष्ठ शिक्षिका अपने उच्च आर्थिक स्तर और वरिष्ठता के कारण सम्मान चाहती थी जबकि कनिष्ठ शिक्षिका अपमान एवं अनादर के बारे में स्वयं को असुरक्षित और संवेदनशील महसूस करती थी। इस कारण दोनों के बीच द्वंद था।

कुछ अन्य प्रकार के अंतर वैयक्तिक द्वंद भी हैं जो अन्याय, अपमान, विभिन्न व्यक्तियों और समूहों के बीच व्याप्त असमानता, धर्म, भाषा और जाति के कारण भी उत्पन्न होते हैं। जैसे कुछ समूह और समुदाय सही या गलत रूप में यह महसूस करते हैं कि समाज, सरकार और कोई अन्य संस्था उनके साथ न्याय नहीं कर रही है। वे विभिन्न स्थानों पर धरना, प्रदर्शन और सड़क जाम करते हैं जिससे कई अन्य लोगों को असुविधा होती है और वो नाराज होते हैं। इस तरह का द्वंद हर प्रकार के समाज में विद्यमान है। इस प्रकार के द्वंदों में पुनरावृत्ति होती है तथा बार-2 उसको संभालना पड़ता है।

3.4.3 द्वैत एवं द्वंद: सांप्रदायिक संदर्भ

साम्प्रदायिकता से तात्पर्य उस संकीर्ण मनोवृति से है, जो धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर पूरे समाज तथा राष्ट्र के व्यापक हितों के विरुद्ध व्यक्ति को केवल अपने व्यक्तिगत धर्म के हितों को प्रोत्साहित करने तथा उन्हें संरक्षण देने की भावना को महत्व देती है। यह व्यक्ति में अंतरराष्ट्रीय एवं सर्वमान्य सत्य की भावना के विरुद्ध व्यक्तिगत धर्म और सम्प्रदाय के आधार पर परस्पर घृणा, द्वंद, ईर्ष्या तथा द्वेष को जन्म देती है। यह भावना अपने धर्म के प्रति अन्ध भक्ति तथा परधर्म तथा उसके अनुयायियों के प्रति विद्वेष की भावना उत्पन्न करती है। भारत में साम्प्रदायिकता के विकास में विभिन्न कारणों, परिस्थितियों एवं तत्वों ने सम्मिलित भूमिका निभायी।

भारत में साम्प्रदायिकता का विकास भी इसी प्रकार का है। ऐसा नहीं है कि साम्प्रदायिकता का विकास सिर्फ भारत में ही हुआ है। यह भी उन्हीं परिस्थितियों का प्रतिफल था, जिन्होंने दूसरे समाजों में साम्प्रदायिकता जैसी घटनाओं और विचारधाराओं को जन्म दिया था। जैसे नस्लवाद, सामीवाद विरोध, फासीवाद, उत्तरी आयरलैंड में कैथोलिक-प्रोटेस्टेंट संघर्ष या लेबनान में ईसाई-मुस्लिम संघर्ष। साम्प्रदायिकता को उभारने वाले तत्वों ने आर्थिक हितों को दरकिनार कर इसे ज्यादा महत्वपूर्ण बताया तथा जनमानस में इसके लिये एक व्यापक आधार तैयार किया।

भारत में साम्प्रदायिक चेतना का जन्म उपनिवेशवादी नीतियों तथा उसके विरुद्ध संघर्ष करने की आवश्यकता से उत्पन्न परिवर्तनों के कारण हुआ। विभिन्न क्षेत्रों तथा देश के सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक एकीकरण, भारत को एक आधुनिक राष्ट्र बनाने की प्रक्रिया, आधुनिक सामाजिक वर्गों एवं उपवर्गों का निर्माण तथा भारतीयों के बढ़ते हुये अंतर्विरोध जैसे कारणों से लोगों में अपने साझा हितों आयामों का विकास तथा नयी पहचानों का निर्माण आवश्यक हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजनीति की जिस नयी अवधारणा का जन्म हुआ उससे भी साम्प्रदायिकता की विचारधारा को बल मिला।

नए विचारों को ग्रहण करने, नई पहचानों तथा विचारधाराओं का विकास करने तथा संघर्ष के दायरे को व्यापक बनाने के लिए लोगों ने पुरातन तथा पूर्व-आधुनिक तरीकों के प्रति आसक्ति प्रकट की उसने भी साम्प्रदायिकता की विचारधारा को सशक्त बनाने में मदद की। संकीर्ण सामाजिक प्रतिक्रियावादी तत्वों ने साम्प्रदायिकता को पूर्ण समर्थन दिया।

यद्यपि धार्मिकता, साम्प्रदायिकता को बहुत ज्यादा प्रोत्साहित करने का मूल कारण नहीं था किंतु भारत जैसे देश में जहां शिक्षा का अभाव था तथा लोगों में बाह्य जगत संबंधी चेतना ना के बराबर थी, धार्मिकता ने साम्प्रदायिकता के लिये उत्प्रेरक की भूमिका निभायी तथा तथाकथित तत्वों में इसे साम्प्रदायिकता के वाहन के रूप में प्रयुक्त किया।

साम्प्रदायिकता के विकास के कारण-

i. **सामाजिक एव आर्थिक कारण-** कालांतर में भारत में बुर्जआ वर्ग तथा व्यावसायिक वर्ग का उदय हुआ। उदय की यह प्रक्रिया हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही सम्प्रदायों में समान थी। सरकारी सेवाओं, व्यवसाय एवं उद्योगों में दोनों वर्गों के मध्य प्रतिद्वंदिता अवश्यंभावी थी और धीरे-धीरे यह बढ़ती गयी। मुस्लिम बुर्जुआ वर्ग ने अपने पक्षपोषण हेतु हिन्दू बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध, निम्न मध्यवर्गीय मुसलमानों को प्रोत्साहित किया।

भारत के आर्थिक पिछड़ेपन तथा भयावह बेरोजगारी जैसी समस्याओं ने अंग्रेजों को साम्प्रदायिकता को उभरने तथा अलगाववादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने का भरपूर अवसर प्रदान किया। अंग्रेजों ने इस हेतु व्यक्तिगत गुणों, पक्षपात का उपयोग साम्प्रदायिकता के उत्थान में किया। इसके साथ ही मुसलमानों में आधुनिक राजनीतिक चेतना के विकास की प्रक्रिया अपेक्षाकृत धीमी थी तथा उन पर परम्परागत प्रतिक्रियावादी कारक ज्यादा हावी थे फलतः इस समुदाय में साम्प्रदायिक विचारधारा को अपनी जड़े ज़माने के लिए उचित अवसर मिला।

ii. **अंग्रेजों की फूट डालो और शासन करो की नीति-** प्रारंभ में ब्रिटिश सरकार ने मुसलमानों को शंकालु दृष्टि से देखा। 1857 के विद्रोह और बहावी आंदोलन के पश्चात तो सरकार की शंका उनके प्रति और बढ़ गयी। फलतः अंग्रेजों ने मुसलमानों के प्रति दमन तथा भेदभाव की नीति अपनायी। शिक्षा में अंग्रेजी भाषा के प्रसार से अरबी तथा फारसी भाषायें पिछड़ गयीं। मुस्लिम समाज में इसका प्रतिकूल प्रभाव यह हुआ कि उनमें आर्थिक पिछड़ापन बढ़ा तथा वे धीरे-धीरे सरकारी सेवाओं से वंचित होने लगे।

1870 के पश्चात भारतीय राष्ट्रवाद के उभरने तथा नवशिक्षित मध्य-वर्ग के राजनीतिक प्रक्रियाओं एवं सिद्धांतों से परिचित होने के कारण अंग्रेजों ने मुसलमानों के दमन की अपनी नीति त्याग दी तथा उनमें चेतना का प्रसार कर तथा आरक्षण एवं समर्थन देकर उन्हें उभारने का प्रयत्न किया, जिससे मुसलमानों को राष्ट्रवादी ताकतों के विरुद्ध प्रयुक्त किया जा सके।

iii. **भारतीय इतिहास लेखन द्वारा साम्प्रदायिकता को बढ़ावा -** अनेक अंग्रेजी इतिहासकारों ने हिन्दू-मुस्लिम फूट को बढ़ावा देने तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जड़ें सुदृढ़ करने के उद्देश्य से भारतीय इतिहास की व्याख्या इस तरह की जिससे साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिल सके। बाद में विभिन्न भारतीय इतिहासकारों ने उनका अनुसरण करते हुए प्राचीन भारत को हिन्दू काल तथा मध्यल्कलिन भारत को मुस्लिम काल की संज्ञा दी। मध्यकालीन भारत में शासकों के आपसी संघर्ष को इन इतिहासकारों ने हिन्दू मुस्लिम संघर्ष के रूप में उद्धृत किया।

iv. **सामाजिक-धार्मिक सुधार आदोलनों का पार्श्व प्रभाव-** 19वीं शताब्दी में हिन्दू तथा मुसलमान अनेक सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आन्दोलन हुए। इन सभी सुधार आन्दोलनों ने स्वयं को अपने-अपने समुदाय के लोगों तक ही सीमित रखा। सुधार आंदोलनों की इस प्रवृति से देश विभिन्न समुदायों में विभक्त हो गया। मुस्लिम सुधार आन्दोलन जैसे 'बहावी आंदोलन, तथा हिन्दू सुधार आन्दोलन जैसे 'शुद्धि आंदोलन' के व्यक्तिगत धार्मिक स्वरूप के कारण धर्म का उग्रवादी चरित्र रेखांकित हुआ तथा इससे साम्प्रदायिकता को बल मिला। इन सुधार आंदोलनों में सांस्कृतिक

विरासत के धार्मिक तथा दार्शनिक पहलुओं पर एकांकी बल दिया गया। इन विभिन्न सुधार-आंदोलनों के समानांतर प्रवाह को एक धर्म के द्वारा दूसरे धर्म का अपमान करना समझा गया।

v. **उग्र राष्ट्रवाद का पार्श्व प्रभाव** - राष्ट्रवाद के प्रारंभिक चरण में राष्ट्रवादियों ने अल्पसंख्यकों के भय को दूर करने पर विशेष बल दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1886 में आयोजित दूसरे अधिवेशन में दादाभाई नौरोजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में घोषित किया कि कांग्रेस के अधिवेशनों या सम्मेलनों में सामाजिक-धार्मिक प्रश्न नहीं उठाये जायेंगे। 1889 में कांग्रेस ने निश्चय किया कि वह ऐसे किसी भी मुद्दे को अपने कार्यक्रमों या उद्देश्यों में सम्मिलित नहीं करेगी, जिसका मुसलमान विरोध करेंगे। किंतु कालांतर में उग्रवादी राष्ट्रवाद के उभरने से इसमें हिन्दू राष्ट्रवादी हावी हो गये। तिलक के गणपति एवं शिवाजी उत्सव तथा गोहत्या के विरुद्ध अभियान ने विभिन्न प्रकार की शंकाओं को जन्म दिया। भारत माता तथा राष्ट्रवाद की धर्म के रूप में अरविंद घोष की अवधारणायें, गंगा स्नान के पश्चात बंग-भंग विरोध आंदोलन प्रारंभ करना तथा क्रांतिकारियों द्वारा देवी काली या भवानी के सम्मुख शपथ ग्रहण करने जैसी रस्में भी द्वंद को बढ़ावा देने वाली थीं। निःसंदेह ये सभी रस्में मुस्लिम समुदाय के सदस्यों की धार्मिक भावनाओं के प्रतिकूल थीं। क्रांतिकारियों द्वारा शिवाजी एवं महाराणा प्रताप के क्रमशः औरंगजेब तथा अकबर के विरुद्ध संघर्ष को धार्मिक संघर्ष के रूप में महिमा मंडित करना, लखनऊ समझौते (1916) तथा खिलाफत आंदोलन (1920-22) का भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से विशिष्ट साम्प्रदायिक प्रभाव हुआ।

vi. **बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक समुदाय की साम्प्रदायिक प्रतिक्रिया** -बहुसंख्यक समुदाय द्वारा विभिन्न संगठनों के गठन की अल्पसंख्यकों पर साम्प्रदायिक प्रतिक्रिया हुयी। अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा भी संगठनों के गठन किए गए। इन संगठनों ने अपने -अपने समुदायों के हितों की वकालत की जिसके फलस्वरूप बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक समुदायों के बीच द्वंद में बढ़ोत्तरी हुई।

सांप्रदायिक द्वंद अंतर-सांस्कृतिक संघर्ष है, जिसमें किसी राज्य के प्रतिस्पर्धी समूहों के बीच होने वाले संघर्ष का वर्णन किया जाता है। यह दुर्लभ संसाधनों या राजनीतिक शक्ति तक पहुंच से संबंधित विवादों से उत्पन्न हो सकता है। इस तरह के संघर्षों में दो या दो से अधिक परिभाषित समुदायों के बीच हिंसक युद्ध भी हो सकता है।

सांप्रदायिक संघर्ष को गैर-राज्य समूहों के बीच एक संघर्ष के रूप में परिभाषित किया गया है क्योंकि इसे साझा सांप्रदायिक पहचान के साथ संगठित किया गया है। यह परिभाषा कुछ और स्पष्टीकरण के योग्य है। संघर्ष इस तथ्य को दर्शाता है कि पार्टियां कुछ विवादित और कथित अविभाज्य संसाधन, जैसे भूमि का एक टुकड़ा या स्थानीय राजनीतिक सत्ता पर नियंत्रण हासिल करना चाहते हैं। शामिल समूह गैर-राज्य समूह हैं। इसका मतलब यह है कि नेता राज्य को नियंत्रित नहीं करता है। हालांकि राज्य सांप्रदायिक संघर्ष में एक महत्वपूर्ण सहायक नेता के रूप में शामिल हो सकता है। इस प्रकार, सामूहिक हिंसा की इस श्रेणी में आमतौर पर सिविल युद्धों की तुलना में अधिक सममिति है। सांप्रदायिक संघर्षों में, किसी भी नेता को सरकार के अधिकार के नहीं हैं और

कोई भी दल राष्ट्रीय सेना के नियंत्रण में नहीं हैं। इसी तरह, समूहों को औपचारिक रूप से हिंसा के लिए खड़ी क्षमता वाले विद्रोही समूहों का आयोजन नहीं किया जाता, बल्कि वे समूह होते हैं जो संघर्ष में संलग्न होने के लिए कभी-कभी संगठित होते हैं। संगठन के उच्च स्तर और राज्य-आधारित संघर्षों की भौतिक ताकत का मतलब है कि वे आमतौर पर (लेकिन हमेशा से दूर) एक उच्च विनाशकारी क्षमता रखते हैं, और सांप्रदायिक संघर्षों की तुलना में लंबी अवधि के लिए खींचने की प्रवृत्ति है।

सांप्रदायिक द्वंद को कम करने हेतु उपाय

1. साम्प्रदायिकता उभारने वाली किसी भी दुष्प्रवृत्ति के शिकार हम खुद न हों, और समाज में साम्प्रदायिकता उभारने वाली कोशिशों के खिलाफ़ खड़े हों, फिर चाहे ऐसी कोशिश हिन्दुओं के द्वारा हो या मुसलमानों के द्वारा हो या अन्य किसी भी धर्म को मानने वालों के द्वारा हो।
2. केन्द्र व राज्य सरकारों का कोई भी प्रतिनिधि किसी भी धर्म विशेष के अनुष्ठान में राज्य एवं शासन के प्रतिनिधि के रूप में शामिल नहीं हो, न ऐसे अनुष्ठानों को राज्य द्वारा किसी प्रकार की विशेष सहायता मिले, और न ही राजकीय उद्घाटन, शिलान्यास आदि के आयोजन किसी धर्म-विशेष के अनुष्ठान से शुरु हों । धर्म-निरपेक्ष राज्य की संवैधानिक घोषणा का यह सर्वथा उल्लंघन है। हम ऐसे आयोजनों के खिलाफ जनमत का दबाव पैदा करें।
3. एक धर्म की उपासना विधियों, उत्सवों, पर्वों के आयोजनों से जिनसे दूसरे धर्मों की उपासना विधियों,उत्सवों-पर्वों में बाधा पहुँचे, ऐसी व्यवस्था क्यों चलनी चाहिए? क्या मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा आदि धार्मिक केन्द्रों में लाउडस्पीकरों का उपयोग और उत्तेजनात्मक घोषणाओं का उग्र उद्घोष इसी तरह बराबर होते रहना उचित है? यह विचारणीय प्रश्न हैं। इससे हमारी भक्ति-भावना में वृद्धि नहीं होती, हमारी प्रतिक्रियात्मक , प्रतिशोधात्मक भावनाओं का इजहार होता है।
4. हम अपनी धार्मिक-साम्प्रदायिक भावनायें दूसरे पर थोपने की कोशिश न करें। हमारे विचार-आचार में तेज होगा तो वह दूसरों को भी प्रेरित करेगा, यहीं तक अपनी भावनाओं को मर्यादित रखें।
5. हम यह न भूलें कि कोई एक गलती करता है तो उसके जवाब में हम दस गलती करके अपना ही नुकसान करते हैं। अत: हम न गलती करेंगे, न गलती होने देंगे, न जुल्म करेंगे, न जुल्म सहेंगे की नीति पर चलें।
6. हम उन अखबारों, प्रचार-माध्यमों, नेताओं, संगठनों का बहिष्कार एवं विरोध करे, जो साम्प्रदायिकता के जहर को फैलाते हैं। अखबारों में छपने वाले ऐसे लेखों-टिप्पणियों का विरोध हम लिखित रूप में लेख-टिप्पणियाँ-सम्पादक के नाम पत्र लिखकर करें – जिनसे साम्प्रदायिकता का जहर समाज में फैलता हो। इसके अलावा स्वतंत्र रूप से पर्चे छापकर करें तथा अन्य लोकशिक्षण के माध्यमों से साम्प्रदायिकता के विरुद्ध लोगों को जागृत-संगठित करें।

7. हम जो भी धर्म, जीवन-शैली, उपासना पद्धति अपनाते हों, अपनाएँ लेकिन अपने से भिन्न दूसरे धर्मों, जीवन-शैलियों, उपासना – पद्धतियों के प्रति सहिष्णु एवं उदार रहें। हमारी इस वृत्ति से ही परस्पर संवाद-सम्बन्ध कायम रहेगा और संवादों-सम्बन्धों के आधार पर ही हम एक दूसरे की कमियों को, यदि होगी तो, दूर करने में सहायक होंगे और समाज में शांति की संस्कृति निर्मित हो सकेगी।
8. आर्थिक एवं सामाजिक गैर-बराबरी किसी भी समाज और राष्ट्र की सबसे बड़ी कमजोरी है। क्या हम इतिहास के इस तथ्य को नकार सकते हैं कि हमारी इसी सामाजिक कमजोरी के चलते भारतीय समाज और राष्ट्र कमजोर हुआ है, टूटा है, गुलाम हुआ है, हिंसा-प्रतिहिंसा का शिकार हुआ है? यदि आर्थिक-सामाजिक गैरबराबरी बनी रही, बढ़ती रही तो कोई भी धर्म-सम्प्रदाय भारतीय समाज-राष्ट्र को विघटित होने से नहीं रोक पायेगा। पेट भरने, तन ढकने, सर छुपाने के लिए समुचित आवास व्यवस्था एवं शिक्षा- स्वास्थ्य आदि की प्राथमिक मानवीय जरूरतें पूरी करने की अनिवार्य मांग को धार्मिक-उन्माद उभारकर लम्बे अर्से तक टाला नहीं जा सकता है। सुदूर पूर्व से लेकर पश्चिम तक विभिन्न रूपों में यह मांगें तीव्र और खतरनाक रूप ले चुकी हैं। इसलिए जरूरी है कि समाज की इस कमजोरी को दूर करने का, मानवीय बराबरी की व्यवस्था लाने का प्रयास किया जाए।

3.4.3 द्वैत एवं द्वंद: राष्ट्रीय संदर्भ

राष्ट्रीय द्वंद, राष्ट्र में अथवा राष्ट्रों के मध्य किसी बात पर एक मत न होने से इस प्रकार का द्वंद उत्पन्न हो जाता है जिससे शांति भंग होती है तथा उसमें रहने वालें लोगों की मूल्य आधारित विचारों का भी हनन होता है जिसके उपरांत उनके अंदर ही अंदर अविश्वास तथा बदले की भावना प्रबल होने लगती है।

दूसरे विश्वयुद्ध मैं जर्मनी ने लंदन पर घनघोर बमबारी की और प्रतिक्रिया में अंग्रेजो ने 1000 बमवर्षकों को जर्मनी के नगरों पर हमला करने भेजा। युद्ध का अंत अमेरिका द्वारा जापानी नगर हिरोशिमा और नागासाकी पर बम गिराने से हुआ। इस हमले में कम से कम 1, 20,000 लोग तुरंत मारे गए और उससे भी कहीं अधिक लोग आणविक विकिरण के प्रभाव से मरे। करीब 95 प्रतिशत मृतक आम नागरिक थे।

युद्ध के बाद के दर्शकों में दुनिया में अपनी सर्वोच्चता कायम करने के लिए दो महाशक्तियों- पूजीवादी अमेरिका और साम्यवादी सोवियत संघ के बीच प्रचंड प्रतिस्पर्धा का दौर चला। चूँकि परमाण्विक हथियार शक्ति के नए प्रतीक बने इसलिए दोनों ने उनका बड़े पैमाने पर निर्माण और संचय शुरू किया। बढ़ती हुई इस सैनिक प्रतिद्वंदिता में 1962 का क्यूबाई मिसाइल संकट एक उल्लेखनीय अशुभ प्रसंग है। इसका आरंभ तब हुआ जब अमेरिकी जासूसी विमानों ने अपने पड़ोसी देश क्यूबा में सोवियत संघ के आणविक मिसाइल खोज निकाले। प्रतिक्रिया में अमेरिका ने क्यूबा की समुद्री सीमाओं की नाकेबंदी कर दी और सोवियत रूस को धमकी दी कि यदि यह मिसाइल नहीं हटाई गई तो वह उस के खिलाफ सैनिक कार्यवाही करेगा। आमने-सामने का यह टकराव तभी समाप्त हुआ जब सोवियत संघ ने

अपने मिसाइल हटा लिए। दो सप्ताह तक चले इस संकट ने मानवता को संपूर्ण तबाही के कगार पर खड़ा कर दिया था।

एक मर्मभेदी असमंजस यह है कि अंतर्राष्ट्रीय फलक पर कई बार कुछ राष्ट्र अपने लक्ष्यों को हासिल करने के लिए हिंसात्मक साधनों का इस्तेमाल करते हैं खासकर किसी क्षेत्र अथवा प्राकृतिक संसाधनों को हथियाने में। इसके बाद उत्पन्न होने वाला द्वंद युद्ध में परिवर्तित हो जाता है जैसे कि 1990 में इराक ने अपने छोटे से पड़ोसी देश कुवैत पर हमला किया उसने हमले को न्यायोचित बताते हुए दावा किया कि कुवैती क्षेत्र एक इराकी भूखंड था जिसे औपनिवेशिक शासको ने मनमाने ढंग से अलग कर दिया था उसने आरोप लगाया कि कुवैत उसके तेल भंडारों में तिरछी खुदाई कर रहा है। आक्रमणकारियों को अंततः अमेरिका के नेतृत्व में साझा सैनिक अभियान द्वारा खदेड़ा गया। एक समर्थ विश्व सरकार के न होने की स्थिति में इस प्रकार के विवाद की आशंका का हर समय मौजूद रहना संभव है। हथियार उद्योग जैसे निहित स्वार्थों ने इसे तीव्र कर दिया है हथियार उद्योग के लिए युद्ध लाभदायक स्थिति है।

भारत और पाकिस्तान के बीच कारगिल का युद्ध एवं सीमा पर निरंतर हो रहे युद्ध विराम का उल्लंघन भी राष्ट्रीय द्वंद का ज्वलंत उदाहरण है। उपरोक्त उदाहरणों से आप यह समझ गए होंगे कि राष्ट्रों अथवा देशों के बीच द्वंद किस रूप में होता है।

अगर लोग आज शांति का गुणगान करते हैं तो महज इसलिए नहीं कि वह इसे अच्छा विचार मानते हैं। शांति की अनुपस्थिति की भारी कीमत चुकाने के बाद मानवता ने इसका महत्व पहचाना है। आज जीवन अतिथि के अतीत के किसी भी समय से कहीं अधिक असुरक्षित है क्योंकि हर जगह के लोग आतंकवाद के बढ़ते खतरों का सामना कर रहे हैं। शांति लगातार बहुमूल्य इसलिए भी बनी हुई है कि इस पर खतरे का साया हमेशा मौजूद है।

अभ्यास प्रश्न

3. द्वैत एवं द्वंद में क्या अंतर है**?**
4. द्वंद के अंतर वैयक्तिक संदर्भ से क्या तात्पर्य है?
5. सांप्रदायिक द्वंद के प्रमुख क्या कारण हैं?
6. राष्ट्रीय द्वंद के प्रमुख कारण क्या हैं?

3.5 सारांश

इस इकाई के प्रारंभ में स्व की अवधारणा को स्पष्ट किया गया। स्व, एक व्यक्ति द्वारा एक ही व्यक्ति के लिए एक संदर्भ है यह संदर्भ आवश्यक रूप से व्यक्तिपरक है। व्यक्ति परिप्रेक्ष्य अपने व्यक्तिगत पहचान को आत्मनिष्ठा से अलग करता है। व्यक्तिगत स्व एवं सामूहिक स्व की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए उनके बीच अंतर को भी रेखांकित किया गया। व्यक्तिगत स्व, से अभिप्राय स्वचेतन मन से है जो कि हमारे

शरीर का वह भाग है जो इस भौतिक संसार में स्वयं के प्रति एक विशिष्ट व्यक्तित्व के रूप में चैतन्य रूप से जागरूक है। इसी को वस्तुनिष्ठ मन की संज्ञा दी जाती है । सामूहिक स्व, स्व का वह पक्ष है जो कि समूह में आपकी सदस्यता तथा सहभागिता पर आधारित होता है । यह स्व का प्रत्यक्षीकरण कुछ सामाजिक वर्गो के विनिमय नमूने के रूप में करता है न कि एक विशिष्ट व्यक्ति के रूप मे करता है। द्वंद के सामान्य अर्थ- आवश्यकताओं, इच्छाओं, दृष्टिकोणों और मूल्यों की असंगति को जिसका मतलब है कि व्यक्तियों की दो वर्तमान आवश्यकताओं अथवा लक्ष्यों की पूर्ति एक साथ नहीं की जा सकती है, को स्पष्ट किया गया। जब भी हमारी धन, शक्ति और संसाधनों की आवश्यकताएं का किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकताओं के साथ संघर्ष होगा तो वहाँ पर निश्चित रूप से द्वंद होगा। जब भी किसी भी व्यक्ति के क्रियाकलाप को बाधित किया जाता है तो वहाँ पर द्वंद उत्पन्न होता है। द्वैतवाद की उत्पत्ति लैटिन शब्द के "डुओ' से हुई इसका अर्थ होता है "दो" अर्थात दो भागों की स्थिति को दर्शाना। इस शब्द की उत्पत्ति मूल रूप से शाश्वत, द्वियाधारीय विपक्ष को निरूपित करने हेतु हुई है। द्वंद एवं द्वैत के अंतर्वैयक्तिक, सांप्रदायिक तथा राष्ट्रीय संदर्भो को भी स्पष्ट रूप से उदाहरणों के माध्यम से समझा। अंतर्वैयक्तिक द्वंद दो व्यक्तियों के मध्य अलग-अलग विचार होने के कारण उत्पन्न द्वंद है। यह भी स्पष्ट किया गया कि साम्प्रदायिकता से तात्पर्य उस संकीर्ण मनोवृति से है, जो धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर पूरे समाज तथा राष्ट्र के व्यापक हितों के विरुद्ध व्यक्ति को केवल अपने व्यक्तिगत धर्म के हितों को प्रोत्साहित करने तथा उन्हें संरक्षण देने की भावना को महत्व देती है। भारत में सांप्रदायिकता के विकास संबंधी विभिन्न कारणों की चर्चा भी की गई। सांप्रदायिकता को कम करने हेतु कुछ उपाय भी सुझाए गए और इकाई के अंत में द्वंद के राष्ट्रीय संदर्भ को स्पष्ट किया गया राष्ट्रीय द्वंद, राष्ट्र में अथवा राष्ट्रों के मध्य किसी बात पर एक मत न होने से इस प्रकार का द्वंद उत्पन्न हो जाता है जिससे शांति भंग होती है तथा उसमें रहने वालें लोगों की मूल्य आधारित विचारों का भी हनन होता है जिसके उपरांत उनके अंदर ही अंदर अविश्वास तथा बदले की भावना प्रबल होने लगती है।

3.6 शब्दावली

1. **स्व-** स्व, एक व्यक्ति द्वारा एक ही व्यक्ति के लिए एक संदर्भ है यह संदर्भ आवश्यक रूप से व्यक्तिपरक है।
2. **द्वंद-** द्वंद का सामान्य अर्थ आवश्यकताओं, इच्छाओं, दृष्टिकोणों और मूल्यों की असंगति है जिसका मतलब है कि व्यक्तियों की दो वर्तमान आवश्यकताओं अथवा लक्ष्यों की पूर्ति एक साथ नहीं की जा सकती है।
3. **द्वैत-** द्वैत से तात्पर्य दो भागों की स्थिति को दर्शाना।
4. **सांप्रदायिकता-** साम्प्रदायिकता से तात्पर्य उस संकीर्ण मनोवृति से है, जो धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर पूरे समाज तथा राष्ट्र के व्यापक हितों के विरुद्ध व्यक्ति को केवल अपने व्यक्तिगत धर्म के हितों को प्रोत्साहित करने तथा उन्हें संरक्षण देने की भावना को महत्व देती है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. व्यक्तिगत स्व, से अभिप्राय स्वचेतन मन से है जो कि हमारे शरीर का वह भाग है जो इस भौतिक संसार में स्वयं के प्रति एक विशिष्ट व्यक्तित्व के रूप में चैतन्य रूप से जागरूक है । इसी को वस्तुनिष्ठ मन की संज्ञा दी जाती है।
2. सामूहिक स्व, स्व का वह पक्ष है जो कि समूह में आपकी सदस्यता तथा सहभागिता पर आधारित होता है।
3. द्वैत की उत्पत्ति लैटिन शब्द के "डुओ' से हुई इसका अर्थ होता है "दो" अर्थात दो भागों की स्थिति को दर्शाना। जबकि द्वंद एक ऐसी परिस्थिति है जिसमें व्यक्ति को दो या दो से अधिक परस्परिक विलक्षण लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु दो असंगत रास्तों के मध्य निर्णय लेना पड़ता है।
4. अंतर्वैयक्तिक द्वैत तथा द्वंद दो व्यक्तियों के मध्य अलग-अलग विचार होने के कारण उत्पन्न द्वंद है। इस प्रकार का उत्पन्न द्वंद यह दर्शाता है कि व्यक्ति किस प्रकार से एक दूसरे से अलग है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व अलग अथवा विशिष्ट है जो की उस व्यक्ति की असंगत चयन तथा मतों के लिए जिम्मेदार होता है ।
5. भारत में साम्प्रदायिक चेतना का जन्म उपनिवेशवादी नीतियों तथा उसके विरुद्ध संघर्ष करने की आवश्यकता से उत्पन्न परिवर्तनों के कारण हुआ। विभिन्न क्षेत्रों तथा देश के सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक एकीकरण, भारत को एक आधुनिक राष्ट्र बनाने की प्रक्रिया, आधुनिक सामाजिक वर्गों एवं उपवर्गों का निर्माण तथा भारतीयों के बढ़ते हुये अंतर्विरोध जैसे कारणों से लोगों में अपने साझा हितों आयामों का विकास तथा नयी पहचानों का निर्माण आवश्यक हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजनीति की जिस नयी अवधारणा का जन्म हुआ उससे भी साम्प्रदायिकता की विचारधारा को बल मिला।
6. राष्ट्रीय द्वंद, राष्ट्र में अथवा राष्ट्रों के मध्य किसी बात पर एक मत न होने से इस प्रकार का द्वंद उत्पन्न हो जाता है। कुछ राष्ट्र अपने लक्ष्यों को हासिल करने के लिए हिंसात्मक साधनों का इस्तेमाल करते हैं खासकर किसी क्षेत्र अथवा प्राकृतिक संसाधनों को हथियाने में। इसके बाद उत्पन्न होने वाला द्वंद युद्ध में परिवर्तित हो जाता है।

3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कृष्ण मूर्ति, जे॰ 1992. एजुकेशन एंड सिगनीफिकेंस आफ लाइफ, चेन्नई, कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन.
2. एन.सी.ई.आर.टी. 2006, नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क 2005, पोजीशन पेपर नेशनल फोकस ग्रुप ऑफ एजुकेशन फॉर पीस, नई दिल्ली.
3. एन. सी.ई. आर. टी. 2005, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, नई दिल्ली.

4. फ़ाउटेन, एस. 1999, एजुकेशन फॉर पीस इन यूनिसेफ, न्यूयार्क, वर्किंग पेपर एजुकेशन सेक्शन, प्रोग्राम डिविजन, यूनिसेफ.
5. वार्ड एशले, जे. 2001. डेवलपिंग ए कल्चर ऑफ पीस एण्ड नान वाइलेंस थ्रू एजुकेशन /http:/www.mkgandhi.org/articles/peace4.htm/द्वारा मार्च 2009 में प्राप्त.
6. वेल्स. लीच. सी. 2003, ए. कल्चर ऑफ टीचिंग पीस http:/www.commondreams.org/views03/0616-01.html/ द्वारा मार्च 2009 में प्राप्त.
7. हैरिस ईओन, मारिसन मैरी 2003. पीस एजुकेशन, लंदन, मैकफारलैंड.
8. गाल्टुंग जोहान 1996. 'पीस बाई पीसफुल मींस' लंदन-नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन.
9. हेंडरसन जार्ज 2006. 'एजुकेशन फॉर पीस: फोकस आन मैनकाइंड' एसोसिएशन फार सुपरवीशन एण्ड करीकुलम डेवलेपमेंट, मीचिगन.
10. नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क 2005. नई दिल्ली, एन. सी.ई. आर. टी.
11. सोलोमन और नेवो 2002, पीस एजुकेशन, द कानसेप्ट प्रिन्सिपल एण्ड प्रेक्टिस एराउंड द वर्ल्ड, लंदन, लारिइंस ईरलबम एसोसिएटस.
12. मारिया मोंटोसरी 1972. एजुकेशन एण्ड पीस, रेजेंसी. यूनिवर्सिटी ऑफ मिसिगन डिजीटैइज्ड.
13. गुप्ता, एस.पी. और अलका गुप्ता 2008. 'भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ' इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन.

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्व की अवधारणा की समझ शिक्षकों के लिए क्यों महत्वपूर्ण है? व्याख्या कीजिए।
2. कक्षायी विविधता को द्वंद एवं द्वैत के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट कीजिए।

इकाई 4 - द्वंद की समझ

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 द्वंद की समझ
4.4 संप्रेषण का अर्थ
4.5 संप्रेषण के विश्लेषण तथा टेलिविज़न एवं संचार के अन्य आधुनिक साधनों पर विवादास्पद मुद्दों के प्रस्तुतीकरण के विश्लेषण में परिप्रेक्ष्य का प्रयोग
    4.5.1 परिप्रेक्ष्य के प्रकार
4.6 संप्रेषण के विश्लेषण तथा टेलिविज़न एवं संचार के अन्य आधुनिक साधनों पर विवादास्पद मुद्दों के प्रस्तुतीकरण के विश्लेषण में संकेत का प्रयोग
4.7 संप्रेषण के विश्लेषण तथा टेलिविज़न एवं संचार के अन्य आधुनिक साधनों पर विवादास्पद मुद्दों के प्रस्तुतीकरण के विश्लेषण में स्टिरियोटाइप का प्रयोग
    4.7.1 स्टिरियोटाइप के उपयोग की समस्याएँ
4.8 संप्रेषण के विश्लेषण तथा टीलिविज़न एवं संचार के अन्य आधुनिक साधनों पर विवादास्पद मुद्दों के प्रस्तुतीकरण के विश्लेषण में अलंकारशास्त्र का प्रयोग
    4.8.1 अलंकारशास्त्र का उपयोग
4.9 शांति शिक्षा के विशेष संदर्भ में पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण
    4.9.1 पाठ्यपुस्तकों के विश्लेषण की विधि
    4.9.2 विश्लेषण की इकाई
    4.9.3 शांति शिक्षा के अवयव
4.10 सारांश
4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.12 संदर्भ एवं सहयोगी पुस्तकें
4.13 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

द्वंद मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है। अपने समस्त जीवन काल में मनुष्य असंख्य बार द्वंदात्मक परिस्थितियों से गुजरता है। विविध कारणों से उत्पन्न ये द्वंद एक निश्चित सीमा तक तो व्यक्ति की कार्य क्षमता को नकारात्मक ढंग से प्रभावित नहीं करते हैं लेकिन यदि इसकी सीमा बढ़ जाती है और लंबे समय तक यह द्वंदात्मक परिस्थिति चलती रहती हैतो इससे व्यक्ति की कार्य क्षमता प्रभावित होती है एवं उसके मानसिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः, द्वंदात्मक परिस्थिति का समाधान होना आवश्यक है। इस परिस्थिति का समाधान इसके कारणों को जाने बिना संभव नहीं है। अतः, द्वंद के प्रकार एवं उसके कारणों को जानना भी ज़रुरी है। मनुष्यएक सामाजिक प्राणीहै और वो इस समाज में अपना अधिकांश कार्य-व्यापार संपादित करता है जिसके लिए उसे संप्रेषण की आवश्यकता होती है। संप्रेषण के विभिन्न माध्यमों का प्रयोग वह विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में करता है। द्वंद की उत्पत्ति भी सामाजिक परिस्थिति में होती है और संप्रेषण भी सामाजिक परिस्थितियों में ही घटित होता है। अर्थात इन दोनों में संबंध है। यह भी कहा जा सकता है कि द्वंद के विविध कारणों में संप्रेषण भी एक कारण है। अतः, द्वंदात्मक परिस्थिति के समाधान के लिए संप्रेषण का विश्लेषण करना आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई में द्वंद की सामान्य समझ के साथ संप्रेषण के विश्लेषण में उसके मुख्य तत्वों के महत्व की जानकारी प्रदान की गई है। साथ ही शांति शिक्षा के दृष्टिकोण से पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है। आइए अब बारी-बारी से इकाई के विविध खंडों एवं उपखंडों में द्वंद, संप्रेषण एवं उसका विश्लेषण तथा पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण (शांति शिक्षा पर आधारित) पर चर्चा करते हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी इस योग्य हो जाएँगे कि –

1. विद्यार्थी द्वंद का अर्थ समझ सकेंगे;
2. विद्यार्थी द्वंदात्मक परिस्थिति को पहचान सकेंगे;
3. विद्यार्थी संप्रेषण के अर्थ की व्याख्या कर सकेंगे;
4. विद्यार्थी संप्रेषण के विश्लेषण में परिप्रेक्ष्य का प्रयोग कर सकेंगे;
5. विद्यार्थी टेलिविज़न एवं संचार के अन्य साधनों पर प्रस्तुत कार्यक्रमों का उसके परिप्रेक्ष्य के आधार पर विश्लेषण कर सकेंगे;
6. परिप्रेक्ष्य के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे;
7. विद्यार्थी संप्रेषण के विश्लेषण में संकेत के महत्व का वर्णन कर सकेंगे;
8. विद्यार्थी टेलिविज़न एवं संचार के अन्य साधनों पर प्रस्तुत कार्यक्रमों में प्रयुक्त संकेतों का सही अर्थ समझ सकेंगे;
9. विद्यार्थी संप्रेषण के विश्लेषण में स्टिरियोटाइप के महत्व की व्याख्या कर सकेंगे;

10. विद्यार्थी टेलिविज़न एवं संचार के अन्य साधनों पर प्रस्तुत कार्यक्रमों में प्रयुक्त स्टिरियोटाइप का सही अर्थ समझ कर कार्यक्रम में निहित संदेश का अर्थ समझ सकेंगे;
11. स्टिरियोटाइप के उपयोग से उत्पन्न होनेवाली समस्याओं की व्याख्या कर सकेंगे;
12. विद्यार्थी संप्रेषण के विश्लेषण में अलंकारशास्त्र के महत्व की व्याख्या कर सकेंगे;
13. विद्यार्थी टेलिविज़न एवं संचार के अन्य साधनों पर प्रस्तुत कार्यक्रमों के विश्लेषण में अलंकारशास्त्र का प्रयोग कर सकेंगे; तथा
14. विद्यार्थी शांति शिक्षा के विशेष संदर्भ में पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण कर सकेंगे

4.3 द्वंद की समझ

द्वंद का अर्थ विश्वास, मान्यताओं एवं क्रियाओं के विरोध या अस्वीकृति के कारण उत्पन्न मतभेद या विवाद से होता है। माइकल निकोलसन ने द्वंद को परिभाषित करते हुए कहा है कि "यह एक क्रिया-कलाप है जो तब सम्पन्न होती है जब चेतन प्राणी (व्यक्ति या समूह) अपनी इच्छाओं, आवश्यकताओं एवं दायित्वों से संबंधित पारस्परिक असंगत क्रियाओं को संपादित करना चाहते हैं"। द्वंद असहमति का चरम रुप है और द्वंदात्मक व्यवहार, जिसमें कि एक व्यक्ति या समूह दूसरे व्यक्ति या समूह को हाँनि पहुँचाने के लिए सक्रिय रुप से प्रयास करता है, के उपस्थिति से पहचाना जाता है।
राशिम के अनुसार, "द्वंद एक अंतःक्रियात्मक प्रक्रिया है जो कि अक्षमता, असहमति, बेसुरापन, सामाजिक प्रविष्टियों (व्यक्तियों या असमूहों)के रुप में परिणित होता है"।

उपरोक्त परिभाषाओं एवं रॉबर्ट ए० बैरन द्वारा सन द्वारा सन 1990 में दी गई संगठनात्मक द्वंद की परिभाषाओं की समीक्षा के आधार पर राशिम ने यह सुझाया कि द्वंद में निम्नलिखित बातें होती हैं:

- व्यक्तियों या समूहों के हित एक-दूसरे के विपरीत होते हैं;
- प्रत्येक पक्ष यह मानता है कि उसका प्रतिपक्ष उसके विरुद्ध कार्य कर रहा है;
- इस विश्वास की पुष्टि उनके द्वारा संपादित किए जाने वाले कार्यों से की जा सकती है; तथा
- द्वंद एक प्रक्रिया है जो व्यक्तियों या समूहों के मध्य अतीत में हुए अंतर्क्रिया के परिणामस्वरुप विकसित होता है;

उपरोक्त विवेचन के आधार पर द्वंद को चैतन्य व्यक्तियों या समूहों के मध्य अतीत में हुई ऐसी अंतर्क्रिया, जिनमें उनके हितों में परस्पर विरोधाभास एवं संघर्ष रहा हो,के परिणामस्वरुप विकसित एक ऐसी प्रक्रिया के रुप में जाना जाता है जिसमें प्रत्येक पक्ष, दूसरे पक्ष को हानि पहुँचाने के लिए सक्रिय रहता है। यह व्यक्ति के अंदर, दो व्यक्तियों के मध्य, व्यक्ति एवं समूह के मध्य एवं समूह तथा समूह के मध्य हो सकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि द्वंद व्यक्तियों या समूहों के मध्य अंतर्क्रिया का परिणाम है। व्यक्तियों या समूहों के मध्य अंतर्क्रिया का आधार संप्रेषण है। अतः, द्वंद की उत्पति में संप्रेषण की बहुत बड़ी भूमिका है।

4.4 संप्रेषण

संप्रेषण से आशय सामान्यतः भावों एवं विचारों की विविध माध्यमों से अभिव्यक्ति है। ये माध्यम इलेक्ट्रॉनिक, मुद्रित, मौखिक अथवा आंगिक हो सकते हैं। इस प्रकार, संप्रेषण अपने विस्तृत रुप में, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों, यथा – टीवी, इंटरनेट, रेडियो, कम्प्युटर, आदि या मुद्रितमाध्यमों, यथा – समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तक, आदि या मौखिक माध्यम अर्थात बोलकर या आंगिक माध्यमों अर्थात हाव-भाव एवं अंग-संचालन द्वारा सूचनाओं के आदान-प्रदान की प्रक्रिया है। ये सूचनाएँ, ज्ञान-विज्ञान से भी संबंधित भी हो सकती हैं या व्यक्ति में अंतर्निहित भावों का शाब्दिक या सांकेतिक रुपांतरण भी हो सकती हैं। अरस्तु ने इस संबंध में कहा है कि "बोले गए शब्द मानसिक अनुभवों के संकेत हैं तथा लिखे गए शब्द बोले गए शब्दों के संकेत हैं" (अरस्तु, 14 एसेज ऑन इंट्रप्रेटेशन)। इस प्रकार, संप्रेषण संकेतों की एक सामान्य प्रणाली द्वारा व्यक्तियों के मध्य अर्थ का आदान-प्रदान है।

आइ० ए० रिचर्ड्स ने वर्ष 1928 में संप्रेषण की परिभाषा देते हु कहा कि "संप्रेषण उस समय घटित होता है जब एक मस्तिष्क अपनेवातावरण के साथ इस प्रकार कार्यकरता है कि कोई अन्य मस्तिष्क प्रभावितहोता है और उस अन्य मस्तिष्क में पहले मस्तिष्क की भाँति ही अनुभवों का जन्म होता है"।

डेविड बेरलो ने संप्रेषण की बड़ी विस्तृत एवं सारगर्भित व्याख्या की है। वर्ष 1960 में संप्रेषण की व्याख्या करते हुए उन्होंने निम्न्लिखित तथ्यों को उद्धृत किया :

- अर्थ मनुष्यों में होते हैं;
- संप्रेषण अर्थ का अंतरण नहीं है बल्कि संदेश का अंतरण है;
- अर्थ संदेश में निहित नहीं होते हैं बल्कि संदेश का प्रयोग करनेवाले व्यक्तियों में निहित होते हैं;
- शब्द का अर्थ नहीं होता है सिर्फ व्यक्ति का अर्थ होता है;
- व्यक्ति समान अर्थ उसी सीमा तक रखते हैं जिस सीमा तक वो समान अनुभव रखते है या समान अनुभवोंका अनुमान लगा सकते हैं;
- अर्थ निश्चित नहीं होते हैं, जैसे-जैसे अनुभव बदलते जाते हैं वैसे-वैसे अर्थभी बदलते जाते हैं;तथा
- एक चीज के लिए कोई भी दो व्यक्ति एक जैसा अर्थ नहीं रखते हैं;

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर संप्रेषण को निम्न शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है –

संप्रेषण संदेश के अंतरण की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें संदेश का प्रयोग करनेवाले व्यक्ति अर्थात संदेश प्रेषक एवं संदेश ग्राहक संदेश का संचार करते हैं। प्रेषक उस संदेश में अपने मानसिक अनुभवों के अनुरुप अर्थ को निबद्ध करता है और ग्राहक अपने मानसिक अनुभवों के अनुरुप संदेश से अर्थ को ग्रहण करता

है। प्रेषक और ग्राहक के अर्थ में समानता तब होती हैजब दोनों के मानसिक अनुभव समान स्तर के होते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. माइकल निकोलसन द्वारा दी गई द्वंद की परिभाषा का उल्लेख करें।
2. आइ० ए० रिचर्ड द्वारा दी गई संप्रेषण की परिभाषा का उल्लेख करें।
3. द्वंद की स्थिति में व्यक्तियों के हित एक-दूसरे के_____होते हैं।
4. द्वंद की स्थिति में प्रत्येक पक्ष यह मानता है कि उसका _____उसके_____कार्य कर रहा है।
5. द्वंद व्यक्तियों या समूहों के मध्य अतीत में हुए _____का परिणाम है।

4.5 संप्रेषण के विश्लेषण एवं टीवी तथा संचार के अन्यआधुनिक साधनों पर विवादास्पद मुद्दों के प्रस्तुतीकरण में परिप्रेक्ष्य का प्रयोग

संप्रेषण के संदर्भ में परिप्रेक्ष्य का आशय संप्रेषण में साझा किए गए अर्थ एवं अभ्यास को भाषा एवं संकेतों द्वारा गठित करने, संदेश की संरचना तथा मीडिया संगठन एवं समाज द्वारा उसके प्रसारण के लिए अपनाए जानेवाले उपागम से है।

परिप्रेक्ष्य सिर्फ इस बात की जाँच नहीं करता है कि कैसे संदेश, सूचनाओं का प्रसारण करता है तथा व्यक्तिगत एवं सामूहिक व्यवहार को प्रभावित करता है बल्कि यह इस बात की भी जाँच करता है कि कैसे संदेश संस्कृति एवं समुदाय का निर्माण करता है, उनमें स्थायित्व लाता है और उनमें परिवर्तन लाता है। वास्तव में परिप्रेक्ष्य से इस बात की जाँच की जाती है कि कैसे संदेशों का उत्पादन होता है, कैसे वो मनुष्यों के समूह में संचरित होते हैं और संदेशों के परिणाम को ध्यान में रखते हुए उनका विश्लेषण कैसे किया गया है।

4.5.1 परिप्रेक्ष्य के प्रकार

परिप्रेक्ष्य के मुख्यतः तीन प्रकार होते हैं:

1. प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य – परिप्रेक्ष्य का यह प्रकार, व्यक्ति मास मिडिया के द्वारा संप्रेषण का किस प्रकार उपयोग करता है एवं इसका लाभ क्या है, का वर्णन करता है। कैसे यह पूरे समाज के लिए समग्र रुप में कार्य करता है? कैसे यह व्यक्ति विशेष के लिए कार्य करता है? आदि तथ्यों की भी जानकारी इस प्रकार के परिप्रेक्ष्य से प्राप्त होती है।

2. समालोचनात्मक/सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य – इसमें मिडिया द्वारा संप्रेषित संदेश में निहित शक्ति का परीक्षण किया जाता है तथा उस संदेश में से दर्शक/श्रोता/पाठक द्वारा निकाले गए विविध अर्थों एवं विवेचनाओं का विश्लेषण किया जाता है।
3. प्रायोगिक परिप्रेक्ष्य– इसमें समाज विज्ञान की तकनीकों, यथा प्रयोग एवं सर्वेक्षण आदि का प्रयोग संप्रेषण, विशेषतः जन संप्रेषण के, संज्ञानात्मक, अभिवृत्यात्मक तथा व्यावहारिक क्षेत्र पर पड़नेवाले प्रभाव का परीक्षण किया जाता है।

यदि टेलिविजन पर प्रसारित होनेवाले किसी विशेष कार्यक्रम के संदर्भ में इन तीनों परिप्रेक्ष्यों को देखा जाया तो अलग-अलग परिप्रेक्ष्य के लोगों के मन में कार्यक्रम को लेकर अलग-अलग प्रकार के सवाल आते हैं। ये निम्नलिखित हो सकते हैं:

प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य के आधार पर इस प्रकार के प्रश्न पूछे जा सकते हैं–

- आप इस कार्यक्रम को क्यों देखते हैं?
- यह कार्यक्रम पुरुषों और महिलाओं को कितना और किस प्रकार प्रभावित करता है?
- क्या यह कार्यक्रम दर्शकों को कुछ सिखाता है? या क्या इसमें दर्शकों को कुछ सीखने को मिलता है?
- क्या लोग अपने मित्रों से इस कार्यक्रम के बारे में बात करते हैं?
- किस प्रकार यह समाज के विभिन्न तत्वों को प्रभावित करता है?

समालोचनात्मक/सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर निम्नलिखित प्रकार के प्रश्न कार्यक्रम के विश्लेषण के लिए किए जा सकते हैं :

- कैसे यह सामाजिक मूल्यों एवं सामाजिक आदर्शों को प्रभावित करता है?
- क्या यह सहयोग के बदले प्रतिस्पर्द्धा को बढ़ावा देता है?
- क्या कार्यक्रम वास्तविक अनुभवों को जन्म देता है?
- कैसे सामाजिक संरचना को प्रभवित करता है?
- संस्कृति पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है?

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि परिप्रेक्ष्य संप्रेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संप्रेषण का विश्लेषण करते समय यदि परिप्रेक्ष्य को ध्यान में नहीं रखा जाता है या परिप्रेक्ष्य की गलत समझ विकसित हो जाती है तब द्वंद का जन्म होता है और लंबी या गंभीर द्वंदात्मक परिस्थिति व्यक्ति में मानसिक अशांति को जन्म देती है। इसके परिणामस्वरुप भौतिक अशांति का जन्म होता है।

4.6 संप्रेषण के विश्लेषण एवं टीवी तथा संचार के अन्य आधुनिक साधनों पर विवादास्पद मुद्दों के प्रस्तुतीकरण में संकेत का प्रयोग

संकेत एक चिन्ह, निशान, प्रतीक या शब्द जो कुछ इंगित करता है, कुछ अर्थ देता है या किसी विचार, वस्तु या संबंध का प्रतिनिधित्व करनेवाला समझा जाता है । संकेत व्यक्ति को अत्यंत कठिन, संप्रत्ययों एवं अनुभवों को संबंधित करके समझने में सहायता करता है। सभी प्रकार के संप्रेषण, संकेतों के माध्यम से सम्पन्न होते हैं। संकेतों के अभाव में संप्रेषण की संकल्पना भी नहीं की जा सकती है। संकेत शब्द, ध्वनि, शारीरिक स्थिति, विचार, दृश्यचित्र, आदि के रुप में होते हैं तथा कुछ अन्य अर्थ का प्रतिनिधित्व करने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। जैसे – लाला रंग का एक अष्टभुज, "रुकने" के एक संकेत के रुप में प्रयुक्त किया जाता है। मानचित्र पर दिखनेवाले नीले रंग की रेखा नदियों का प्रतिनिधित्व करती है।

संकेत का अर्थ संस्कृति विशेष पर निर्भर करता है। एक ही संकेत एक संस्कृति विशेष में भिन्न अर्थ देता है और दूसरी संस्कृति विशेष में भिन्न अर्थ। जैसे- आंग्लभाषा के शब्द 'आउल' का अर्थ भारतीय संस्कृति में एक पक्षी एवं एक मूर्ख व्यक्ति के रुप में लिया जाता है जबकि अमरीकी संस्कृति में एक पक्षी एवं एक बुद्धिमान व्यक्ति के रुप में लिया जाता है। उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि संकेत का अर्थ उसमें अंतर्निहित नहीं होता है बल्कि संस्कृति विशेष के साथ होनेवाली अंतर्क्रिया के माध्यम से सीखना पड़ता है। संकेत समग्र मानवीय समझ की आधारशिला है एवं समग्र मानवीय ज्ञान के संप्रत्ययीकरण का साधन है। यह व्यक्ति को संसार, जिसमें कि वह रहता है, को समझने में सहायता करता है और इस प्रकार निर्णयन के लिए आधार प्रदान करता है। संकेत मानव मस्तिष्क को, संवेदी आगतों का प्रयोग करके अर्थ का निर्माण करने तथा संकेतों का (शब्दार्थों, लक्ष्यार्थों, संकेतार्थों आदि के माध्यम से) विकूटीकरण करने की निरंतर अनुमति देता है।

अशाब्दिक संप्रेषण को समझने में संकेतों की अति महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संकेतों को प्रयुक्त करने के तरीके एवं संप्रेषण में शामिल व्यक्तियों, अर्थात किसने किसको संकेत किया का अध्ययन कर, संप्रेषण के प्रकार एवं उसके अर्थ को जाना जाता है। जैसे एक वयस्क व्यक्ति द्वारा एक बच्चे के बाँह को उसकी कलाई से पकड़कर हल्के से ऊपर उठाने का अर्थ कपड़े पहनते समय बच्चे को बाँह ऊपर ऊठाना सीखाना होता है। वयस्क और बच्चे के बीच में संकेत के आदान-प्रदान से यहा पता लगता है कि यह 'क्यु' (अशाब्दिक संप्रेषण का एक प्रकार) है।

संप्रेषण में प्रयुक्त संकेतों सही विश्लेषण कर संप्रेषण में निहित संदेश का अर्थ समझने के लिए यह जानना अति आवश्यक होता है कि प्रयुक्त संकेतों क्याअर्थ है, कैसे उसने अपनायह अर्थप्राप्त किया है और समाज में अर्थ का निर्माण करने के लिए यह किस प्रकार कार्य करता है?

एक ही अर्थ के संप्रेषण के लिए संप्रेषण में शामिल भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त संकेत भी भिन्न-भन्न हो जाते हैं। जैसे प्राथमिक स्तर के सामान्य विद्यार्थियों को भोजनावकाश का संकेत करने

के लिए चम्मच दिखाया जा सकता है वहीं दृष्टिबाधित विद्यार्थियों को भोजन की खुशबु से या भोजनावकाश को उच्चरित कर संकेतित किया जा सकता है।

संकेत वो प्राथमिक साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अर्थ निर्माण करता है, ज्ञान को वर्गीकृत करता है, भावनाओं को वर्गीकृत करता है एवं समाज को विनियमित करता है। यथा,विंक और ब्लिंक (आँखों का तीव्र गति से खुलना एवं बंद होना) दोनों एक जैसी क्रियाएँ हैं लेकिन दोनों के अर्थ अलग-अलग हैं। विंक जहाँ षड़यंत्र पूर्ण संदेश को प्रसारित करने की शारीरिक स्थिति है, वहीं ब्लिंक निरर्थक है। अलग-अलग परिदृश्य में एक ही संकेत के अलग-अलग अर्थ होते हैं, यथा लाल रंग ट्रैफिक सिग्नल की तरह कार्य करता है तो दूसरे परिदृश्य में वह खून का संकेत करता है। यह खतरे का भी निशान है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि संकेत प्रसंग अर्जित होते हैं और एक संस्कृति विशेष में एवं विभिन्न संस्कृतियों में इसका अर्थ बदलते रहता है। जैसे लाल रंग, रोम में युद्ध के देवता मार्स से संबंधित है तो चाइना में लाल रंग सौभाग्य, संम्पत्ति, खुशहाली, एवं पारंपरिक वैवाहिक परिधान का द्योतक है। अमेरिका में लाल गुलाब प्यार के प्रस्ताव का प्रतीक है तो लाल कपड़ों में होना आर्थिक क्षति का परिचायक है और लाल दिखना क्रोध का द्योतक है। इस प्रकार एक ही संकेत विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न-भिन्न अर्थ देते हैं।

इस प्रकार, संकेत का विश्लेषण संप्रेषण के विश्लेषण के लिए महत्वपूर्ण है। संकेतों को गलत अर्थ में समझना द्वंद एवं अशांति को जन्म देता है।

4.7 संप्रेषण के विश्लेषण एवं टीवी तथा संचार के अन्य आधुनिक साधनों पर विवादास्पद मुद्दों के प्रस्तुतीकरण में स्टिरियोटाइप का प्रयोग

स्टिरियोटाइप से आशय सामान्यतः व्यक्तियों के किसी समूह के मानसिक प्रतिनिधित्व, जो समूह के सदस्यों के प्रति हमारी भावनाओं को प्रभावित करता है, से है। लिपमैन (1992) स्टिरियोटाइप को मस्तिष्क में बनी तस्वीर की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि स्टिरियोटाइप में संज्ञानात्मक एवं भावनात्मक दोनों तत्व होते हैं। स्टिरियोटाइप के प्रयोग के दो पक्ष सामने आते हैं।

- यदि हम सही स्टिरियोटाइप का निर्माण करते हैं तब अजनबियों के व्यवहार के संदर्भ में सांस्कृतिक स्तर पर लगाया गया अनुमान भी सही होता है; तथा
- गलत स्टिरियोटाइप गलत समझ को जन्म देता है।

4.7.1 स्टिरियोटाइप के उपयोग की समस्याएँ

इसके उपयोग में निम्नलिखित समस्याएँ सामने आती हैं:

1. अजनबियों के साथ अप्रभावी संप्रेषण – जब हम अजनबियों के साथ संप्रेषण, विशेषतः अनमने ढंग से संप्रेषण करते हैं तब हमारा स्टिरियोटाइप सक्रिय हो जाता है और अजनबियों के साथ संप्रेषण करते समय हम अचेतन रुप से अपने आशाओं को संतुष्ट करने लगते हैं। इसके

परिणामस्वरुप संप्रेषण अप्रभावी हो जाता है। अतः, कोई भी अनुमान निकालने के लिए हमें यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि कोई अजनबी व्यक्ति किन सामाजिक सिद्धांतों से निर्देशित हो रहा है और संप्रेषण को प्रभावी बनाने के लिए हमें मस्तिष्क को खोलकर रुचिपूर्ण ढंग से संप्रेषण करना चाहिए।

2. चूँकि स्टिरियोटाइप प्राकृतिक उत्पाद है। अतः, वे हमारे सूचनाओं के संसाधन की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।
3. वास्तव में स्टिरियोटाइप वर्गीकरण का विषय हो जाता है। जब हम लोगों को वर्गीकृत करते हैं तब ये अजनबियों के साथ हमारे संप्रेषण को प्रत्यक्षतः प्रभावित करता है। अजनबी के व्यवहार के विषय में हमारा पहला अनुमान आवश्यक रुप से उस स्टिरियोटाइप पर आधारित होता है जो हम अजनबियों के संस्कृति, प्रजाति एवं जातीय समूह के प्रति रखते हैं।
4. एक स्टिरियोटाइप से आशय व्यक्तियों के किसी समूह के प्रति मस्तिष्क में स्थिर उस विश्वास से है जिसका कोई आधार नहीं होता है लेकिन जो व्यक्ति के संप्रेषण को समझने के उपागम को आसानी से प्रभावित करता है। जब हम अन्य व्यक्तियों के साथ संप्रेषण करते हैं तब यह पक्षपात एवं समानुभूति को जन्म देता है। यह स्टिरियोटाइप थ्रेट के द्वारा संप्रेषण को प्रभावित करता है। यहा कक्षाकक्ष एवं कार्यस्थलों पर अधिक होता है।

जब व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार इसलिए संप्रेषण नहीं करता है क्योंकि वह अपने द्वारा प्रत्यक्षीकृत की गई स्वयं की न्यूनता के प्रति सचेतन है तो यह स्टिरियोटाइप थ्रेट है। जैसे अधिक से अधिक संख्या में पुरुष सदस्यवाले एक समूह की महिला सदस्य स्टिरियोटाइप थ्रेट के कारण नहीं बाता करती हैं। यह संप्रेषण को प्रभावित करता है। यह कक्षाकक्ष एवं कार्यस्थलों पर अधिक होता है।

अतः, संप्रेषण का विश्लेषण करते समय संप्रेषण में शामिल व्यक्तियों के स्टिरियोटाइप पर ध्यान देना आवश्यक है। इसके साथ ही साथ विश्लेषण करनेवाले व्यक्ति को भी अपने स्टिरियोटाइप पर ध्यान देना चाहिए। द्वंद की स्थिति से बचने एवं शांति स्थापित करने में यह बहुत सहायक है।

4.8 संप्रेषण के विश्लेषण एवं टीवी तथा संचार के अन्य आधुनिक साधनों पर विवादास्पद मुद्दों के प्रस्तुतीकरण में अलंकारशास्त्र का प्रयोग

'अलंकररोति इति अलंकारः'। पं० विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में अलंकार को इसी रुप में परिभाषित किया है। इसका अर्थ है जो सजाता है, अलंकृत करता है, वही अलंकार है। काव्यशास्त्र में इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता है। संप्रेषण के संदर्भ में इसका अर्थ थोड़ा व्यापक हो जाता है। इसे कथन के अर्थ एवं अन्य संगठनात्मक अवयवों का उपयोग कर लेखन या वाचन को आकर्षित बनाने की कला के रुप में जाना जाता है।

संप्रेषण के एक साधन के रुप में, लेखन या वाचन के अध्ययन को भी अलंकारशास्त्र के रुप में जाना जाता है।

अलंकार को प्रोक्ति की एक कला की संज्ञा दी गई है जिसके द्वारा एक लेखक या वक्ता श्रोताओं या पाठकों या दर्शकों के एक विशेष समूह को एक विशेष परिस्थिति के प्रति सूचित, आकर्षित या अभिप्रेरित करना चाहता है।

अरस्तु ने इसे किसी भी दी हुई स्थिति में संप्रेषण के उपलब्ध साधनों के अवलोकन की योग्यता के रुप में परिभाषित किया है।

अपनी पुस्तक पॉलिटिकल स्टाइल में रॉबर्ट हरमैन ने कहा है कि "अलंकारशास्त्र, स्वतंत्रता, समानता तथा न्याय संबंधी मुद्दों जो कि वाद-विवाद, प्रदर्शन, रैली आदि कार्यक्रमों के माध्यम से अक्सर बिना नैतिक विषयों की क्षति के सामने लाए जाते हैं, के विश्लेषण की कला है"।

जेम्स ब्वॉयड व्हाइट के अनुसार, अलंकारशास्त्र सिर्फ राजनीतिक विषयों से ही संबंधित नहीं है बल्कि यह समग्र रुप से संस्कृति को प्रभावित करता है। अपनी पुस्तक 'व्हेन वर्ड्स लुज दियर मिनिंग' में वह कहते हैं कि "शब्द वो विधि उत्पन्नकरते हैं जिसके द्वारा संस्कृति को अनुरक्षित किया जा सके। उसकी समीक्षा की जा सके एवं उसका रुपांतरण किया जा सके"।

व्हाइट और हरमन दोनों का मानना है कि अलंकारशास्त्रमेंसंस्कृतिएवं नागरिक जीवन दोनों को रुपांतरित करने की शक्ति होती है। आधुनिक समय में भी अलंकारशास्त्र को इसी रुप में देखा जाता है। अलंकारशास्त्र, मौखिक एवं अमौखिकदोनों रुपों में स्थानीय स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक के समुदायों को प्रभावित करने के उपकरणके रुप में प्रयोग किया जाताहै।

4.8.1 अलंकारशास्त्र का उपयोग

अंलकारशास्त्र के उपयोग को निम्नलिखित विंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

- अलंकारशास्त्र प्रोक्ति की समीक्षात्मक समझ विकसित करने एवं विश्लेषणकरने में सहायता करता है। इस तरह के विश्लेषण में, लेखन के उद्देश्य, पाठक वर्ग, माध्यम तथा प्रारुप को ध्यानमें रखा जाताहै। दूसरे शब्दों में, इस प्रकार के विश्लेषण में न सिर्फ विषयवस्तु या संदेश में दिए गए सभी अर्थों की खोज की जाती है बल्कि यह भी बताया जाता है कि लेखक ने इसे क्यों लिखा, लेखक कौन है, कैसे इसे व्यवस्थित किया गया है, यह कब और कहाँ प्रकाशित हुआ है और दर्शक/पाठक को यह क्या संदेश देता है?
- यह मानवीय संबंधों की बेहतर समझ विकसित करने में सहायता करता है।
- यह संदेश में निहित गुप्त अर्थ को प्रकट करने में में भी सहायता करता है।
- इससे लेखक की अभिप्रेरणा या विचारधारा को समझने में सहायता मिलती है। इसके साथ ही अलंकारशास्त्र यह भी बताताहै कि कैसे सांस्कृतिक तत्वों को उस संदेश में दिखलाया गया है।
- इसमें संदेश के विभिन्न पंक्तियों के मध्य संबंधों का पता चलता है। इसके साथ ही यह भी पता चलता है कि ये पंक्तियाँ संदेश में किस प्रकार कार्य करती हैं।इसके द्वारा यह भी देखा जाता है कि

संदेश और उसको प्रस्तुत करने का तरीका, जो कि संप्रेषण की असफलता का एक प्रमुख कारण है, कितना प्रभावी है और यह भी देखा जाता है कि संदेश के माध्यम से जो बताने की कोशिश की गई है, वह लोगों की समझ में कितनी आई है? इसके द्वारा संदेश के तीन श्रेणियों शैक्षिक,नैतिक एवं राजनैतिक में वर्गीकृत किया जा सकताहै।

- इससे लोगों के संप्रेषण के तरीकों के संबंध में व्यापक जानकारी मिलती है। उनके संप्रेषण के प्रसंगों, किसी विषेष प्रसंग में संप्रेषण का क्या प्रभावहोता है,सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए संदेशों को रुपांतरित करने के क्षेत्रों एवं इस संदर्भ में आनेवाली चुनौतियों के संदर्भ में जानकारी मिलती है। यह बताता है कि संदेश कैसे और क्यों प्रभावी है या अप्रभावीहै।

इस प्रकार, यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अलंकारशास्त्र को ध्यान में रखना संप्रेषण के विश्लेषण में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अभ्यास प्रश्न

6. परिप्रेक्ष्य के प्रकारों को सूची बद्ध करें।
7. प्रायोगिक परिप्रेक्ष्य से क्या आशय है?
8. संकेत के विशेष संदर्भ में 'क्यु' से क्या आशय है?
9. किसने स्टिरियोटाइप को मस्तिष्क में बनी तस्वीर की संज्ञा दी है?
10. स्टिरियोटाइप के उपयोग के फलस्वरुप उत्पन्न होनेवाली समस्याओं को सूचीबद्ध करें।
11. रॉबर्ट हरमैन के अनुसार, अलंकारशास्त्र को परिभाषित करें।

4.9 शांति शिक्षा के विशेष संदर्भ में पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण

शांति शिक्षा वर्तमान में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की आवश्यकता है। इसे सभी विद्यालयों में आवश्यक रुप से पढ़ाया जाना चाहिए। इसलिए सभी विद्यालयी पाठ्यक्रमों में शांति शिक्षा के अवयवों को शामिल किया जाना आवश्यक है। शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर तो यह और भी आवश्यक है क्योंकि यह अवस्था विद्यार्थी के चरित्र निर्माण की आवश्यकता होती है। इस अवस्था में विद्यार्थी के मन में जो चीज घर कर जाती है, वो चिरकाल तक स्थायी रहती है। पाठ्यक्रम में शांति शिक्षा के अवयवों को शामिल करने के लिए यह आवश्यक है कि वर्तमान में विभिन्न पाठ्यपुस्तकों में शांति शिक्षा के संदर्भ में जो बात कही गई है, उसका विश्लेषण किया जाय। क्या वे वास्तव में शांति शिक्षा के प्रसार में सहायता करते हैं या यूँ कह ले कि क्या वे वास्तव में शांति शिक्षा के अवयव हैं। इससे शांति शिक्षा के भावी पाठ्यक्रम के विकास में सहायता प्राप्त होगी। दूसरे शब्दों में यह कहा जाय कि हमें पाठ्य पुस्तकों का शांतिशिक्षा के विशेष संदर्भ में विश्लेषण करना होगा तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। अब प्रश्न यह उठता है कि पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण कैसे किया जाय?किन पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण किया जाय? विश्लेषण की विधि क्या होगी?

विश्लेषण करते समय किन तथ्यों को ध्यान में रखा जाय? अब बारी-बारी से इन प्रश्नों के उत्तर पर चर्चा करते हैं।

4.9.1 पाठ्यपुस्तकों के विश्लेषण की विधि

पाठ्यपुस्तकों के विश्लेषण की सर्वाधिक प्रमुख एवं उपयोगी विधि विषयवस्तु विश्लेषण है। ब्रेसलन ने इसकी परिभाषा देते हुए कहा कि "विषयवस्तु विश्लेषण शोध की एक तकनीकी है जिसका उद्देश्य स्पष्ट विषयवस्तु के अवलोकनीय एवं नियमित विवरण का विवेचन करना होता है"। इस प्रकार, शांति शिक्षा के संदर्भ में पाठ्यपुस्तक का विश्लेषण करते समय पाठ्यपुस्तकों में शांति शिक्षा के संदर्भ में अवलोकनीय एवं नियमित रुप से वर्णित विषयवस्तु का विश्लेषण एवं विवेचन करते हैं।

4.9.2 विश्लेषण की इकाई

विश्लेषण की इकाई से आशय विश्लेषण करते समय ध्यान में दिए जाने वाले तथ्यों से है। इसके तहत हम वाक्य को ध्यान में रख सकते हैं। वाक्य से आशय पाठ्यपुस्तक में निहित समस्त वाक्यों से है। हम देख सकते हैं कि विषयवस्तु के किन वाक्यों में शांति शिक्षा से संबंधित कौन सी बात कही गई है। प्रश्न को हम विश्लेषण की दूसरी इकाई के रुप में देख सकते हैं। विषयवस्तु में जितने भी प्रश्न दिए गए हैं,उनमें शांतिशिक्षा के विविध घटकों से संबंधित कौन-कौन से प्रश्न हैं। किन प्रश्नों से शांतिशिक्षा के किस घटक पर प्रकाश पड़ता है। उसकी पुनरावृति कितनी बार हुई है। अभ्यास को विषयवस्तु विश्लेषण की तीसरी इकाई मानी गई है। इसमें यह देखा जाता है कि विषयवस्तु में अध्येता के लिए शांतिशिक्षा के विभिन्न घटकों के अभ्यास का कितना अवसर दिया गया है। इसके अलावा चित्रों को भी हम विश्लेषण की एक इकाई के रुप में देख सकते हैं। विषयवस्तु में शांतिशिक्षा से संबंधित कितने चित्र हैं? किस चित्र से शांतिशिक्षा के कौन से घटक का वर्णन होता है एवं उसकी आवृति कितनी है,आदि?

4.9.3 शांति शिक्षा के अवयव

शांति शिक्षा के अवयवों से आशय उन तथ्यों से है जो शांति शिक्षा के प्रसार में सहायक है। वर्तमान में शांतिशिक्षा के प्रसार में सहायक तथ्यों के रुप में निम्नलिखित तथ्यों को मान्यता दी गई है:

- एकता की भावना – एकता से आशय किसी वर्ग या समूह का हितों की एकता, उद्देश्यों की एकता, मानकों की एकता एवं सहानभूति के आधार पर एक होने की भावना से है। इसको उस धागे के रुप में समझा जा सकता है जो समाज के विभिन्न सदस्यों को एक साथ बाँध के रख सकता है। विश्लेषण करते समय हम यह देखते हैं कि विषयवस्तु में इस तथ्य को किस प्रकार से कौर कितनी बार समावेशित किया गया है।
- दूसरों के प्रति उत्तरदायित्वबोध – दूसरों से आशय स्वयं को छोड़कर अन्य प्राणि, जिनमें कि पशु-पक्षी भी शामिल हैं, के प्रति आपके दावित्वों की समझ से है। विषयवस्तु में अन्य प्राणियों के प्रति आप के

दायित्व को आपको कैसे समझाया गया है या इस संदर्भ में कैसे आप की समझ विकसित की गई है यह विश्लेषण का विषय होता है।

- दूसरों को प्यार देना- इसमें मनुष्यों के साथ-साथ पशु-पक्षियों को भी प्यार देने की बात की जाती है और विश्लेषण करते समय यह देखा जाता है कि विषयवस्तु में इसे कितना और किस प्रकार स्थान दिया गया है।
- विविधता की पहचान – विविधता से आशय, खान-पान, रुप-रंग, आचार-विचार, जैविक विविधता आदि से है। जब तक विविधता की पहचान नहीं करायी जाएगी तब तक एकता की बात नहीं की जा सकती है। भारतीय परिदृश्य में तो यह अति आवश्यक है क्योंकि यहाँ तो विविधता में ही एकतादृष्टिगोचर होती है। विषयवस्तु का विश्लेषण करते समय हम यह देखते है कि विविधता की पहचान करानेवाले तथ्य विषयवस्तु में किस प्रकार और कितनी मात्रा में शामिल किए गए हैं।
- नस्लीय, प्रजातीय एवं धार्मिक भेदभाव का अस्वीकरण – नस्लीय, प्रजातीय एवं धार्मिक भेदभाव एकता के मार्ग में बाधक है। अतः, पाठ्यपुस्तकों में इन चीजों को समावेशित नहीं किया जाना चाहिए। विश्लेषण करते समय हम यह देखते हैं कि पाठ्यपुस्तकों में इन चीजों को कितना स्थान दिया गया है एवं किस प्रकार इनको स्थान दिया गया है।
- क्षमा की भावना – क्षमा हमेशा शांति का मार्ग प्रशस्त करती है। विषयववस्तु का विश्लेषण करते समय हम, मानवहृदय में क्षमा की भावना विकसित करने वाले तथ्यों का विश्लेषण करते हैं। इन तथ्यों को कितना एवं किस प्रकार स्थान दिया गया है यह विश्लेषण का मुद्दा होता है।

इस प्रकार हम पाठ्यपुस्तक का शांतिशिक्षा के संदर्भ में विश्लेषण कर सकते हैं और शांतिशिक्षा के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण कर सकते हैं जो शांति स्थापित करने में सहायक होगी।

अभ्यास प्रश्न

12. विषयवस्तु विश्लेषण की ब्रेसलेन द्वारा दी गई परिभाषा का उल्लेख करें।
13. विषयवस्तु विश्लेषण की इकाइयों को सूचीबद्ध करें।
14. शांति शिक्षा के प्रमुख अवयव कौन-कौन से हैं?

4.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई में मानव जीवन के एक अभिन्न अंग द्वंद का वर्णन किया गया है। द्वंद किसे कहते हैं? द्वंदात्मक परिस्थिति का मानव जीवन में क्या प्रभाव होता है? द्वंद का मूल कारण क्या है आदि की संक्षिप्त एवं स्पष्ट चर्चा की गई है। इस चर्चा के उपरांत द्वंद में संप्रेषण की भूमिका को स्पष्ट किया गया है। संप्रेषण के विविध तत्व किस प्रकार द्वंद को उत्पन्न करते हैंएवं द्वंदात्मक परिस्थिति से बचने के लिए संप्रेषण के

विश्लेषण में इन विविध तत्वों की भूमिका की व्याख्या की गई है। इकाई के अंत में शांति शिक्षा को दृष्टि में रखते हुए पाठ्यपुस्तक के विश्लेषण पर चर्चा की गई है। द्वंद एवं शांति शिक्षा दोनों सहसंबंधित हैं क्योंकि द्वंद से मानसिक शांति में व्यवधान उत्पन्न होता है और इसकी समाप्ति मानसिक शांति को पुनर्स्थापित करती है।वर्तमान पाठ्यपुस्तकों में शांति शिक्षा संबंधी तत्वों का किस प्रकार समवेश किया गया है, इसका विश्लेषण आवश्यक है ताकि यह निश्चित किया जा सके कि पाठ्यपुस्तक विद्यार्थी को द्वंदात्मक परिस्थिति का सामना करने के लिए किस प्रकार तैयार करता है। इस प्रकार यह इकाई अपने शीर्षक के अनुरुप अत्यंत सार्थक एवं उपयोगी है।

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. द्वंद एक क्रिया-कलाप है जो तब सम्पन्न होती है जब चेतन प्राणी (व्यक्ति या समूह) अपनी इच्छाओं, आवश्यकताओं एवं दायित्वों से संबंधित पारस्परिक असंगत क्रियाओं को संपादित करना चाहते हैं
2. संप्रेषण उस समय घटित होता है जब एक मस्तिष्क अपने वातावरण के साथ इस प्रकार कार्य करता है कि कोई अन्य मस्तिष्क प्रभावित होता है और उस अन्य मस्तिष्क में पहले मस्तिष्क की भाँति ही अनुभवों का जन्म होता है।
3. विपरीत
4. प्रतिपक्ष, विरुद्ध
5. अंतर्क्रिया
6. इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस इकाई का खंड 4.5.1 देखें।
7. इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस इकाई का खंड 4.5.1 देखें।
8. इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस इकाई का खंड 4.6 देखें।
9. लिपमैन
10. इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस इकाई का खंड 4.7.1 देखें।
11. इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस इकाई का खंड 4.8 देखें।
12. इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस इकाई का खंड 4.9.1 देखें।
13. इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस इकाई का खंड 4.9.2 देखें।
14. इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस इकाई का खंड 4.9.3 देखें।

4.12 संदर्भ एवं सहयोगी पुस्तकें

1. अरस्तु.रेहोट्रिक (ट्रांसलेटेड बाइ,रॉबर्ट्सडब्ल्यु,आर.)।

2. निकोलसन,एम० (1992).रैशनलिटि ऐण्ड द एनालसिस ऑफ कनफ्लिक्ट, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटि प्रेस, पृ .11, 978-0-0-521-39810-7।
3. बार्डेन,एल० (1997).कंटेंट एनालसिस।
4. बेरलो,डी० के० (1960). द प्रॉशेस ऑफ कम्युनिकेशन.न्युयॉर्क:न्यु यॉर्क हॉल्ट, रिनेहर्ट एण्ड विनसन, पृ. 15।
5. बैरन ए० आर० (1990). कनफ्लिक्ट इन ऑर्गनाइजेश्न्स।
6. रिचर्ड्स,आइ० ए० (1968). द सेक्रेट ऑफ फिडफॉर्वर्ड, सैटरडे रिव्यु,51, पृ० 15।
7. लिपमैन,डब्ल्यु० (1992). पब्लिक ओपिनियन,न्युयॉर्क: हार्कोट, ब्रेस ऐण्ड कम्पनी।
8. व्हाइट, जे० बी० (1984). व्हेनवर्ड्स लूस दियरमिंनिंग,शिकागो:दयुनिवर्सिटि ऑफ शिकागो प्रेस।
9. हरमैन, आर० (1995). पॉलिटिकल स्टाइल:द आर्टिस्ट्री ऑफ पावर, द युनिवर्सिटि ऑफ शिकागो प्रेस।

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. संप्रेषण के विश्लेषण में परिप्रेक्ष्य की भूमिका पर प्रकाश डालें।
2. टेलिविज़न एवं संचार के अन्य साधनों पर प्रस्तुत विवादस्पद मुद्दों का विश्लेषण करते समय उन मुद्दों के प्रस्तुतीकरण में प्रयुक्त संकेतों का विश्लेषण क्यों आवश्यक हैं।
3. स्टिरियोटाइप से क्या आशय है?
4. अलंकारशास्त्र का अध्ययन संप्रेषण के विश्लेषण के लिए क्यों आवश्यक है?
5. शांति शिक्षा के विशेष संदर्भ में पाँचवीं कक्षा के हिंदी के पाठ्यपुस्तक का विश्लेषण करें।

इकाई 5 - विद्यालय में जीवन का विश्लेषण: प्रतिस्पर्धा का वातावरण; शारीरिक दण्ड एवं उसके परिणाम; परिवार की भूमिका; लैंगिक भूमिका एवं रूढ़िवादी

Analyzing life at school: Culture of competition; Corporal punishment and its consequences; Role of family; Gender roles of stereotypes

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 बच्चों का विद्यालयी जीवन
5.4 विद्यालय में प्रतिस्पर्धा का वातावरण
5.5 शारीरिक दण्ड से तात्पर्य
5.5.1 विद्यालय में दिया जानेवाला शारीरिक दण्ड एवं उसके परिणाम
5.6 बच्चों के विद्यालयी जीवन में परिवार की भूमिका
5.7 विद्यालयी जीवन में लैंगिक भूमिका एवं रूढ़िवादी
5.7.1 लैंगिक असमानता से तात्पर्य
5.7.2 विद्यालयी शिक्षा में लैंगिक असमानता
5.7.3 विद्यालय में बालिकाओं के प्रति रूढ़िवादी विचारधारा
5.8 सारांश
5.9 शब्दावली
5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.11 निबंधात्मक प्रश्न
5.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.1 प्रस्तावना

जीवन में स्कूली शिक्षा का महत्व और प्रभाव दीर्गगामी होता है । एक बच्चा पारिवारिक परिवेश से समाज में विलेयता की ओर स्वयं और समाज के उत्थान की ओर एक कदम बढ़ाता है । पारिवारिक संस्कारो से युक्त होकर देश और समाज की संस्कृति को सीखता है एवं उसका प्रयोग करता है। समाज में स्वयं की हिस्सेदारी निर्धारित करने हेतु अथक परिश्रम करता है और समाज के प्रति संवेदनशीलता की भावना विकसित करता है जिससे बच्चे के जीवन के उद्देश्य की शुरुआत हो जाती है।

छात्र जीवन में बच्चा कभी अनुकूल तो कभी प्रतिकूल, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से गुजरता है और इन्ही अनुभवों से अपने जीवन को भविष्य में लक्ष्य प्राप्ति के लिए व्यवस्थित करता है । सफलता प्राप्ति हेतु वह अथक प्रयास एवं मेहनत करता है। छात्र जीवन में शिक्षा और ज्ञान का मूल्यांकन स्वयं नहीं हो सकता और कभी प्रयासों की कमी के कारण परिणाम इच्छानुसार नहीं मिल पाता । इन विपरीत परिणामो के कारण छात्र जीवन में क्षणिक अवसाद भी आते हैं । इस इकाई में हम छात्र के विद्यालयी जीवन की चर्चा करेगें तथा विद्यालय में प्रतियोगिता के माहौल, शिक्षकों द्वारा दिए जाने वाले शारीरिक दण्ड तथा उसका बच्चे के ऊपर पढ़ने वाले प्रभाव, विद्यालय में लैंगिक असमानता तथा रूढ़िवादी बातों की चर्चा भी करेगें।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप:-

1. बच्चे के विद्यालय में जीवन के बारे में चर्चा कर सकेगें;
2. विद्यालय में प्रतिस्पर्धा के वातावरण के गुण-दोष को बता सकेगें;
3. विद्यालय में दिए जाने वाले शारीरिक दण्ड एवं उसके परिणामों को बता सकेगें;
4. विद्यालय जीवन में परिवार की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगें;
5. विद्यालय में लैंगिक असमानता एवं लैंगिक भूमिका की चर्चा कर सकेगें।

5.3 बच्चों का विद्यालयी जीवन (School Life of Children)

बच्चा जब पहली बार विद्यालय जाता है तो उसे अपने माता-पिता से बिछड़ने का गम होता है, परन्तु विद्यालय में जाकर वह अपने अपने उम्र के कई सारे बच्चों से मिलता है तो उसे ख़ुशी का अनुभव होता है । जीवन में दोस्त बनाने की प्रक्रिया इसी स्तर से शुरु हो जाती है, वह अपने दोस्तों के साथ खेलता है, भोजन करता है एवं विभिन्न प्रकार की बातें करता है जो शायद हम बड़ों को अजीब लगता है। इन दोस्तों के अलाव उन्हें एक अध्यापक भी मिलता है जो उनकी देखभाल करता है एवं उनको सही एवं गलत कार्यों को बताता रहता है। बच्चों के लिए अध्यापक का विशेष महत्व होता है, माता -पिता की आज्ञा

और अध्यापक के कथनों का सीधा प्रभाव बच्चे में दिखाई प्रतीत होता है। अध्यापक द्वारा कहे गए कथन छात्र के लिए जीवन भर उत्साह और एक ऊर्जा का संचरण करते रहते है। ये भारत देश की संस्कृति ही है, जहाँ अध्यापक के कथनों की सत्यता और महत्व का माता-पिता द्वारा बनाये गए मानक भी पीछे होकर छात्र जीवन में बच्चे की प्राथमिकता पर आ जाते हैं। अत: अध्यापक समाज का एक अभिन्न और महत्वपूर्ण अंग है जिसका दायित्व समाज की परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित होता है। बच्चों को विद्यालय में विभिन्न प्रकार के अध्यापक मिलते हैं कुछ अध्यापक बच्चों के द्वारा की गयी गलतियों को बताकर उन्हें प्यार से सुधारने की कोशिश करते हैं तो कुछ अध्यापक बच्चों द्वारा की गयी गलतियों पर शारीरिक दण्ड देते हैं। बच्चा जो अब तक विद्यालय में आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा था वो अब विद्यालय जाने से कतराने लगता है क्योंकि उसे अब उस अध्यापक की वजह से विद्यालय से डर लगने लगता है।

विद्यालयी जीवन में बच्चे के समक्ष विभिन्न प्रकार के अवसरों जैसे- सांस्कृतिक कार्यक्रमों, खेलकूद, भ्रमण इत्यादि में भाग लेना तथा चुनौतियों जैसे- गलतियों पर अध्यापक से डांट अथवा दण्ड, परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करना, विभिन्न विषयों को समझने के लिए अथक प्रयास इत्यादि। ये सभी अवसरों एवं चुनौतियां बच्चे को मजबूत बनाती है तथा जिसको पार करते हुए बच्चा अपनी लक्ष्य की तरफ बढ़ता है। बच्चा विद्यालय में विभिन्न प्रकार की भावना विकसित करता है जैसे खेलते समय सहयोग का, भोजन करते समय साझेदारी का, किसी दोस्त को चोट लगने पर सहानुभूति का इत्यादि। प्रतिस्पर्धा की भावना भी विद्यालय में ही विकसित होती है, चाहे वो खेल में अपने सहपाठी से जीतने का हो अथवा परीक्षा में सबसे अच्छे अंक प्राप्त करने का हो। प्रतिस्पर्धा की भावना को अच्छी प्रकार से विकसित करने में अध्यापक की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि उसे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि यह भावना सकारात्मक रूप में हो ना कि नाकारात्मक रूप में अर्थात प्रतिस्पर्धा केवल जीत एवं हार के लिए नहीं होना चाहिए यह सबके उन्नति के लिए होना चाहिए । अगले खण्ड में विद्यालय में प्रतिस्पर्धा के वातावरण के बारे में चर्चा करेगें।

अभ्यास प्रश्न

1. अध्यापक के कथन का प्रभाव बच्चे पर नहीं पढ़ता है। **सत्य/असत्य**

5.4 विद्यालय में प्रतिस्पर्धा का वातावरण (Culture of competition in school)

शिक्षा एवं प्रतिस्पर्धा विद्यालयी जीवन के दो सार्वभौमिक तत्व हैं। अतीत काल से लेकर वर्तमान समय तक मनुष्य शिक्षा एवं प्रतिस्पर्धा को महत्वपूर्ण मुद्दे मानता रहा है, हाँ यह जरुर है कि समय बदलने के साथ इन दो मुद्दों के प्रकृति में परिवर्तन आया है। शिक्षा की जड़े बच्चे में कहीं अनजान जगह छुपी होती हैं,

और प्रतिस्पर्धा की जड़ो का तो पता ही नहीं चलता है कि बच्चे में कहाँ होती हैं। बच्चे अनायास ही अपने सहपाठी से प्रतिस्पर्धा करने लगते हैं। ऐसा लगता है कि बच्चों को दूसरे से तुलना करना एवं प्रतिस्पर्धा करना जन्म से ही होता है, जैसे- दौड़ना, कुश्ती करना इत्यादि। ऐसी प्रतिस्पर्धा बच्चों के विकास हेतु उपयोगी भी होती है। खेल में प्रतिस्पर्धा शारीरिक एवं मानसिक प्रतिस्पर्धा का एक छोटा पद है जिसको खेल भावना भी कहा जाता है, परन्तु व्यस्क लोग अपने हित के लिए लिप्त हो जाते हैं। मानव इतिहास में शिक्षा के जैसे ही कुछ प्रतिस्पर्धा पहले से ही चली आ रही है, जो नियमबद्ध होते थे तथा विशेषज्ञों द्वारा संचालित किये जाते थे। पहले औपचारिक प्रतिस्पर्धा केवल खेल में होती थी परन्तु अब इसका क्षेत्र बढ़कर शिक्षा तक हो गया है। ऐसा नहीं कि शिक्षा में औपचारिक प्रतिस्पर्धा लाभदायक है, परन्तु अगर यह प्रतिस्पर्धा सकरात्मक एवं ईमानदारी से हो तो।

विद्यालय में बच्चों के बीच आपस में प्रतिस्पर्धा कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं है, यह बच्चों की स्वभाविक क्रिया है अतः प्रतिस्पर्धा को शिक्षा से अलग नहीं किया जा सकता है। वहीं दूसरी तरफ समाज के व्यस्क लोग प्रतिस्पर्धा को इतना महत्वपूर्ण मानते हैं कि वे अपने बच्चों को विद्यालय के शुरूआती दिनों से प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करते हैं। बच्चों में प्रतिस्पर्धा हेतु को बढ़ाना चाहिए या घटाना चाहिए इस बात पर शिक्षाशास्त्रियों में मतभेद है। कुछ शिक्षाशाष्त्रीयों का मानना है कि चूँकि प्रतिस्पर्धा प्रत्येक संस्कृति का भाग है अतः शिक्षा में भी प्रतिस्पर्धा होनी चाहिए ताकि बच्चे उसी स्थिति में रहे जिनमे उनको भविष्य में रहना है, वहीं कुछ शिक्षाशास्त्रियों कहते हैं कि प्रतिस्पर्धा से बच्चों में सहयोग की भावना नहीं रह जाती है यह संस्कृति का एक बुरा तत्व है जिसको समाप्त करना चाहिए। इस कारण विद्यालय में प्रायः प्रतिस्पर्धा की तरफ अस्पष्ट स्थिति होती है, जो विद्यार्थियों को भ्रमित करता है तब वे बाह्य रूप में दिखाए बिना कि वे प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं आंतरिक रुप से प्रतिस्पर्धा करते रहते हैं।

बच्चों में प्रतिस्पर्धा दो प्रकार से होती हैं, पहली तो वह जिसमें सभी बच्चे प्रतिस्पर्धी के रूप में हो और किसी की हार हो तो किसी की जीत, विद्यालय में इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा की संस्कृति अच्छी नहीं है इसे समाप्त करनी चाहिए। दूसरी प्रतिस्पर्धा वह होती है जिसमें बालक प्रतिस्पर्धा स्वयं से करता है अथवा किसी बाहरी इकाई से, जैसे- किसी गणितीय समस्या को हल करना, किसी भी कार्य को निर्धारित किये गये समय पर पूर्ण करना इत्यादि। विद्यालय में इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा होनी चाहिए जिससे बच्चों का विकास अच्छी प्रकार से हो सके। शिक्षाशास्त्रियों में इस बात पर भी मतभेद है कि बच्चों में सकारात्मक प्रतिस्पर्धा बढ़ाने के उपाय क्या हों। कुछ शिक्षाशास्त्रियों का मानना है कि सकरात्मक प्रतिस्पर्धा बढ़ाने हेतु बच्चे का औपचारिक परीक्षा नहीं लेनी चाहिए बल्कि विद्यालय में पूरे सत्र के दौरान उसके द्वारा की गयी कार्यो का ऑकलन करना चाहिए इससे बच्चे में पूरे सत्र में दूसरों की अपेक्षा अच्छे कार्य करने हेतु सकारात्मक प्रतिस्पर्धा जागृति होगी। वहीं अन्य शिक्षाशास्त्रियों का मानना है कि बच्चों से पढ़ाये गये पाठ्यक्रम का औपचारिक परीक्षा लेनी चाहिए और उस परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने हेतु बच्चों में पढ़ने की सकारात्मक प्रतिस्पर्धा जाग्रति होगी। विद्यालय में सकारात्मक प्रतिस्पर्धा बढ़ाने के लिए निम्नलिखित कुछ प्रतिस्पर्धाओं को किया जा सकता है:

- किसी विषय के पक्ष एवं विपक्ष में दो समूहों में चर्चा
- मजाक वाले विषयों बनाम गंभीर विषयों पर विचार विमर्श
- व्यक्तिगत कार्य बनाम सामूहिक कार्य
- राष्ट्रीयता बनाम अंतर्राष्ट्रीयता
- भाग्य बनाम ज्ञान बनाम कौशल
- तुरंत फीडबैक बनाम बाद में फीडबैक

ऐसे बहुत सारे अन्य कार्यों के माध्यम से हम बच्चों के अंतर्गत साकारात्मक प्रतिस्पर्धा को बढ़ा सकते हैं।

शिक्षाशास्त्रियों में बच्चों में प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने एवं तरीकों में भले ही विभिन्नता हो परन्तु इस बात को नाकारा नहीं जा सकता है कि सकरात्मक प्रतिस्पर्धा बच्चों को अपना सर्वोत्तम देने के लिए चुनौती पैदा करती है जो भविष्य में उसके लिए ही लाभदायक होता है । विद्यालय प्रशासन को एवं शिक्षक को बच्चों की प्रतिस्पर्धा को कभी हार-जीत के रूप में नहीं देखना चाहिए ना ही बच्चों में ऐसी भावना भरनी चाहिए, अगर विद्यालय ऐसा कर सका तो वह एक सफल विद्यालय होगा तथा उसके बच्चे भविष्य में आदर्श नागरिक बन सकेगें । अगले खण्ड में हम विद्यालय में शिक्षकों द्वारा दिए जाने वाले शारीरिक दण्ड के बारे में चर्चा करेगें।

अभ्यास प्रश्न

2. शिक्षा में प्रतिस्पर्धा बच्चे के लिए हमेशा नुकसानदायक ही होता है। **सत्य/असत्य**

5.5 शारीरिक दण्ड से तात्पर्य (Meaning of corporal punishment)

शारीरिक दण्ड एक अपराध की सजा के रूप में, गलती करने वाले को अनुशासित करने के लिए या अस्वीकार्य प्रवृति या व्यवहार को रोकने हेतु दिया जाने वाला सुविचारित दण्ड है। यह शब्द क्रमबद्ध ढंग से आमतौर पर एक अपराधी को मारने के साथ संदर्भित है, चाहे न्यायिक, घरेलु या शैक्षणिक समायोजन हो।

शारीरिक दंड को तीन मुख्य प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है:

- **न्यायिक शारीरिक दण्ड:** कानूनी अदालत के द्वारा आदेशित आपराधिक सजा के रूप में. या तो जेल प्राधिकारी वर्गों या अतिथि अदालत के द्वारा आदेशित जेल के रूप में शारीरिक सजा इससे निकट रूप से संबंधित है।

- **अभिभावकीय या घरेलू शारीरिक दण्ड:** आम तौर पर परिवार के भीतर, अभिभावक या माता पिता के द्वारा दंडित किया जाता है।
- **विद्यालय में दिया जानेवाला शारीरिक दण्ड:** स्कूलों में जब विद्यार्थियों को स्कूल प्रशासकों या शिक्षकों द्वारा दंडित किया जाता है।

5.5.1 विद्यालय में दिया जानेवाला शारीरिक दण्ड एवं उसके परिणाम

भारतीय परम्परा में विद्यार्थी जीवन एक कठिन एवं श्रमसाध्य का कार्य माना जाता रहा है पर इसमें धीरे-धीरे कुछ ऐसी खामियाँ भी आ गयी है जो शिक्षा व्यवस्था में सबसे बुरी खामियों में से एक है, वह है छोटी-छोटी गलतियों पर भी शारीरिक एवं मानसिक दण्ड देना बाद में इसे औचित्यपूर्ण ठहराने के लिए लोकोक्तियाँ भी गढ़ ली गई जिसमें सबसे ज्यादा मशहूर है –"गुरूजी मारे धम-धम, विद्या आवे छम-छम"। विद्यालय में बच्चों को दंडित करने के लिए नाना प्रकार के तरीके अपनाए जाते है जिसमें उन्हें मारना, कक्षा में खड़े रहना, प्रार्थना सभा में शर्मिंदा करना, धूप में खड़ा करनाआदि।

अगर समाचारपत्र पढ़े तो आये दिनों कुछ इस तरह की खबरें पढ़ते हैं. "शिक्षक के पिटाई करने से बच्चे की आँख की रौशनी चली गयी", "विद्यालय में देर से आने की वजह से बच्चे की खूब पिटाई हुई" इत्यादि इस प्रकार की तमाम घटनाएँ देश के विभिन्न भागों में घटित होती रहती हैं। बुद्धिजीवियों और शिक्षाशास्त्रियों के जरिए, इन पर तमाम चर्चाएँ और परिचर्चाएं होती है। इसी बीच न्यायालय का आदेश आता है कि बच्चों को शारीरिक दण्ड या क्रूरता केक साथ डाटा-फटकारा ना जाए। इस पर भी लोगों के अलग-अलग विचार आए, कुछ लोगों ने अदालत के इस फ़ैसले का स्वागत किया तो कुछ लोगों ने इस बच्चों को ढ़ीट बनाने वाला आदेश बताया क्योंकि उनका मानना है कि बच्चों में अनुशासन लाने के लिए यह आवश्यक है।

लगभग सभी शिक्षाशत्रियों, समाजशास्त्रियों, और मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बच्चों की आदतों को सुधारने या दिए हुए कार्य को पूरा न करने की स्थिति में बच्चों को बहुत ही दोस्ताना तरीके से समझना चाहिए न कि गुस्सा होकर थप्पड़ मारना चाहिए। लेकिन यह बात केवल सैद्धांतिक ही होकर रह जाती विद्यालयों में ऐसी घटनाएं अभी भी देखने को मिल जाती है बावजूद इसके कि बच्चों के लिए मुफ़्त एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 17 (1) में यह कहा गया है कि बच्चों को किसी तरह से शारीरिक दण्ड या मानसिक उत्पीड़न नहीं दिया जाएगा। धारा 17 (2) में यह कहा गया है कि धारा 17 (1) के उल्लंघन करने पर सेवा नियमों के तहत उस व्यक्ति पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाएगी।

शारीरिक दण्ड देने से बच्चे जहाँ वे ढ़ीट बनते हैं वहीं पर वे बागी भी बन जाते हैं। बच्चों को दिए जाने वाले शारीरिक दण्ड पर हुए शोध पर पता चलता है कि जो बच्चे ज्यादा शारीरिक दण्ड पाए होते हैं वे बड़े होकर ज्यादा हिंसक प्रवत्ति के होते हैं। ऐसे बच्चे बढ़े होकर बात-बात पर दूसरों पर बहुत जल्दी हाथ उठा देते हैं। विद्यालय में बच्चों को शारीरिक दण्ड देने पर परिणाम अच्छे नहीं होते हैं, शारीरिक दण्ड के कुछ परिणाम निम्नलिखित है:

- बच्चे बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं
- बच्चों का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है
- बच्चों को भयानक चोट लग जाती है, जिनमे से कुछ विकलांग हो जाते हैं
- कई बच्चे आत्महत्या भी कर लेते हैं
- भविष्य में ऐसे बच्चे हिंसा का रास्ता अपनाते हैं
- बच्चे बागी बन जाते हैं

शिक्षक बच्चों को दण्ड देते वक्त हमेशा भूल जाते हैं कि इसका परिणाम बहुत भयंकर भी हो सकता है। बच्चे की जिन्दगी हमेशा के लिए तबाह हो सकती है और उसकी बुरी आदत छूटने के बजाय और भी बदतर हो सकती है। दूसरी बात, शारीरिक दण्ड अक्सर बच्चों के शिक्षक के रिश्तों को बनाने के बजाय बिगाड़ते ही हैं। यह बात शिक्षक को समझनी चाहिए कि जो बात प्यार के साथ मनवाई जा सकती है, वह थप्पड़ या डंडे से मारकर नहीं करवाई जा सकती है। गुस्सा एवं दण्ड कभी सकारात्मक परिणाम नही देते हैं। इस बात को उन लोगों को जरुर समझनी चाहिए जो शारीरिक दण्ड ही बच्चों को सुधारने का सबसे बेहतर तरीका मानते हैं। एक आदर्श व्यक्ति के निर्माण के लिए बच्चों को प्यार से समझाना ही एक बेहतर तरीका हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न

3. बच्चों के लिए मुफ़्त एवं अनिवार्य शिक्षा के अधिकार का अधिनियम, 2009 के किस धारा में यह कहा गया है कि बच्चों को किसी तरह से शारीरिक दण्ड या मानसिक उत्पीड़न नहीं दिया जाएगा।

5.6 बच्चों के विद्यालयी जीवन में परिवार की भूमिका (Role of Family in School Life of Children)

बच्चे के विकास के लिए घर में मातापिता- एवं परिवार के अन्य सदस्य तथा विद्यालय में शिक्षक संयुक्त भूमिका निभाते हैं। इनमें से एक की भी भूमिका विघटित होती है तो बालक का सामाजिक दृष्टि से विकास अवरुद्ध हो जाता है। हर बच्चा अनगढ़ पत्थर की तरह है जिसमें सुन्दर मूर्ति छिपी है, जिसे परिवार या शिक्षक रूपी शिल्पी की आँख देख ले तो वह उसे तराश कर सुन्दर मूर्ति में बदल सकता है। मूर्ति तो पहले से ही पत्थर में मौजूद होती है शिल्पी तो बस उस पत्थर को जिससे मूर्ति ढकी होती है, एक तरफ कर देता है और सुन्दर मूर्ति प्रकट हो जाती है। मातापिता- और शिक्षक बच्चे को इसी प्रकार सँवार कर खूबसूरत जीवन प्रदान करते हैं।

परिवार यानी माता के पिता बच्चे- व्यक्तिव निर्माण की पहली पाठशाला है। उसमें भी 'माँ' की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण है। अगर मातापिता अपने बालक से प्रेम करते हैं और उसकी अभिव्यक्ति भी करते हैं-, उसके प्रत्येक कार्य में रुचि लेते हैं, उसकी इच्छाओं का सम्मान करते हैं तो बालक में उत्तरदायित्व, सहयोग, सद्भावना आदि सामाजिक गुणों का विकास होगा और वह समाज के संगठन में सहायता देने वाला एक सफल नागरिक बन सकेगा। अगर घर में ईमानदारी सहयोग का वातावरण है तो बालक में इन गुणों का विकास भलीभाँति होगा, अन्यथा वह सभी नैतिक मूल्यों को ताक पर रखकर मनमानी करेगा और समाज के प्रति घृणा का भाव लिये समाज विरोधी बन जाएगा। बच्चों का नैतिक विकास उसके पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन से संबंधित है। जन्म के समय उनका अपना कोई मूल्य, धर्म नहीं होता, लेकिन जिस परिवार/समाज में वह जन्म लेता है, वैसाव-ैसा उसका विकास होता है।

परिवार बच्चों को सांस्कृतिक मान्यताओं (Cultural Values) को सिखाने का माध्यम है। परिवार वह आधारभूत संस्था है जो समाज में नियंत्रण लाने का मूल स्रोत है। बच्चों के जीवन के निर्माण में संतोषजनक पारिवारिक जीवन अत्यंत आवश्यक है। आज संयुक्त परिवार तो टूट ही रहे हैं, एकल परिवार में भी बच्चों की तरफ पूरा ध्यान नहीं दिया जा रहा। पति पत्नी दोनों-नौकरी करते हैं, नौकरों अथवा आया की कृपा पर बच्चा पलता है या 'क्रेच' में छोड़ दिया जाता है। चाहकर भी मातापि-ता बच्चों पर ध्यान नहीं रख पाते। बच्चे अक्सर इन हालात में उपेक्षित हो रहे हैं और अनेक प्रकार की संवेगात्मक गंभीर समस्याओं का शिकार हो रहे हैं जो अत्यंत चिंता का विषय है। मातापिता बच्चों के - व्यक्तित्व और चरित्र दोनों को प्रभावित करने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। उनके आपसी संबंधों और व्यवहार से बालमन सहज ही जुड़ जाता है, वे बच्चे के लिए सुरक्षा और स्नेह का स्रोत हैं। माता-पिता में परस्पर मधुर संबंध जहाँ बच्चों के चहुँमुखी विकास में सहायक होते हैं, वहीं उनके आपसी तनावपूर्ण टूटते रिश्ते उनके विकास को न केवल अवरूद्ध कर देते हैं, वरन् उनके जीवन को अनेक कुंठाओं विकारों से भर देते हैं। फलस्वरूप दमन, निराशा और पराजय जैसे भाव उनमें पनपने लगते हैं। परिवार के सभी सदस्यों को चाहिए कि परिवार में सबका व्यवहार सभ्य और सम्मानजनक हो, सभी सदस्य एक दूसरे के प्रति शालीन भाषा का प्रयोग ही करें।

बच्चों के प्रति परिवार का व्यवहार शिष्ट एवं मर्यादित होना चाहिए, परिवार को उसे आत्म-सम्मान एवं आत्मविश्वास प्रदान करना चाहिए ताकि भविष्य में वे सम्मानित एवं सफल जीवन जी सकें। बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण में परिवार को कुछ बातों की जानकारी अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है, जैसे:-

- क्या हम उनकी जिज्ञासावृत्ति का सम्मान करते हैं ?
- क्या हम उनकी बौद्धिक क्षमताओं को पहचानते हैं ? अथवा उन पर अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ लाद कर उनका जीवन बोझिल बना देते हैं ?
- क्या हम उन्हें अतिरिक्त सुरक्षा प्रदान कर उन्हें पंगु बना देते हैं अथवा बचपन से ही उन्हें स्वावलम्बी बनने की प्रेरणा देते हैं ?
- क्या हम बच्चों के विचारों एवं उनके द्वारा दिए गए सुझावों को सम्मान करते हैं ?

- क्या हम कभीकभार उनके साथ छुट्टी मनाते हैं अथवा अपनी व्य-स्तता एवं आर्थिक तंगी का रोना रोते रहते हैं ?
- क्या हम अपने पूर्वग्रह उन पर थोपते हैं अथवा उन्हें स्वंतत्र चिन्तन के लिए प्रेरित करते हैं ?
- क्या हम जीवन के प्रति निषेधात्मक सोच को अपनाते हैं अथवा उनमें सकारात्मक दृष्टिकोण को विकसित करते हैं ?

परिवार को बच्चों की जिज्ञासावृत्ति का सदा सम्मान करना चाहिए, अक्सर ऐसा होता है कि समयाभाव के कारण हम बच्चों की समस्याओं, उनके प्रश्नों को न तो पूरे मन से सुन पाते हैं और उनके कौतूहल को शान्त कर उन्हें संतुष्ट कर पाते हैं। कुछ भी पूछने पर उन्हें डाँटकर उनकी निरीक्षण-क्षमता को दबा देने का अनजाने मेंअपराध कर जाते हैं। ऐसा करके हम उनके भीतर की सृजानात्मक संभावनाओं को पल्लवित होने से पूर्व ही दमित कर देते हैं। ऐसे बच्चे अक्सर वर्जित अभिव्यक्ति तलाशने लगते हैं।

माता-पिता को चाहिए कि बच्चे के अच्छे कार्यों की प्रशंसा सबके सामने करें, और उसकी कमियों की बात एकांत में उसके साथ करें, अन्यथा हम जानेअनजाने बच्चे को नकारात्मक दिशा की ओर -प्रेरित करने की भयंकर भूल करदेते हैं। यह सब बच्चों के हित में नहीं है, मातापिता का कर्तव्य है-कि वे बच्चे की हर संभव जिज्ञासा का शमन करे, क्रोध और खीझ में भर कर नहीं, स्नेह और धैर्य के साथ उनकी हर शंका का यथासंभव निवारण करें। उन्हें समय दें, उन्हें अभय प्रदान करें, ऐसा न हो कि मातापिता के उग्र रूप की परछाईं पकड़े बच्चे अपनी ही जिज्-ञासाओं के भँवरजाल में डूब -जाएँ। अतः लाख कामों में मशगूल होते हुए भी उनसे इस प्राकृतिक अधिकार को न छीनें, जो आपके सभी कर्तव्यो से ऊपर है। माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चे को समय और स्नेह दें, उनके साथ बैठें, उनकी परेशानियों के विषय में उनसे बात करते उनकी सहायता करें। बच्चे की कक्षा व गृहकार्य की कॉपी देखें, शिक्षक के लिखे नोट पढ़ें, बच्चों के मित्र बनकर उनके साथ खुलकर बातचीत करें, उन्हें डराएँ धमकाएँ नहीं वरन् सहायता का आश्वासन देकर उन्हें मानसिक उलझन से मुक्त करें। किसी टैस्ट या परीक्षा में कम अंक पाने पर उन्हें प्रताड़ित न करें। कारण की तह तक जाएँ, न कि पीटकर, अपशब्द बोलकर या डाँटकर उन्हें शारीरिक व मानसिक दुःख पहुँचाएँ। उनका मनोबल बढ़ाते हुए उन्हें उत्साहवर्धक शब्द दें। उन्हें उनकी प्रतिभाओं से परिचित कराएँ।

अभ्यास प्रश्न

4. परिवार बच्चों को सांस्कृतिक मान्यताओं को सिखाने का माध्यम है। **सत्य/असत्य**

5.7 विद्यालयी जीवन में लैंगिक भूमिका एवं रूढ़िवादी (Gender Role in School Life and Stereotypes)

आपने कभी अपने आस-पास या पड़ोस में बेटी के जन्म पर ढ़ोल नगाड़े या शहनाइयाँ बजते देखा है? शायद नहीं देखा होगा और देखा भी होगा तो कहीं इक्का-दुक्का। वस्तुतः हम भारत के लोग 21वीं शताब्दी के भारतीय होने पर गर्व करते हैं, बेटा पैदा होने पर खुशी का जश्न मनाते हैं और अगर एक बेटी का जन्म हो जाए तो शान्त हो जाते हैं। लड़के के लिये इतना ज़्यादा प्यार कि लड़कों के जन्म की चाह में हम प्राचीन काल से ही लड़कियों को जन्म के समय या जन्म से पहले ही मारते आ रहे हैं, और अगर वो नहीं मारी जाती तो हम जीवन भर उनके साथ भेदभाव के अनेक तरीके ढूंढ लेते हैं। हम देवियों की पूजा तो करते हैं, पर महिलाओं का शोषण करते हैं। जहाँ तक महिलाओं के संबंध में हमारे दृष्टिकोण का सवाल है तो हमारा समाज दोहरे- मानकों का एक ऐसा समाज है जहाँ हमारे विचार और उपदेश हमारे कार्यों से भिन्न हैं। आपने लैंगिक असमानता के बारे में सुना होगा चलिए जानने की कोशिश करते हैं कि लैंगिक असमानता से क्या तात्पर्य है।

5.7.1 लैंगिक असमानता से तात्पर्य

लैंगिक असमानता से तात्पर्य लैंगिक आधार पर महिलाओं के साथ भेदभाव से है। पारंपरागत रूप से समाज में महिलाओं को कमज़ोर वर्ग के रूप में देखा जाता रहा है। वे घर और समाज दोनों जगहों पर शोषण, अपमान और भेद-भाव से पीड़ित होती हैं। ऐसा नहीं है कि महिलाओं और पुरुषों में भेदभाव केवल भारत में ही किया जाता है यह स्थिति विश्व के अन्य देशों में भी है। लिंगानुपात एक अति संवेदनशील सूचक है जो महिलाओं की स्थिति को दर्शाता है। बच्चों में लिंगानुपात निरंतर कम होता जा रहा है। निरंतर कम होते लिंगानुपात के कारण जनसंख्या में असंतुलन पैदा हो होता है जिससे महिलाओं के विरुद्ध अपराध बढ़ने जैसी अनेक सामाजिक समस्याएँ पैदा होती हैं।

5.7.2 विद्यालयी शिक्षा में लैंगिक असमानता

जैसा कि हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं कि लैंगिक असमानता केवल भारत में ही नहीं है यह दुनिया के सभी देशों में फैला हुआ है, यही स्थिति विद्यालयी शिक्षा में भी है। शिक्षा में भी दुनिया के हर हिस्से में लड़के और लडकियों के साथ एक जैसा बर्ताव नहीं होता है। यूनेस्को अपने "सब के लिए शिक्षा' (Education for All) कार्यक्रम के साथ इसे बदलना चाहता है। सबके लिए शिक्षा ग्लोबल मॉनिटरिंग रिपोर्ट जो की वर्ष 2015 में प्रकाशित हुई थी जिसमें शिक्षा में लैंगिक असमानता के आंकड़े बताए गये हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

- शिक्षा में लैंगिक असमानता विश्व में आधे से ज्यादा देशों में फैली हुई है
- 63 मिलियन से अधिक लड़कियां विद्यालय से बाहर हैं जबकि लडकों के सन्दर्भ में यह आंकड़ा 8 मिलियन है

- लैंगिक असमानता अरब देशों, उप-सहारा अफ्रीका, एवं दक्षिण व पश्चिम एशिया में सबसे अधिक है
- दक्षिण व पश्चिम एशिया में विद्यालय के बाहर कुल लड़कियों में से 80 प्रतिशत लड़कियां हैं वहीं लडकों की संख्या इस संदर्भ में 16 प्रतिशत है
- वैश्विक स्तर पर विद्यालय से बाहर प्राथमिक शिक्षावय बच्चों की कुल संख्या का 52 प्रतिशत लड़कियां हैं

उपरोक्त आंकड़े दर्शाते हैं कि शिक्षा में लैंगिक असमानता दुनिया के विभिन्न देशों में, इस असमानता को कम करना जरुरी है तभी सभी के लिए शिक्षा का सपना पूरा होगा। संयुक्त राष्ट्र ने दुनिया के सामने यह लक्ष्य रखा है कि वर्ष 2030 तक स्त्री-पुरुष अनुपात को बराबरी के स्तर तक लाकर लैंगिक समानता के लक्ष्य को हासिल किया जाय। इसी असमानता की वजह से विद्यालय में बालिकाओं के लोंगों के मन में रूढ़िवादी विचारधारा बन जाती है, आईये देखते हैं कि ये विचारधाराएँ क्या है।

5.7.3 विद्यालय में बालिकाओं के प्रति रूढ़िवादी विचारधारा

रुढ़िवादी विचारधारा से तात्पर्य वैसी विचारधारा से है जिसे व्यक्ति बिना तर्क के वैसे ही मान लेता है जैसा वह सुनता आता है, उदहारण के तौर पर यह एक रुढ़िवादी विचारधारा है कि लड़कियाँ कुश्ती नहीं लड़ सकती। समय के साथ-साथ बालिकाओं के प्रति रुढ़िवादी विचारधाराओं में कमी आई है परन्तु अभी भी बहुत से लोगों के विचारों से यह विचारधारा हटी नहीं है। विद्यालय में बालिकाओं के प्रति कुछ रुढ़िवादी विचारधारा निम्नलिखित हैं:

- बालिकाओं को गणित एवं विज्ञान विषय पढ़ने की अपेक्षा गृह विज्ञान पढ़ना चाहिए
- बालिकाओं को खेल-कूद में भाग नहीं लेना चाहिए
- बालिकाओं को शैक्षिक भ्रमण हेतु नहीं जाना चाहिए
- विद्यालय में बालिकाओं को केवल समीज-सलवार ही पहनना चाहिए
- बालिकाओं को पाठ्य-सहगामी क्रियाओं जैसे- नृत्य, नाटक इत्यादि में भाग नहीं लेना चाहिए

विद्यालय में बालिकाओं के प्रति इस प्रकार की बहुत सारी रुढ़िवादी विचारधाराएँ शिक्षक से लेकर माता-पिता के मन में होती है जो निरर्थक हैं क्योंकि वर्तमान समय में बालिकाएँ गणित, विज्ञान विषयों को पढ़ने के अलावा खेल-कूद एवं पाठ्य-सहगामी क्रियाओं में भाग लेती हैं और सफल भी होती हैं। अतः माता-पिता एवं शिक्षक को अपने मन से बालिकाओं के प्रति रुढ़िवादी विचारों से छुटकारा पाना होगा तभी उनका, उनके बेटी का तथा इस देश का विकास हो पायेगा।

अभ्यास प्रश्न

5. यूनेस्को के अनुसार लैंगिक असमानता केवल भारत में ही है। **सत्य/असत्य**

5.8 सारांश

बच्चों को विद्यालय में विभिन्न प्रकार के अध्यापक मिलते हैं कुछ अध्यापक बच्चों के द्वारा की गयी गलतियों को बताकर उन्हें प्यार से सुधारने की कोशिश करते हैं तो कुछ अध्यापक बच्चों द्वारा की गयी गलतियों पर शारीरिक दण्ड देते हैं। बच्चा जो अब तक विद्यालय में आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा था वो अब विद्यालय जाने से कतराने लगता है क्योंकि उसे अब उस अध्यापक की वजह से विद्यालय से डर लगने लगता है। विद्यालय में बच्चों के बीच आपस में प्रतिस्पर्धा कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं है, यह बच्चों की स्वभाविक क्रिया है अतः प्रतिस्पर्धा को शिक्षा से अलग नहीं किया जा सकता है।

अक्सर मातापिता अपने बच्चों की रुचियों एवं क्षमताओं से अनभिज्ञ रहकर उन पर अपनी - इच्छाओं, महत्त्वाकांक्षाओं और सपनों को थोप देने की भारी भूल कर बैठते हैं। स्वयं अगर डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, वकील, इत्यादि लालसा को उनमें तलाशना शुरू कर देते हैं। अपनी चाहत उन पर लाद कर उनकी बुद्धि को कुंठित करने की भूल कदापि न करें। उनके अपने सपनें हैं जिन्हें वे पूरा करना चाहेंगे, प्रकृति ने हर व्यक्ति को एकएक विशेष योग्यता देकर भेजा है।- हम एक चित्रकार के हाथ में रंग और तूलिका थमाने के स्थान पर उसे ईंटचूने में धकेल कर सिविल इंजीनियर बनाने की -पत्थर गारे- गलती न करें। बचपन में ही उसकी रुचि, ऊर्जा को पहचानें। जबरदस्ती से चुने गए विषय और कैरियर उसे पूरा जीवन संतोष नहीं दे पाते और वह व्यक्ति उसे ढोता हुआ अपना जीवन बोझिल बना लेता है। उनकी क्षमता के अनुरूप उन्हें सही दिशा देना हमारा कर्तव्य है, अन्यथा हम व्यक्ति के ही नहीं, समाज के भी अपराधी माने जायेंगे और देश भी ऐसी प्रतिभाओं के विकास के लाभ से वंचित रह जाएगा।

5.9 शब्दावली

1. **प्रतिस्पर्धा:** प्रतिस्पर्धा की जड़ो का तो पता ही नहीं चलता है कि बच्चे में कहाँ होती हैं। बच्चे अनायास ही अपने सहपाठी से प्रतिस्पर्धा करने लगते हैं। ऐसा लगता है कि बच्चों को दूसरे से तुलना करना एवं प्रतिस्पर्धा करना जन्म से ही होता है, जैसे- दौड़ना, कुश्ती करना इत्यादि। ऐसी प्रतिस्पर्धा बच्चों के विकास हेतु उपयोगी भी होती है।
2. **शारीरिक दण्ड**: शारीरिक दण्ड एक अपराध की सजा के रूप में, गलती करने वाले को अनुशासित करने के लिए या अस्वीकार्य प्रवृति या व्यवहार को रोकने हेतु दिया जाने वाला सुविचारित दण्ड है। यह शब्द क्रमबद्ध ढंग से आमतौर पर एक अपराधी को मारने के साथ संदर्भित है, चाहे न्यायिक, घरेलु या शैक्षणिक समायोजन हो।

3. **लैंगिक असमानता:** लैंगिक असमानता से तात्पर्य लैंगिक आधार पर महिलाओं के साथ भेदभाव से है।

5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. असत्य
2. असत्य
3. धारा 17 (1)
4. सत्य
5. असत्य

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. बच्चे के विद्यालय में जीवन के बारे में चर्चा कीजिए।
2. विद्यालय में बच्चों में प्रतिस्पर्धा के वातावरण के गुण-दोष का विवेचन कीजिए।
3. विद्यालय में दिए जाने वाले शारीरिक दण्ड एवं उसके परिणामों को उदाहरण के माध्यम से बताइए।
4. विद्यालय जीवन में परिवार की भूमिका के महत्त्व का विश्लेष्ण कीजिए।
5. विद्यालय में लैंगिक असमानता एवं लैंगिक भूमिका की चर्चा कीजिए।

5.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कालरा, शकुन्तला (2007). *बच्चों का व्यक्तित्व विकास कैसे हो.* कानपुर: दृष्टि प्रकाशन
2. आर्येंदु, अखिलेश (2012). *सबसे घटिया तरीका है बच्चों को शारीरिक दण्ड से उन्हें सुधारना.* प्रवक्ता.कॉम से 20/02/2017 को लिया गया
3. यूनेस्को (2015). सबके लिए शिक्षा ग्लोबल मॉनिटरिंग रिपोर्ट. न्यूयार्क: यूनेस्को
4. http://ns.umich.edu/new/hindi-translations/23744-2016-04-28-13-45-36-spanking-does-more-harm-than-good
5. http://www.hindi.drishtiias.com/general-studies-resourses-in-india-gender-inequality-and-gender-budgeting#sthash.APWgIeob.dpuf

खण्ड 2

Block 2

इकाई 3 – संवाद : संकल्पना और उसके अनुप्रयोग (जीवन में, परिवार में, स्कूल में और साथियों में)

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 संवाद/ वार्ता/ बातचीत की संकल्पना
3.3.1 संवाद के उद्देश्य
3.4 संवाद का महत्व
3.4.1 जन-संपर्क में संवाद
3.4.2 संवाद के प्रयोग के लिए आवश्यक तत्व
3.5 संवाद के माध्यम से शांति
3.6 जीवन में संवाद का उपयोग
3.7 परिवार में संवाद का उपयोग
3.8 स्कूल में संवाद का उपयोग
3.8.1 कक्षा में बेहतर संवाद कैसे हो?
3.9 साथी समूह / समकक्षों में संवाद का उपयोग
3.10 सारांश
3.11 शब्दावली
3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.13 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.14 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

शांति की संस्कृति या पर्यावरण का निर्माण, बहुभाषी संवाद के जरिए समाज के सदस्यों के बीच एक चेतना पैदा करने के लिए बातचीत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । जीवन में शांति का विशेष महत्व है। सत्य कहने व धर्म का आचरण करने से ही जीवन सफल होता है। देश की अमूल्य धरोहर हमारी संस्कृति है। अपनी संस्कृति के संरक्षण व संवर्धन के लिए सभी को एकजुट होकर प्रयास करना चाहिए। परमात्मा को जानने, पूजने व जाने के मार्ग भिन्न हो सकते हैं पर परमात्मा एक ही है। पंथ व संप्रदाय अलग हैं, किंतु धर्म सभी

का एक है और वह मानव धर्म है। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई, बौद्ध, फारसी, जैन आदि बनने में कोई बुराई नहीं है। महत्वपूर्ण यह है कि हम अच्छे इंसान बन पाएं या नहीं। सभी को एक दूसरे से मिलकर रहना चाहिए। समाज में सौहार्द बनाए रखना हम सभी की जिम्मेदारी है। एक तेजी से विविध और विरोधाभासी दुनिया में, संघर्ष की रोकथाम के लिए खुले समुदाय संवाद को सुनिश्चित करने के लिए अधिक सहयोगी प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। शांति को पाने के लिए कई विविध मार्ग हैं और फिर भी, संवाद अक्सर शांति निर्माण में एक कमउपयोगी और अनदेख उपकरण है। संवाद का मतलब होता है कि दूसरे को खुले मन से समझने का प्रयास करना। संवाद बहुत ही दुर्लभ और सुंदर घटना है, क्योंकि उससे दोनों ही समृद्ध होते हैं। सच तो यह है कि जब तुम बोल रहे हो, या तो यह बहस हो सकती है, शाब्दिक झगड़ा, मैं ठीक और तुम गलत यह सिद्ध करने का प्रयास--या संवाद। सत्य तक पहुंचने के लिए, एक-दूसरे का हाथ थाम लेना, राह ढूंढ़ने में एक-दूसरे की मदद करना संवाद है। यह साथ होना है, यह सहयोग है, सत्य को पाने के लिए यह लयबद्ध प्रयास है। यह किसी तरह से झगड़ा नहीं है, किसी हालत में नहीं। यह मित्रता है, सत्य पाने के लिए साथ-साथ चलना, सत्य पाने में एक-दूसरे की मदद करना। अभी किसी के पास सत्य नहीं है, लेकिन जब दो लोग ढूंढ़ने का प्रयास करते हैं, सत्य के बारे में एक साथ खोजने लगते हैं, यह संवाद है--और दोनों ही समृद्ध होते हैं। वार्ता, विवादित समाज के सदस्यों के बीच परस्पर सहयोग और समर्थन की स्थिति बनाने की कोशिश करती है, जो संघर्ष के शांतिपूर्ण समाधान को छोड़कर कोई विकल्प नहीं देखते हैं। यह नागरिक शांति निर्माण की क्षमता के विकास, मानव अधिकारों और लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए सम्मान को मजबूत बनाने, नागरिक शांति पहलों को बढ़ावा देने, और संघर्ष के शिकार लोगों की ओर से वकालत के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। किसी स्थिति या पर्यावरण को बदलने या किसी भी मुद्दे से रचनात्मक तरीके से निपटने के लिए, पहले संवाद की आवश्यकता है। यूनेस्को (UNESCO), शांति प्राप्त करने के लिए व्यापक बातचीत को एक महत्वपूर्ण उपकरण के तौर पर नियोजित कर रहा है, आईसीटी (Information and Communication Technology) और मीडिया बातचीत, पारस्परिक समझ, आत्म अभिव्यक्ति, शांति और सामंजस्य को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण उपकरण हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई में पढने के बाद, आप सक्षम होंगे-

1. संवाद की संकल्पना को स्पष्ट करने
2. संवाद के महत्व को जीवन में समझने
3. संवाद के लिए शांति का वातावरण विकसित करने
4. संवाद के माध्यम से शांति किस तरह सृजित क को प्रदर्शित करने
5. जीवन में, परिवार में, स्कूल में और साथियों के बीच संवाद को बढावा देने
6. जीवन में, परिवार में, स्कूल में और साथियों के बीच, संवाद लागू करने

7. स्थिति या पर्यावरण को बदलने और संवाद के साथ किसी भी मुद्दे के साथ रचनात्मक रूप से निपटने

3. 3 संवाद/ वार्ता/ बातचीत की संकल्पना

संवाद दो या दो से अधिक लोगों के बीच एक लिखित या बोलनेवाली बातचीत के आदान-प्रदान है, और एक ऐसी साहित्यिक और नाटकीय रूप है जो इस तरह के विनिमय को दर्शाता है। संवाद एक संचार उपकरण है जिससे दलों को एक आम तरीके से एक समस्या की संरचना **करने** की अनुमति है । जॉन डेवी (John Dewey) ने ठीक ही कहा था कि:

"लोकतंत्र बातचीत में शुरू होता है।"

कुछ के लिए जॉन डेवी की तरह, संवाद एक केंद्रित और जानबूझकर बातचीत है, सभ्यता और समानता का स्थान जिसमें अलग-अलग लोग सुन सकते हैं और एक साथ बोल सकते हैं। अन्य लोगों के लिए यह एक सावधानीपूर्ण और रचनात्मक संबंधित होने का एक तरीका है। संवाद में, हम डर, पूर्वकल्पना, जीतने की आवश्यकता को अलग रखना चाहते हैं; हम अन्य आवाजों और संभावनाओं को सुनने के लिए समय लेते हैं । संवादतनाव और विरोधाभासों को शामिल कर सकती है, और ऐसा करने में, नए विचार सामूहिक ज्ञान उत्पन्न हो सकते हैं।

संवाद एक संचार उपकरण है जो लोगों को दूसरे दृष्टिकोणों को समझने की अनुमति देता है बिना खुद को अलग-अलग दृष्टिकोणों के खिलाफ ढके बिना। संवाद में, राय का कोई बचाव नहीं है, और ना हीं कोई प्रतिवाद। इसके बजाए, आप किसी से बात करते हैं और अपना दृष्टिकोण पेश करते हैं। आप उन्हें अपने विचार को खत्म करने दें बिना उसमे अपने दखल या सवाल पूछ बिना। आप समझने के लिए सुनो, अपने खुद के दृष्टिकोण को बचाने के लिए नहीं। आपका लक्ष्य उनके मन में जाना है, और उनके परिप्रेक्ष्य को समझें, साबित न करें कि वे गलत हैं और आप सही हैं। जब यह आपकी बारी है, आप बात करते हैं और अपने विचारों को खत्म करने की अनुमति है। और यहां कुंजी है: जब आप अपना दृष्टिकोण देते हैं, तो आप अपने दृष्टिकोण को उनकी तुलना में नहीं देते। संवादएक पीछे और आगे की चर्चा नहीं है,और ना हीं एक बहस या खंडन। किसी मुद्दे पर स्वतंत्र रूप से आपके दृष्टिकोणों को व्यक्त करते हुए दोनों के द्वारा सामूहिक रूप से एक समस्या बनाने का यह एक मौका है। 20 वीं सदी में, संवाद के दार्शनिक उपचार मिखाइल बख्तिन, पाउलो फ्रायर, मार्टिन बुबेर और डेविड बोम (Mikhail Bakhtin, Paulo Freire, Martin Buber, and David Bohm) सहित विचारकों से उभरी। मार्टिन बुबेर (Martin Buber) वार्ता को बढ़ावा तथा प्रोत्साहित करता है, न केवल निष्कर्ष पर पहुंचने या मात्र बिंदुओं को व्यक्त करने के कुछ उद्देश्यपूर्ण प्रयासों के रूप में, बल्कि मानव और मानव के बीच, और मनुष्य और ईश्वर के बीच प्रामाणिक संबंधों की शर्त के रूप में। बुबेर (Buber) का "सही वार्ता", जिसे खुलेपन, ईमानदारी, और पारस्परिक प्रतिबद्धता की विशेषता है। भौतिक विज्ञानी डेविड बोम (David Bohm) "वार्ता" वह है जहां लोगों का

एक समूह एक साथ बात करता है, सोच, अर्थ, संचार, और सामाजिक प्रभावों की अपनी मान्यताओं का पता लगाने के लिए। विभिन्न सामाजिक संदर्भों में संवाद के गुणों का स्वागत किया गया है, प्रबंधन, संघर्ष के समाधान, समुदाय-निर्माण, पारस्परिक संबंध और व्यक्तिगत विकास सहित।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसे अपने विचारोंऔर भावनाओं को व्यक्त करने के लिए शब्दों को वाणी रुपी माला में पिरोकर प्रस्तुत करना पड़ता है। वर्तमान समय मैं तो बातचीत की कला (Talking ability) का महत्व और भी ज्यादा बढ़ गया है। सभी तेजी से सफलता की सीढ़ीयां चढ़ना चाहते है। काम और व्यापार के सिलसिले में उन्हें अजनबियों से मुलाकात करनी पड़ती है। सभी की कोशिश रहती है कि बातचीत और विनम्र व्यवहार से सामने वाले का दिल जीता जाए।

- कब संवाद का उपयोग किया जाना चाहिए?

  वार्ता का उपयोग तब किया जाना चाहिए जब; दो पार्टियों ने एक मुद्दा अलग - अलग तरीके से तैयार किया है। जब व्यक्ति या समूह के अलग-अलग दृष्टिकोण होते हैं और मुद्दों को अलग-अलग देखते हैं, तो बातचीत को एक प्रभावी संचार उपकरण के रूप में नियोजित किया जा सकता है ताकि पार्टियां एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझ सकें। केवल इस सामान्य समझ से ही दृष्टिकोण बदल सकते हैं।

- संवाद क्या करती है?संवाद लोगों
  को एक साथ लाती है जो स्वाभाविक रूप से एक साथ बैठकर महत्वपूर्ण मुद्दों के बारे में बात नहीं करते। यह एक प्रक्रिया है जो सफलतापूर्वक लोगों को संबंधित करती है जो आपसे अलग हैं। उनके मतभेद में लिंग, धर्म, कार्य विभाग, संस्कृति, जातीयता, जाति, यौन अभिविन्यास, या उम्र शामिल हो सकते हैं।
- क्या संवाद समस्याओं का समाधान कर सकता है?
  संवाद सीधे समस्या हल करने की प्रक्रिया नहीं है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो समूह के बीच समझ के पुलों को बनाता है जो गलतफहमी, संघर्ष और तनाव को कम करने में मदद करता है और इसलिए समस्याओं को भंग करने में मदद करता है।
- क्या संकेत है कि एक संवाद प्रक्रिया की आवश्यकता है?
  जब भी किसी संगठन में या कॉलेज परिसर में समस्याओं के मूल कारण होते हैं, तो बातचीत एक उपयोगी प्रक्रिया हो सकती है। ये समस्याएं पारस्परिक रूप से हो सकती हैं, जैसे कि गलतफहमी, तनाव या बढ़ी हुई ध्रुवीकरण और विभाजन या संगठनात्मक, जैसे तनाव का उच्च स्तर।
- समस्याओं को उठने से पहले आप संवाद के अवसरों को कैसे खोज सकते हैं?
  जब भी आपके पास अलग-अलग पृष्ठभूमि वाले लोगों से बातचीत करने का अवसर होता है, प्रभावी बातचीत के लिए समझ की नींव और दिशा निर्देश निर्माण की स्थापना करने में संवाद एक उपयोगी उपकरण हो सकता है। विभिन्न कार्य और प्राथमिकताओं वाले कार्य समूह जिन्हें एक साथ काम करना

है, लेकिन अन्य विभागों की रोज़मर्रा की गतिविधियों के बारे में कुछ पता होने से संवाद प्रक्रिया से लाभ होगा।

- एक संवाद प्रक्रिया से आप क्या उम्मीद कर सकते हैं?
  संवाद अलग-अलग लोगों और समूहों के बीच बेहतर समझ और अधिक रचनात्मक सहयोग को बढ़ावा देता है। संवाद प्रक्रिया गलतफहमी और तनाव को कम करने और भविष्य में अधिक सफल बातचीत सुनिश्चित करने में मदद करेगी।
- बातचीत के लिए मूलभूत आवश्यकताएं क्या हैं?
  दोनों पक्षों को बातचीत में शामिल होने, प्रक्रिया पर भरोसा करने और प्रक्रिया के लिए निरधारित दिशानिर्देशों पर सहमत होने के लिए तैयार होना चाहिए।

3.3.1. संवाद के उद्देश्य

संवाद के उद्देश्य इस प्रकार हैं:

- शांतिपूर्ण संघर्ष परिवर्तन, सामंजस्य और रोकथाम का समर्थन करने के लिए
- विवादित समाज के नागरिकों के बीच बातचीत को बढावा देने
- शांतिपूर्ण संघर्ष परिवर्तन की प्रक्रिया में नागरिक समाज की भागीदारी और सशक्तिकरण को बढ़ावा देना;
- सहभागियों के लिए क्षमता-निर्माण को बढ़ावा देना - विशेषकर महिलाओं, युवाओं और संघर्ष के शिकार – शांतिपूर्ण
  संघर्ष परिवर्तन प्रक्रियाओं में;
- संघर्ष परिवर्तन की दिशा में निर्देशित नागरिक पहल का समर्थन करने के लिए;
- अपने स्वयं के अधिकारों और सुविधा की वकालत में संघर्ष पीड़ितों का समर्थन करना।
- विभिन्न धर्मों के लोगों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध को बढ़ावा देना।
- बहुलवादी समाज की चुनौती को समायोजित करने के लिए आवश्यक

अभ्यास प्रश्न

1. संवाद क्या है?
2. संवाद के चार उद्देश्यों की सूची बनाओ

3.4. संवाद का महत्व

संवाद एक समावेशी प्रक्रिया है। जैसा कि वार्ता/ संवाद परिस्थिति परिवर्तन को दर्शाती है, वार्ता बड़े समाज के एक सूक्ष्म संवेदना को बनाने के लिए विभिन्न आवाज़ों को एक साथ लाती है। दीर्घकालिक बदलाव लाने के लिए, लोगों को इस प्रक्रिया में संयुक्त स्वामित्व की भावना विकसित करना चाहिए और सामान्य चुनौतियों का सामना करने के लिए हिस्सेदार बन, नए दृष्टिकोणों की पहचान करना चाहिए। संवाद सीखने पर जोर देता है, सिर्फ बात पर नहीं। यह प्रक्रिया सिर्फ एक टेबल के आसपास बैठना नहीं है, बल्कि जिस तरह से लोग एक दूसरे के साथ बात करते हैं, सोचते हैं और संवाद करते हैं उन्हें बदलना है। चर्चा के अन्य रूपों के विपरीत, वार्ता के लिए स्वयं प्रतिबिंब, पूछताछ की भावना और व्यक्तिगत परिवर्तन की आवश्यकता होती है।

सम्यक संवाद की भारत में एक दीर्घ परंपरा रही है। जबसे असहिष्णुता हमारे समाज में घर करने लगी है और उदारता की भावना क्षीण होने लगी है, तब से हमारा समाज संवाद से संवादहीनता की ओर बढ़ने लगा है। आज समाज की अनेक समस्याओं का समाधान संवाद में निहित है। हत्या व आत्महत्या आदि अपराधों से बचा जा सकता है, बशर्ते हम परस्पर संवाद की भावना का विकास करें। आज के वैश्विक महानगरीय जीवन में किसी के पास दूसरे के लिए समय नहीं है। सभी अपनी-अपनी दिनचर्या में व्यस्त हैं। अन्य समस्त कार्य्यो के संपादन के लिए समय है, परंतु स्वस्थ संवाद की स्थापना के लिए समयाभाव की स्थिति है। माता-पिता के पास अपने बच्चों से बात करने तक का समय नहीं है।

समाज के हर वर्ग में परस्पर बातचीत की प्रक्रिया सिकुड़ गई है। ऐसे में हम न केवल अपने सुख को बांटने से वंचित रह जाते हैं, बल्कि अपना दुख भी नहीं बांट पाते। सुख बांटने के लिए कोई न भी मिले तो भी कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, परंतु दुख बांटने के लिए यदि कोई न मिले तो जीवन हताशा व अवसादग्रस्तता की ओर बढ़ता है, जो आगे चलकर आत्महत्या जैसे जघन्य अपराध का कारण बन सकता है। स्वस्थ संवाद भ्रमों व संदेहों का निवारण करता है और जीवन को सही दिशा की ओर ले जाता है। संवाद के अभाव से वैचारिक संकीर्णता घर करती जा रही है। बढ़ती वैचारिक संकीर्णता व जड़ता परस्पर लड़ाई-झगड़े का कारण है। संवाद का स्तर गिरने से समाज में अशांति का वातावरण बनता है। प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखने लगता है। यही संदेह आगे चलकर भयंकर विनाश व त्रासदी का कारण बनता है। सामाजिक व पारिवारिक जीवन में विभिन्न व्यक्तियों में परस्पर मतभेद और मनमुटाव एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। ऐसा इसलिए, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में भिन्न-भिन्न विचार होते हैं, परंतु यही मतभेद व मनमुटाव परस्पर संवाद के अभाव के चलते कब बड़ी दरार में परिवर्तित होकर अपूर्णनीय क्षति का कारण बनता है, इसका पता ही नहीं चलता। संबंध बिखर रहे हैं। परिवार टूट रहे हैं। व्यक्ति का जीवन एकाकी और अवसादग्रस्त बनकर नर्क में परिवर्तित हो रहा है। चारों तरफ बेतहाशा दौड़ है, जिसमें कहीं विराम नहीं दिखाई पड़ता।

लोगों को एक संकट के मूल कारण पता करने के लिए तैयार होना चाहिए, न सिर्फ सतह पर लक्षण । उदाहरण के लिए, 1 9 7 9 में कैंप डेविड (Camp David) ने मिस्र और इजरायल के बीच समझौता किया कि सशस्त्र संघर्ष समाप्त हो सकता है, लेकिन विवादास्पद रूप से उन लोगों के बीच के रिश्ते में कोई गुणात्मक "below-the-waterline" अंतर नहीं बनाया। वार्ता एक दूसरे की मानवता को पहचानती है । लोगों को एक दूसरे के प्रति सहानुभूति दिखाने के लिए तैयार रहना चाहिए, अंतर के साथ-साथ सामान्य आधार के क्षेत्रों को पहचानना और परिवर्तन की क्षमता का प्रदर्शन करना चाहिए। इस प्रकार की मानवीय बातचीत को बढ़ावा देने के लिए, एक सम्मानजनक और निष्पक्ष समायोजन या "सुरक्षित स्थान" को प्राथमिकता दी जाती है। वार्ता एक दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य पर जोर देती है। बातचीत के अन्य रूप समस्याओं के मूल कारणों के बजाय लक्षणों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। दीर्घकालिक समाधान खोजने के लिए समय और धैर्य की आवश्यकता है । यह प्रक्रिया बहुत ही सावधानीपूर्वक धीमे गति से किया गया और वृद्धिशील हो सकता है, यह प्रक्रिया दस मिनट से लेकर दस साल तक कहीं भी देर तक ठहरनेवाला एक ऐसा हस्तक्षेप, जो अक्सर संघर्ष के गहरे-निहित कारणों को संबोधित करने या जटिल मुद्दों से पूरी तरह से निपटने के लिए काम नहीं करता हैं।

3.4.1. जन-संपर्क में संवाद

संवाद की बहुत-सी परिभाषाएँ है लेकिन सामान्यतया, संवाद एक ऐसा माध्यम है जिसके तहत किसी व्यक्ति की भावना किसी दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाई जाती है। दूसरे शब्दों में'कोई भी व्यक्त की गई भावना एक- दुसरे को समझ आ जाए' उसे संवाद कहते है। आज के दौर में संवाद और ज्ञान ऐसे दो पंख है जिनके सहारे आसमान की ऊचाईयों को छूआ जा सकता है। वास्तव में जन संबंध (Public Relation), संवाद हुनर से ही घिरा हुआ है, यह जन संबंध की सबसे बड़ीनीव है। व्यक्ति को आकर्षित और प्रेरित करने के लिए यह सबसे बड़ा अस्त्र है। संवाद करते समय अपनी बातो को स्पष्ट रूप से रखने के लिए सही उच्चारण करना, प्रभावशाली शब्दों का उपयोग करना,प्रमुख है। इस हुनर एवं कौशल की मदद से अपने जन-संपर्क को न सिर्फबरकरार रखा जा सकता हैबल्कि बुलंदियों पर पहूँचाया जा सकता है।

संवाद के कई प्रकार होते है, लेकिन जब हम जन संबंध में संवाद की बात करते है तो आमतौर पर चार प्रकार के संवाद का प्रयोग किया जाता है जो कि निम्नलिखित हैं:

1. मौखिक-संवाद
2.सांकेतिक-संवाद
3. लिखित-संवाद
4. वेब-संवाद

i. **मौखिक-संवाद-** जब कोई व्यक्ति अपनी भावनाओ को मौखिक रूप से व्यक्त करता है तो हम उसे मौखिक संवाद कहते है। दैनिक जीवन में सबसे ज्यादा इसका उपयोग किया जाता है।

ii. **सांकेतिक-संवाद-** जब कोई व्यक्ति अपनी भावनाओ को मौखिक रूप से न व्यक्त कर अपने चेहरे के भाव से, शरीर की हाव-भाव से और आँखों से व्यक्त करे तो उसे सांकेतिक संवाद कहा जाता है। कई बार गुप्त संवाद के लिए इसका प्रयोग होता है। यह एक प्रभावशाली संवाद माध्यम है। मगर सांकेतिक संवाद कि अपनी खामियाँ भी है। एक ही इशारा दो व्यक्तियों के लिए अलग-अलग संवाद का सूचक हो सकता है। ऐसी स्थिति में परशानी हो सकती है क्योकि प्रेषक और लक्षित संवादकर्ता के बीच एक भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इसका निराकरण सांकेतिक संवाद से नही हो सकता।

iii. **लिखित-संवाद** -यह एक बहुत ही अहम् भाग है जिसका उपयोग ई-मेल, सुचना-पत्र, रिपोर्ट और पत्र-लेखन में किया जाता है। लिखते समय सही शब्दों का उपयोग करना, मात्राओं का ध्यान में रखते हुए सही वाक्य बनाना और उसका सही-सही उपयोग करना जरुरी है, ताकि लक्षित संवादकर्ता बिना किसी भ्रान्ति के सारा संवाद समझ जाये।

iv. **वेब-संवाद** -आधुनिक दौर में इन्टरनेट संवाद अति आवश्यक है। जन-संपर्क में ज्यादा से जयादा संपर्क बढाने के लिए वेब-संवाद रखना बेहदजरुरी है। इस संवाद की मदद से आप बहुत जल्दी, बहुत ही कम समय में, कहीं से भी, संवाद कर सकते है। अपने व्यवसाय को ज्यादा से जयादा बढाने के लिए यह हूनर आवश्यक है।

3.4.2. संवाद के प्रयोग के लिए आवश्यक तत्व

संवाद सुनिश्चित करने के मुख्य **तत्व,** जिनका उपयोग आप हर समय कर सकते हैं

- **आत्मविश्वास:** आत्मविश्वास का गुण एक सफल वक्ता बनने के लिए बेहद जरुरी है । व्यक्ति के बातचीत के तरीके और हावभाव में आत्मविश्वास की झलक स्पष्ट नजर आती है । आत्मविश्वासी व्यक्ति अपनी बात को जोश और उत्साह के साथ प्रस्तुत करता है , साथ ही उसकी चेहरे पर सच्ची मुस्कान रहती है ।वह अपनी बात को बढ़ा चढ़ा कर प्रस्तुत नहीं करता है।वह जो भी बोलता है पुरे विश्वास के साथ बोलता है । वह कभी दुसरों के दिल को चोट पहुंचाने वाली बात नहीं करता है ।
- **भाषा की सरलता और स्पष्टता का ध्यान रखें:** एक कुशल वक्ता बनने के लिए आपको अपनी विचारों को सीधे, सरल और स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करना आना चाहिए ; नहीं तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है । अपने वक्तव्य (lecture) में जानबुझ कर कठिन और क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं करें ।याद रखें - " विचारो की सरलता और स्पष्टता से ही वाणी सरल और स्पष्ट बनती है ।"
- **अच्छे श्रोता बनें**: एक अच्छे वक्ता की पहचान एक अच्छे श्रोता के रुप में भी होती है । वह न केवल शब्दों को ध्यान से सुनता है , बल्कि उनके अंदर छुपे हुए भावों को भी पढ़ लेता है । अगर उसे कोई बात समझ में नहीं आती है तो बीच में सवाल पुछ कर अपनी शंका दुर कर लेता है । इससे सामने वाले को भी लगता है कि श्रोता उसकी बातों में दिलचस्पी ले रहा है ।

- **दुसरों को भी बोलने का अवसर दें:** अक्सर कुछ लोगों को ज्यादा बोलने की आदत होती है या कहें बिमारी होती है। उन से तंग आकर लोग उनसे दुर भागने लगते है। कुशल वक्ता अपने बात कहने के बाद या पहले ओरों को भी बोलने का अवसर प्रदान करता है और उनकी बातों को ध्यान से सुनता है।बीच में अपनी बात कहने के लिए दुसरों की बात भी नहीं काटता है।
- **बहसबाजी न करें**: बात चीत में तर्क वितर्क का होना अच्छी बात है , इससे किसी विषय का सार्थक हल निकलता है। तर्क वितर्क करने से आपको नई जानकारी भी मिलती है। लेकिन अपनी बात पर अढ़े रहने से बातचीत बहसबाजी का रुप ले लेती है। वस्तुत: बहसबाजी केवल अहंकार की ऐसी लड़ाई है, जिसमें एक दुसरे पर चिल्लाने की होड़ सी लगी होती है। बहसबाजी से कई बार हमारे संबंध भी बिगड़ जाते है।

- **उदार दिमाग रखो:** अपने खुद के सीमित विचारों में ना फंसे, लेकिन उन्हें बदलने या विस्तार करने के लिए तैयार रहें। सोच के दो अलग-अलग तरीकों के संयोजन से एक संकलन हो सकता है, जो दोनों को समृद्ध करता है। एकता जो हम चाहते हैं, एकरूपता नहीं है, बल्कि "विविधता में एकता" या "विविधता का मेल-मिलाप" है। एक समग्र परिप्रेक्ष्य में समानता के लिए सम्मान और प्रशंसा से सम्मानित भाईचारे का भाव समृद्ध होता है। उदाहरण के लिए, यदि मुश्किल भावनाएं उभरने लगें, तो उन्हें संवेदनशीलता से निपटा जाना चाहिए, ऐसा न हो कि वे बातचीत की गतिशीलता को बाधित कर सकें।

William Isaacs (1999) के कार्य के आधार पर, एक व्यक्ति के लिए संवाद का उपयोग करने के लिए आवश्यक पांच तत्व हैं। ये हैं:

1. सम्मान - यह मान लेना कि आप अपने समकक्ष व्यक्तियों के बीच हैं; भले ही आप उनके साथ सहमत हों या नहीं कि वे सीखने की प्रक्रिया के लिए वैध और महत्वपूर्ण हैं।
2. बात सुनो- समझ और सीखने के लिए सुनो, सत्यता **के** लिए नहीं, दूसरों के बारे में अपनी खुद की सुनवाई से अवगत रहें। जवाब या समर्थन करने के लिए मत सुनो, समझने के लिए सुनो।
3. फैसले निलंबित - मान्यताओं और प्रमाणों से अवगत रहें और पक्ष को पकड़ना या उन्हें अलग रखना सीखें उन पर कार्रवाई करने के लिए बाध्यता महसूस किए बिना।
4. स्वयं को मुक्त करो- बकाया राशी की जांच और वकालत। अपने आप को एक कठोर मानसिकता से मुक्त करें। जांच में, स्पष्टीकरण की तलाश और गहरे स्तर की समझ की मांग, कमजोरी का खुलासा नहीं।
5. अपनी तर्क प्रक्रिया को संचारित करें- अपनी मान्यताओं के बारे में बात करें आप कैसे और किस बात पर विश्वास करते हैं। तलाश करे जिन आंकड़ों पर आधारित अनुमान लगाए गए हैं (अपना और दूसरों) कक्षा में सफल सीखने के माहौल को बदलने में ये पांच तत्व आवश्यक हो सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न

3. संवाद का क्या महत्व है?
4. जन-संपर्क में संवाद कैसे किया जा सकता है?
5. संवाद के लिए आवश्यक तत्व क्या है?

3.5 संवाद के माध्यम से शांति

विविध लोगों का सह-अस्तित्व संचार और संवाद की मांग करता है। इसके अलावा यह महत्वपूर्ण है कि समरसता और शांति का परिणाम होना चाहिए। इस प्रकार शांति प्रदान करने में बातचीत की प्रकृति अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। यह ज्ञात है कि जहां कहीं भी संवाद अनुपस्थित या अनुचित तरीके से किया जाता है, उस स्थिति का नतीजा विवाद हुआ है। भगवद्गीता में, दो व्यक्तियों के बीच तीन प्रकार के वार्ताएं वर्णित हैं। पहले एक को अहंकारी कहा जाता है। अहंकार प्रकार में, दोनों व्यक्ति एक-दूसरे के ज्ञान की ज्यादा देखभाल के बिना स्वयं के बारे में घमंड है। अहंकारी प्रकार में, दोनों व्यक्ति स्वयं के बारे में घमंड कर रहे हैं, बिना एक दूसरे के ज्ञान की परवाह किए। दूसरे प्रकार को डराने वाला कहा जाता है जिसमें दोनों व्यक्ति एक-दूसरे को धमकाने की कोशिश कर रहे हैं, एक-दूसरे के ज्ञान की पहचान करे बिना। तीसरा प्रकार समरूपता के रूप में संदर्भित किया जाता है जिसमें दोनों व्यक्ति एक दूसरे के ज्ञान का सम्मान करते हैं और एक-दूसरे से सीखने को तैयार हैं। इसके अलावा, सामंजस्यपूर्ण संवाद में लगे व्यक्ति एक तीसरे जानकार स्रोत से सीखने के लिए उत्सुक और तैयार हैं, इस मामले में जब दोनों व्यक्ति यह महसूस करते हैं कि इन दोनों को इस विषय के बारे में नहीं पता है। तीसरे प्रकार की बातचीत में हम सद्भाव, आपसी सम्मान और समझ का आधार देख सकते हैं, न केवल शांतिपूर्ण वार्ता ही हुई है बल्कि बातचीत में शामिल दोनों व्यक्तियों के लिए भी शांतिपूर्ण अनुभव और बढ़ता ज्ञान है। यह इस कारण से है कि भगवान कृष्ण दिव्य अभिव्यक्तियों के दसवें अध्याय में कहते हैं, कि वे (शांति के रूप में कृष्ण) ऐसे सामंजस्यपूर्ण संवादों में मौजूद हैं।

संवाद के इन तीन मॉडलों को सभी स्तरों पर लागू किया जा सकता है। इस तरह के एक सामंजस्यपूर्ण बातचीत की आवश्यक विशेषताएं यह है कि प्रत्येक पार्टी को एक-दूसरे का आदर करना चाहिए और एक दूसरे से और तीसरे जानकार और भरोसेमंद स्रोत से सीखने के लिए भी विनम्र होना चाहिए। हालांकि, इस तरह के एक सामंजस्यपूर्ण संवाद के लिए दोनों पक्षों से वार्ता की आवश्यकता है ताकि बातचीत के माध्यम से शांति प्राप्त हो सके। यह का एहसास करना महत्वपूर्ण है कि हिंसा, संघर्ष, युद्ध, आतंकवाद, आदि संघर्षों को समाप्त नहीं करेगा और इस का परिणाम शांति भी नहीं होगा। ऐसे हीं, यह केवल शांतिपूर्ण प्रयास है जैसे कि सार्थक, व्यावहारिक और सामंजस्यपूर्ण बातचीत न केवल संघर्ष का समाधान करते हैं बल्कि शांति भी लाती है। संवाद के माध्यम से शांति आज की दुनिया में अधिक प्रासंगिक है क्योंकि कई देश परमाणु शक्तियों में सक्षम हैं, जिसका अर्थ है कि किसी भी संघर्ष से गैर-शांतिपूर्ण विपत्तिपूर्ण परिणाम हो सकते हैं।

हम किसी भी समाज के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक साहित्य में भी देख सकते हैं कि जब भी और जहां भी सामंजस्यपूर्ण संवाद नहीं किए जाते हैं, तब तक संघर्ष और विनाश का नतीजा हुआ है।

3.6. जीवन में संवाद का उपयोग

हम मनुष्यों को ईश्वर ने एक अनमोल उपहार प्रदान किया है- वह है एक-दूसरे से अपनी बात कहने और समझने की कला। समाज में यदि किसी व्यक्ति से संबंध स्थापित करना है, तो संवाद या बातचीत सर्वोत्तम साधन है। दरअसल, जब आप किसी से बातचीत करते हैं तो सामने वाले को यह पता चल जाता है कि आपकी बातों में कितनी गहराई है, कितना तथ्य है और अपनी बातों को आप दूसरों के सामने कैसे प्रस्तुत करते हैं। कहा जा सकता है कि शब्दों के माध्यम से आप अपने व्यक्तित्व को दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। सच तो यही है कि बातचीत एक अद्भुत कला है और इस कला का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिए। इसके अभाव में मनुष्य प्रभावहीन हो जाता है। यहां तक कि उनकी बातों का कोई महत्व ही नहीं रह जाता है। यदि हम सफलता के दृष्टिकोण से भी देखें, तो बातचीत में निपुण होना बेहद जरूरी है। हमें हमेशा इन बातों का ध्यान रखना चाहिए कि जो भी हम बोलें, उन शब्दों का कुछ अर्थ निकले। हमारा बोलना तभी सार्थक हो सकता है जब हमारी बातों का सामने वाले व्यक्ति पर सकारात्मक प्रभाव पड़े। बातचीत करते समय हमें एक और बात ध्यान में रखनी चाहिए। कई बार जब हम किसी से बात करते हैं, तो दूसरे पक्ष को बोलने का अवसर ही नहीं देते हैं। इसलिए जब हम किसी से बात करते हैं, तो उनकी पूरी बात सुन लेनी चाहिए, तभी उसका सार्थक उत्तर देना चाहिए। वास्तव में बातचीत की सुन्दर कला को ही पूरी दुनिया में लोग सराहते हैं। प्रसिध्द लेखक रसेल ने एक पुस्तक लिखी है 'आर्ट ऑफ लाइफ'। इस पुस्तक में उन्होंने जीवन जीने की विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। रसेल के अनुसार, जीवन प्रत्येक व्यक्ति जीता है, लेकिन जो व्यक्ति प्रभाव-शून्य जीवन जीता है अर्थात् जिसका कोई उद्देश्य ही नहीं हो, उसका जीवन बेकार है। हम मनुष्यों के पास विवेकशील दिमाग है और यदि किसी व्यक्ति ने अपने विवेक का सदुपयोग किया है, जो वास्तव में, वही सार्थक जीवन जीता है। इसलिए जीवन जीने की कला बातचीत की शैली, आचार-व्यवहार और विचार का ज्ञान जरूरी है।

जीवन का संवाद अंतर-धार्मिक वार्ता का एक रूप है जो आमतौर पर किसी भी जगह और किसी भी समय होता है। यह विभिन्न धर्मों, लिंग, कार्य विभाग, संस्कृति, जातीयता, जाति, यौन अभिविन्यास, या उम्र के लोगों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध को बढ़ावा देने के लिए एक संवादपरक संबंध है। यह तब शुरू हो जाता है जब किसी व्यक्ति के साथ सामना, रहना और संपर्क किया जाता है और दैनिक जीवन की गतिविधियों में एक साथ भाग लेता है। यह एक सामाजिक संपर्क है जिसमें अंतर-धार्मिक वार्ता में गैर- विशिष्ट वर्ग (non-elite) के प्रतिभागियों की जमीनी स्तर पर भागीदारी का पता चलता है। बहुलवादी समाज की चुनौती को समायोजित करने के लिए अंतर-धार्मिक वार्ता में गैर- विशिष्ट वर्ग (non-elite) की भागीदारी आवश्यक है। इस प्रकार की प्रक्रिया में सामाजिक संपर्क रोज़मर्रा की गतिविधि में शामिल होता है जिसे जीवन की बातचीत के रूप में जाना जाता है। उन क्रियाकलापों को मिलकर जीवन जीने के अनुभवों में मिश्रण-

विश्वास परिवार के साथ, उत्सवों और विवाह समारोहों के साथ-साथ(चलने वाले) व्यवसाय करना अन्य धार्मिक समुदायों के साथ भी देखा जा सकता है । इसका उद्देश्य जीवन की बातचीत की अवधारणा को स्पष्ट करना है और यह कैसे विभिन्न लोगों के बीच सकारात्मक बातचीत को प्रोत्साहित करने पर इस संवाद का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

सक्रिय सुनवाई और कर्कशता को बढ़ाए बिना किसी के स्वयं के परिप्रेक्ष्य को सम्मानपूर्वक व्यक्त करने की क्षमता एक संवाद प्रक्रिया के प्रमुख तत्व हैं । वार्ता में "वास्तविक बातचीत की प्रक्रिया शामिल होती है जिसके माध्यम से मनुष्य एक दूसरे को पर्याप्त गहराई से सुनते हैं, सीखते हैं और बदलते हैं। एक संवाद केवल अपने स्वयं के लिए शुरू नहीं किया जाना चाहिए और जब लोगों को किसी मुद्दे से प्रभावित किया जाना चाहिए और उन्हें विश्वास होना चाहिए कि वे एक साथ आकर स्थिति को बदलने के लिए कुछ कर सकते हैं। इसे दूसरे के अस्तित्व के सभी दलों द्वारा मान्यता के साथ आना चाहिए और अपने संघर्ष साथी के साथ बातचीत में शामिल होने के लिए तैयार रहना चाहिए।

वार्ता को पारस्परिक सत्य-शोधन कार्य के रूप में भी देखा जा सकता है जहां विरोधियों को इस तथ्य के प्रति जागरूक किया जाता है कि सत्य "एक" नहीं है और संवाद प्रक्रिया कई सत्य उत्पन्न कर सकती है। वे इस वास्तविकता को स्वीकार करने के लिए स्वतंत्र हैं । एक संवाद प्रक्रिया सफल होती है, विद्वान जोहन गल्टुंग (Johan Galtung) कहते हैं, जब संवाद में "हमारे कथन के अंत में विस्मृत चिह्न एक प्रश्न चिह्न बन जाता है"। यह हमारी स्थिति में बदलाव का संकेत देता है: हम अपने दृष्टिकोण को बदलने के विचार के लिए स्वतंत्र हो जाते हैं कि हमारे विवाद वाले साथी ने क्या साझा किया है।

संवाद के तत्वों को मध्यस्थता प्रक्रियाओं के लिए केंद्रीय रूप में देखा जाना चाहिए। फिर भी, जबकि पूर्व में एक परिवर्तित रिश्ते की परिकल्पना की जाती है, बाद में किसी प्रकार के समझौते की कोशिश होती है। मध्यस्थता प्रक्रिया में मुख्य लक्ष्य संयुक्त रूप से सहमतियुक्त व्यवस्था के माध्यम से अक्सर भौतिक रुचियों को पूरा करना होता है। संवाद का नतीजा है कि समस्याओं को हल करने के लिए नई मानवीय और राजनीतिक क्षमताएं पैदा करें।

पूरे दुनिया भर के कई क्षेत्रों में, एक संवाद की धारणा है जिसे एक वार्तालाप के रूप में वर्णित किया गया है जहां विवाद पक्ष:

1. अपनी भावनाओं और भय को साझा करें
2. अन्य पार्टी की जरूरतों को सुनने के लिए उदार हैं,
3. वे जो सुनते हैं, उनके द्वारा बदलना चाहते हैं, और
4. आलोचनीय (vulnerable) होने के विचार के लिए उदार हैं

3.7. परिवार में संवाद का उपयोग

आज की सबसे चिंताजनक समस्याओं में से एक है 'परिवार का अपक्षय'। अपनेपन की भावना, भावनात्मक सुरक्षा और पूर्ति और एकता का आनंद सभी कम हो रहे हैं। रिश्ते अस्थिर साबित हो रहे हैं। यहां तक कि माता-पिता के रिश्ते भी निराशाजनक होते जा रहे हैं । घरेलू हिंसा बढ़ रही है। कई लोगों के लिए, भले ही भौतिक जीवन का मतलब बढ़ गया है और बेहतर है, जीवन की गुणवत्ता खराब हो गई है । घर, जो शांति और सुरक्षा का एक उद्यान हो सकता है, संघर्ष और चिंता का क्षेत्र बनता जा रहा है। आज की समझ और अभ्यास के रूप में शिक्षा ने स्थिति को सुधारने में मदद नहीं की है। अगर कुछ भी, प्रतियोगिता की भावना और शिक्षा में सफलता की पूजा को देता है, तो अधिक शिक्षित व्यक्ति को घर पर देखभाल और स्नेही संबंध बनाए रखने के लिए समय की कमी होने की संभावना अधिक होती है।

परिवार के सदस्यों में संवाद महत्वपूर्ण है । संवाद पति-पत्नी के अच्छे संबंधों की कुंजी है और सकारात्मक रूप से बच्चों को पालने में एक प्रमुख कारक है। मनोवैज्ञानिकों और परामर्शदाताओं ने कहा कि बातचीत के बिना, परिवार के सदस्यों के बीच संघर्ष बढ़ता है और इससे मनोवैज्ञानिक और सामाजिक समस्याओं का कारण बनता है जिससे तलाक भी हो सकता है। 2006 के लेबनान के एक आंकड़े बताते हैं कि पति- पत्नी के बीच बातचीत की कमी तलाक का तीसरा मुख्य कारण था। और सूचना दी कि यदि बच्चों के बीच संघर्ष शुरू हो जाए, तो माता-पिता को किसी विशेष राय को लागू करके उन्हें हल नहीं करना चाहिए, लेकिन बच्चों को एक साथ बैठने और बात करने के लिए समझाना चाहिए। बच्चों और माता-पिता के पास घर पर आजादी और सम्मान का माहौल होना चाहिए जिसमें वे अपनी राय व्यक्त कर सकें। पारिवारिक संवाद में तेज आवाज़ में बोलना या ग़लत शब्दों का इस्तेमाल करना शामिल नहीं होना चाहिए। परिवार के सदस्यों को वक्ता को ध्यान से देखना और सुनना चाहिए और जितना संभव हो उतना दखल से बचें। मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि परिवार के सदस्यों को बच्चों से बात करने से बचने और संवादों में भाग लेने से रोकने के लिए दूसरों से बहुत अधिक दोषी ठहराया जाता है । जब प्राधिकरण थोपा जाता है और बच्चों को मारने की धमकी दी जाती है, तो कोई बातचीत नहीं हो सकती । बच्चों को नैतिकता और मूल्यों को पढ़ाना बहुत महत्वपूर्ण है, हालांकि उन्हें **सदैव** व्याख्यान देने से बोरियत पैदा होती है जो बच्चों को अपनी भावनाओं को व्यक्त करने से रोकता है।

शादी और पारिवारिक जीवन में प्रेम का अनुभव, व्यक्त करने और बढ़ावा देने के लिए संवाद आवश्यक है। अंततोगत्वा यह केवल एक दीर्घकालिक और प्रशिक्षुता की मांग का परिणाम हो सकता है । पुरुष और महिला, बच्चा और वयस्क अलग-अलग संवाद करते हैं, वे अलग-अलग भाषा बोलते हैं और वे अलग-अलग तरीकों से कार्य करते हैं। सवाल पूछने और जवाब देने का हमारा तरीका, लहजा जो हम का उपयोग करते हैं, हमारे संवाद शैली प्रमाणित करता हैं । हमें कुछ ऐसे व्यवहारों को विकसित करने की जरूरत है जो प्रेम व्यक्त करते हैं और प्रामाणिक संवाद को बढ़ावा देते हैं।

संवाद में दूसरे व्यक्ति जो कहना चाहते है, सबको धैर्यपूर्वक और ध्यान से सुनने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसके लिए सही समय होने तक बोलने की आत्म-अनुशासन की आवश्यकता होती है। किसी राय या सलाह की पेशकश करने के बजाय, हमें यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि हमने जो कुछ भी

कहना है उसे सुना है। इसका अर्थ है कि एक आंतरिक चुप्पी का विकास करना, जिससे मानसिक या भावनात्मक विकर्षण के बिना दूसरे व्यक्ति की बात करना संभव हो। अक्सर अधिकांश पति - पत्नी को अपनी समस्याओं का समाधान करने की आवश्यकता नहीं होती है, बल्कि जीवनसाथी के दर्द, उनकी निराशा, उनके डर, उनके क्रोध, उनकी आशाओं और उनके सपनों को स्वीकार और सुन भर लेने से समस्याओं का समाधान हो सकता है।

"अपने अज़ीज़ों से बात करने की हमारी काबिलीयत दिन-ब-दिन घटती जा रही है।" यह रिपोर्ट पोलैंड की साप्ताहिक पत्रिका, *पोलिटिका* में छपी थी। अनुमान लगाया गया है कि अमरीका में पति-पत्नी, पूरे दिन में सिर्फ छः मिनट एक-दूसरे से बात करते हैं। कुछ विशेषज्ञ मानते हैं कि अलग होने और तलाक लेने वाले पति-पत्नियों में से आधे लोगों पर यह नौबत इसलिए आयी है, क्योंकि वे एक-दूसरे से बात करने के लिए कम-से-कम समय दे रहे हैं।

माता-पिता और उनके बच्चों के बीच बातचीत के बारे में ऊपर ज़िक्र की गयी रिपोर्ट बताती है कि ज़्यादातर समय "माँ-बाप अपने बच्चों के साथ बातचीत नहीं, बल्कि पूछताछ करते हैं। जैसे, स्कूल में आज क्या-क्या हुआ? तुम्हारे दोस्त कैसे हैं?" यह रिपोर्ट आगे एक सवाल पूछती है: "अगर बातचीत करने का यही तरीका रहा, तो बच्चे अपने माता-पिता को अपने दिल की बात कहना और उन पर भरोसा रखना कैसे सीखेंगे?"

अंत में, हम यह स्वीकार करते हैं कि एक सार्थक वार्ता के लिए हमारे पास कुछ कहने को होना चाहिए। यह केवल एक आंतरिक समृद्धि का नतीजा हो सकता है जो पढ़ने, व्यक्तिगत प्रतिबिंब, प्रार्थना और हमारे आसपास की दुनिया में खुलापन द्वारा पोषित होता है। अन्यथा, बातचीत तुच्छ और उबाऊ हो जाती है। जब न तो जीवनसाथी इस पर काम करते हैं, और अन्य लोगों के साथ **कम** संपर्क **रख**ते है, पारिवारिक जीवन तबाह हो जाता है और वार्ता **शक्तिहीन**।

अभ्यास प्रश्न

6. संवाद से शांति कैसे संभव है?
7. संवाद जीवन में कैसे प्रयोग किया जा सकता है?
8. संवाद कैसे परिवार को प्रभावित करती है?

3.8. स्कूल में संवाद का उपयोग

ब्राजील के शिक्षाविद पाउलो फ्रायर (Paulo Freire), को लोकप्रिय शिक्षा विकसित करने के लिए जाना जाता है, एक प्रकार की शैक्षणिक शिक्षा के रूप में उन्नत बातचीत। Freire बताते हैं कि संवाद संचार छात्रों और शिक्षकों को एक दूसरे से सम्मान और समानता की विशेषता वाले वातावरण में सीखने की अनुमति देता है। संवादात्मक अध्यापन केवल गहन समझ के बारे में नहीं था; यह दुनिया में सकारात्मक

परिवर्तन करने के बारे में भी था । इसे बेहतर बनाने के लिए, कक्षा स्तर पर संवाद को बढ़ावा देना, विद्यार्थियों की आवाज को सुनना और आवश्यक बनाना, संवाद में न केवल संबंधों में सुधार लाने की क्षमता है, बल्कि शिक्षा और उपलब्धि को बढ़ाने की भी क्षमता है, जो नीति निर्माताओं की तलाश है।

शब्द वार्ता का उद्देश्य गहन स्तर के विश्लेषण या स्पष्टीकरण को इंगित करना है उससे जो व्यक्ति द्वारा किए गए पृथक अभिव्यक्तियों के रूप में खुद को लेकर केवल चर्चा की बुनियादी अर्थ के साथ ही वास्ता होता है। जब हम वार्ता के बारे में बात करते हैं, तो हम चर्चा के संयुक्त उद्यम के बारे में बात कर रहे हैं, जो कि संचयी गतिविधि के रूप में है जिसका उद्देश्य किसी प्रयोजन या अन्य पर केंद्रित है। शिक्षा के क्षेत्र में, उद्देश्य जिस में हम अक्सर सबसे अधिक रुचि सीखने के व्यापक अर्थों में रखते हैं ।

जब बच्चा पहली बार स्कूल आता है तो सबसे पहले उसका सामना स्कूल की श्रेणीबद्ध व्यवस्था से होता है जिसे स्कूल ने अनुशासन बनाए रखने के लिए तैयार किया है। यह श्रेणीबद्धता शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों से दूरी बनाने के लिए इस्तेमाल की जाती है ताकि बच्चे शिक्षक के सिर पर न चढ़ें। यह दूरी बनाकर रखना एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। अनुशासन बनाए रखने के नाम पर बार-बार बच्चों को चुप रहने के लिए कहा जाता है। उन्हें विचार-विमर्श से भी रोका जाता है, और चिन्तन हो सके इसकी सम्भावनाएँ भी नहीं बन पाती हैं।

स्कूल प्रशासकों-जैसे 20 वीं सदी के संगठनों के अधिकांश नेताओं ने मुख्य रूप से ऊपर से नीचे आकार में फैसले किए हैं, जिनमें छात्रों, शिक्षकों या सामुदायिक हितधारकों से बहुत कम इनपुट या भागीदारी शामिल है। आज, फोकस नेतृत्व के "वितरण" मॉडल पर है, जो कि एक नेतृत्व की ज़िम्मेदारी बढ़ाता है और कई हितधारकों के रिश्तों और बातचीत में यह बुना जाता है।

"सबसे मूलभूत अर्थ में, वास्तविक सुधार मानव कारक पर निर्भर करता है - बदलने के लिए शिक्षक, छात्र, अभिभावक, और व्यापक समुदाय किस प्रकार से सोचते हैं और जवाब देते हैं ... अंत में, यह मनुष्य के व्यवहार, अपेक्षाओं और आदतों में विकास के बिना स्कूल संचालको के लिए दीर्घकालिक सुधार को बढ़ावा देना लगभग असंभव होगा ।"

• **शिक्षकों के साथ वार्ता**: शिक्षक अक्सर स्कूल के नए स्वरूप के बारे में चर्चाओं से बाहर रखा जाता है। वे इसे उन चीज़ों के रूप में अनुभव करते हैं जो उनके साथ हो रहा है, ऐसा कुछ नहीं जिसमें उनकी एक सीधा हिस्सेदारी हो । लेकिन जब भी शिक्षकों को मेज पर रहने का मौका मिलता है, निर्णय लेने की प्रक्रिया का एक वास्तविक हिस्सा बनने के लिए, वे अक्सर परिवर्तनों के प्रति ग्रहणशील होते हैं और अपने स्वयं के विचार प्रस्तुत करते हैं कि उन्हें विश्वस्तता के साथ कैसे लागू किया जा सकता है

• **छात्रों के साथ वार्ता**: सार्वजनिक शिक्षा में सुधार का काम अक्सर हर स्कूल समुदाय के सबसे महत्वपूर्ण सदस्यों को शामिल करने के लिए उपेक्षा करता है: वह है छात्र । जबकि हमारे छात्रों को मजबूत

स्कूलों से सबसे अधिक लाभ मिलता है, उन्होंने ऐतिहासिक रूप से स्कूल कार्यक्रमों को डिज़ाइन करने या प्रमुख बनाने में कभी महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाई है। जब छात्रों को शिक्षकों के साथ बातचीत करने के लिए आमंत्रित किया जाता है और उनके साथियों के बीच बात करने का अवसर मिलता है, तो वे परिवर्तन के लिए एक सबसे शक्तिशाली आवाज बन सकते हैं।

• **परिवारों के साथ वार्ता:** कई परिवारों को पर्याप्त रूप से सूचित नहीं किया जाता है कि एक जटिल वैश्विक समाज में सफल होने के लिए उनके बच्चों को क्या सीखने की ज़रूरत है, इसलिए जानकारी बांटने और प्रयोजन सिद्ध करने के लिए एक समर्पित स्थान आवश्यक है। और जब सभी परिवार अपने बच्चों को अच्छा करना चाहते हैं, तो उन्हें अपने बच्चों और उन समुदायों के लोगों की ओर से अपनी आवाज़ें उठाने के लिए मार्गदर्शन की जरूरत है।

• **बड़े पैमाने पर समुदाय के साथ वार्ता:** शिक्षा हमारे समुदायों की ताकत और हमारे देश के भविष्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, लेकिन इसके बीच एक बड़ा अंतर रहता है की स्कूल संचालक स्कूलों में सुधार के बारे में किस तरह सोचते हैं और जनता क्या समझती है।

जब हम इन वार्तालापों या संवाद के निर्माण के लिए काम करते हैं, तो हमें यह याद रखना चाहिए कि छात्र-केंद्रित सीखने के लिए मानसिकता में एक महत्वपूर्ण बदलाव की आवश्यकता होती है जो केवल चल रही वार्ता और विचार-विमर्श के माध्यम से ही हो सकती है।

अच्छे संवाद की कुछ बुनियादी शर्तें है, "निर्भीक माहौल, सरल भाषा, एक-दूसरे का सम्मान, सहमति और असहमति के बावजूद एक-दूसरे को सुनने का साहस और सबसे जरूरी संवाद में भाग ले रहें किसी भी लिंग, पद, जाति, धर्म और क्षेत्र के लोगों को अपनी बात कहने का अवसर।"

ये सब बातें एक बेहतर संवाद का माहौल बनाती हैं। अच्छे और बेहतर संवाद के यहीं मायने हमारी कक्षा पर भी लागु होते हैं।

कक्षा में अमूमन शिक्षक का डर होता है कि अगर बच्चों के साथ मित्रतापूर्ण ढंग से पेश आए तो बच्चे हमारी बात नहीं मानेंगे। ऐसे में शिक्षक ही पूरी कक्षा में अपनी बात एकतरफा ढ़ंग से कहता जाता है। बच्चे सिर्फ सुनते हैं। इस एकतरफा बातचीत से अमूमन कक्षा बोझिल हो जाती है। यह डर शिक्षक के अलावा किसी तथाकथित होशियार-पढ़ाकू बच्चे का भी हो सकता है जो बाकी सभी बच्चों से ज्यादा कक्षा में महत्व रखता है। सभी शिक्षक उसी को काबिल बताते हैं।

एक शिक्षक के सामने कक्षा से जुड़ें कई बुनियादी सवाल होते हैं। जैसे:

मेरी कक्षा बेहतर कैसे हो?
कक्षा में सीखने-सिखाने का अच्छा माहौल कैसे बने?

कक्षा रूचिकर कैसे हो?
और कक्षा प्रभावी कैसे हो?

कक्षा से जुड़ें इन सभी सवालों के जवाब में एक बहुत बुनियादी उपाय नजर आता है, वो है, कक्षा में बेहतर संवाद। कक्षा में शिक्षक और बच्चों के बीच आपसी बातचीत का स्तर जितना अच्छा होगा, कक्षा का स्तर भी उतना ही बेहतर होगा। दूसरे अर्थों में हम कह सकते हैं कि कक्षा शिक्षण (क्लासरूम टीचिंग) बेहतर संवाद का ही दूसरा नाम है।

3.8.1. कक्षा में बेहतर संवाद कैसे हो?

अब सवाल उठता है कि आखिर कक्षा में शिक्षक और बच्चों के बीच बेहतर संवाद का क्या मतलब है? कक्षा में बच्चों और शिक्षक के मध्य संवाद या बच्चों के बीच आपसी संवाद या किसी के भी मध्य बेहतर संवाद का मतलब होता है कि संवाद में भाग लेने वाले सभी लोगों और पक्षों को अपनी बात कहने का अवसर मिलें। सभी अपनी बात बगैर किसी डर के कह सकें, क्योंकि संवाद में पद, लिंग, जाति, धर्म या और किसी भी वजह से डर होने पर संवाद का स्तर बहुत ही निम्न कोटी का हो जाता है।

सामने वाला अपनी बात कहना चाहता है मगर किसी ना किसी डर की वजह से वह अपनी बात नहीं कह पाता। इस तरह को कोई भी अवरोध संवाद को एकतरफा और बहुत ही अलोकतांत्रिक बना देता है। बोझिल और नीरस बना देता है। संवाद में ध्यान रखना होता है कि वक्ता हमेशा सरल भाषा का इस्तेमाल करें। सरल भाषा मतलब आम बोलचाल की भाषा जिसे कोई भी आसानी से समझ सकें। वक्ता अपनी बात कहते समय सहज और आत्मविश्वास के साथ रहें।

आपस में बात कर रहें दो लोगों का एक-दूसरे के प्रति भरपूर सम्मान भी होना चाहिए, अगर बात कर रहें दो लोग एक-दूसरे का सम्मान नहीं करेंगे तो बातचीत या संवाद कभी बेहतर हो ही नहीं सकता। सम्मान भी इस स्तर का की अगर सामने वाला कोई ऐसी बात कह रहा है, जो पहले वाले को पसंद नहीं है फिर भी पहले वाला सामने वाले को सुन सके। पसंद ना होने पर भी सुनने की क्षमता होना। घनघोर असहमती होने पर भी सुनने का साहस रखना और बाद में अपनी बात सलीके से रखना और असहमती पर विरोध करना। ताकि संवाद के सिलसिले को आगे बढ़ाया जा सके।

कई बार कक्षा में संवाद का उपयोग तो करते हैं परन्तु उस विषय-विशेष के सन्दर्भ में ही जिसकी चर्चा वहाँ हो रही होती है। यानी हम संवाद को विषय-केन्द्रित करके ही उसका उपयोग करते हैं। पर क्या संवाद एक स्वतंत्र घटक नहीं हो सकता? यह लेख संवाद के उस रूप की चर्चा करता है जो विषय-केन्द्रित न होकर रोज़मर्रा के जीवन के निजी अनुभवों पर केन्द्रित हो और फिर भी कक्षा के भीतर ही चल रहा हो। अक्सर कक्षाओं में संवाद को विषय-केन्द्रित रूप में समझने या देखने का प्रयास किया जाता है। संवाद गणित की कक्षा में हो, इतिहास की कक्षा में या किसी अन्य विषय की कक्षा में, वह इस समझ पर आधारित होता है कि कक्षा में संवाद बच्चों की समझ को आकार देने और विषय में उनकी रुचि बनाए रखने में सहायक होगा, और यह सही भी है।

शिक्षक विद्यार्थी के बीच संबंध गरिमापूर्ण होने के साथ-साथ आत्मीयता से भरा होना चाहिए। शिक्षक व विद्यार्थी के बीच संबंध तभी आत्मीयता से भरपूर होगा जब दोनों के बीच संबंध भरोसे पर आधारित हो। शिक्षक को विद्यार्थियों के साथ इस कदर व्यवहार करना चाहिए कि विद्यार्थी अपने शिक्षक पर उतना भरोसा करें, जितना वे अपने माता पिता पर करते हैं। इसके लिए संवाद बहुत बड़ी चीज है। यदि शिक्षक अपनी पूरी प्रतिभा का इस्तेमाल छात्रों की उन्नति के लिए करेंगे तो इसका फल अवश्य मिलेगा। कई बार विद्यार्थी सिर्फ भय के कारण पढ़ाई से जुड़ी शंकाओं को अपने शिक्षक के सामने व्यक्त नहीं कर पाते। विद्यार्थियों के मन में छिपे इस भय को दूर करने की जिम्मेदारी शिक्षकों की है। इसके लिए दोनों के बीच खुला संवाद होना जरूरी है।

3.9. साथी समूह / समकक्षों में संवाद का उपयोग

साथी समूह विद्यालय में एक प्रभावशाली सामाजिक वातावरण प्रदान करते हैं। जिसमें समूहीकृत मानकों को, समसामयिक प्रक्रियाओं के माध्यम से विकसित और लागू किया जाता है, जो समानता को बढ़ावा देते हैं। साथी समूह के सदस्य एक समूह के रूप में सहमति देते हुये आपस में व्यपाक रूप में जुड़ते हैं। साथी समूह के साथ संवाद निम्नलिखित तरीकों से मदद करता है:

1. **अविलंब समाधान-** सहकर्मी समूह अपने सदस्यों को समय पर बेहतर काम करने के लिए प्रेरित करने में मदद करता है। क्योंकि समूह नियमित रुप से मिलते हैं। अकेले होने पर आप अपना काम स्थगित कर सकते है या समय पर करने में टालम टोल करते हैं तो आपके लिए एक समूह संवाद अच्छा समाधान हो सकता है।
2. **तेजी से जानें-** संवाद समूहों में सदस्य आम तौर पर अकेले काम करने वालो की तुलना में तेजी से सीख सकते हैं। क्योंकि यहाँ आप अपने साथियों की सोच से परिचित होते हैं, जब उन्हें कुछ समझने में कठिनाई होती है तब उनकी मदद भी कर सकते हैं, ।
3. **नए दृष्टिकोण का विकास** - यदि आप अपने आप से अध्ययन करते हैं, तो आप हमेशा अपनी सामग्री को उसी परिप्रेक्ष्य से देखेंगे?? इन नए दृष्टिकोणों को खोजने के लिए समूह सही स्थान हैं यहाँ आप संवाद के माध्यम से एक ही विचार पर विभिन्न दृष्टिकोण की एक विस्तृत विविधता का विचार प्राप्त कर सकते हैं। यह आपको अपनी स्थिति के बारे में अधिक सोचने के लिए मजबूर करेगा और आपको सीखने में सहायता करने में महत्वपूर्ण सोच कौशल को भी विकसित करेगा।
4. **नए कौशल का विकास -** समूह एक विषय पर नए परिप्रेक्ष्य में सीखने के अलावा, नए अध्ययन तकनीक भी प्रदान करता हैं। संवाद के माध्यम से प्रत्येक सदस्य अपने स्वयं के विशेष कौशल को विकसित और सांझा करता है। हालांकि आपका अपना तरीका उत्कृष्ट हो सकता है, फिर भी संवाद समूह अभी भी आपकी सीखने की क्षमताओं को बेहतर बनाने की दिशा में प्रभावी कार्य कर सकता हैं।
5. **एकरसता** को **तोड़ना-** विशेष रूप से लंबे समय तक कार्य करना एक नीरस गतिविधि बन सकता है, हालांकि एक संवाद समूह में शामिल होने से आप इस एकरसता को तोड़ सकते हैं?? यदि

आपको कुछ कार्य विशेष रूप से थकाऊ लगता है, तो इसे अधिक मनोरंजक बनाने के लिए एक संवाद समूह में शामिल होने पर विचार करें।

6. **वास्तविक दुनिया के लिए अभ्यास-** एक समकक्ष समूह में अपने साथियों के साथ संवाद करना आपको अपने के कौशल को सुधारने के लिए एक शानदार अवसर प्रदान करता है। यदि आप अपने वास्तविक दुनिया में एक कठिन परिस्थिति में आते हैं, तो आप समकक्ष समूह से प्राप्त अनुभव के आधार पर हल करने का प्रयास कर सकते हैं।
7. **तनाव से छुटकारा पाने के लिए**- साथी समूह / समकक्षों में संवाद के माध्यम से आप अपने तनाव से छुटकारा पाने का प्रयास कर सकते हैं। क्योंकि यहाँ आप अपने साथियों से अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को साझा कर संतोषजनक समाधान प्राप्त कर सकते हैं।
8. **अवकाश के समय का सदुपयोग-** साथी समूह / समकक्षों में संवाद आपको अपने अवकाश के समय का सदुपयोग अच्छे ढंग से करने का काम अवसर प्रदान करता है। यहां आप खेल, मनोरंजन, स्वस्थ बातचीत, और खुशी से समय व्यतित सकते हैं।
9. **एक दूसरे को समझने के लिए-** संवाद एक दूसरे को जानने के लिए एक प्रभावी उपकरण है । इसके से माध्यम आप अपने साथियों की शक्ति और कमजोरियों को जान सकते हैं।

निष्कर्ष

यह ज्ञात है कि सभी प्रयासों को व्यक्तियों के साथ शुरू करने और समूह में विस्तार की आवश्यकता है और इसी तरह व्यक्तियों के रूप में जब हम दूसरों के साथ हमारी बातचीत में बातचीत के माध्यम से शांति प्राप्त करने का अभ्यास करते हैं, तो उस शांति प्रयास का विस्तार होता है, इसके अलावा अगर विभिन्न स्तरों जैसे नेताओं, संगठनों, राज्यों, समाज, देश आदि के विभिन्न प्रकार के संवादों की प्रकृति को समझते हैं और उन्हें लागू करते हैं तो शांति का परिणाम होगा। एक व्यक्ति के स्तर पर एक शांतिपूर्ण वार्ता दृष्टिकोण का अभ्यास कर सकता है, जैसा कि भगवान कृष्ण द्वारा अध्याय 17 (15 वीं शताब्दी) के अनुसार सलाह देता है, जिसमें उन्होंने कहा है, "चोट पहुँचाने के बिना, दूसरों का अपमान करने से किसी को सच्चाई से बात करना चाहिए और शास्त्रों का अध्ययन और अभ्यास करना चाहिए (जैसे कि वेद) "यह समझा जाता है कि बातचीत के माध्यम से शांति, शांतिपूर्ण दृष्टिकोण, शांतिपूर्ण व्यवहार, शांतिपूर्ण बातचीत आदि को संदर्भित करता है।

वैदिक हिंदू शास्त्रों ने बार-बार जोर दिया और चेतावनी दी कि मानव जीवन अद्वितीय और विशेष है क्योंकि यह केवल इंसान है जो न केवल शांति के साथ ही अपने आस-पास की दुनिया में भी शांति ला सकता है। बेशक, अगर हम शांति और सामंजस्य लाने में हमारी भूमिका को अनदेखा करते हैं तो वैकल्पिक मार्ग संघर्ष, युद्ध और दुख है। आइए हम अपने प्रयासों को अपनाते हैं और बातचीत के माध्यम से अलग-अलग स्तरों जैसे कि व्यक्तिगत, परिवार, सहकर्मी, समुदाय, संगठन, समाज, राज्य, देश और दुनिया में अनन्त शांति के लिए उपकरण बनाते हैं।

अभ्यास प्रश्न

9. स्कूल विकास के लिए संवाद प्रक्रिया में किसको शामिल किया जा सकता है?
10. कक्षा में बेहतर संवाद कैसे हो सकता है?

3.10. सारांश

- शांति की संस्कृति या पर्यावरण का निर्माण, बहुभाषी संवाद के जरिए समाज के सदस्यों के बीच एक चेतना पैदा करने के लिए बातचीत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
- **संवाद** दो या दो से अधिक लोगों के बीच एक लिखित या बोलनेवाली बातचीत के आदान-प्रदान है, और एक ऐसी साहित्यिक और नाटकीय रूप है जो इस तरह के विनिमय को दर्शाता है। संवाद एक संचार उपकरण है जिससे दलों को एक आम तरीके से एक समस्या की संरचना **करने** की अनुमति है।
- आमतौर पर चार प्रकार के संवाद का प्रयोग किया जाता है जो कि हैं:1. मौखिक-संवाद, 2.सांकेतिक-संवाद, 3. लिखित-संवाद, तथा 4. वेब-संवाद।
- **संवाद** सुनिश्चित करने के मुख्य **तत्व** हैं: आत्मविश्वास, भाषा की सरलता और स्पष्टता का ध्यान रखें, अच्छे श्रोता बनें, दुसरों को भी बोलने का अवसर दें, बहसबाजी न करें तथा उदार दिमाग रखो।
- विविध लोगों का सह-अस्तित्व संचार और संवाद की मांग करता है। इसके अलावा यह महत्वपूर्ण है कि उनमे समरसता और शांति का परिणाम होना चाहिए। इस प्रकार शांति प्रदान करने में बातचीत की प्रकृति अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। जहां कहीं भी संवाद अनुपस्थित या अनुचित तरीके से किया जाता है, उस स्थिति का नतीजा विवाद होता है।
- जीवन जीने की कला, बातचीत की शैली, आचार-व्यवहार और विचार का ज्ञान जरूरी है।
- परिवार के सदस्यों में संवाद महत्वपूर्ण है। संवाद पति-पत्नी के अच्च्छे संबंधों की कुंजी है और सकारात्मक रूप से बच्चों को पालने में एक प्रमुख कारक है।
- अच्छे संवाद की कुछ बुनियादी शर्तें है, "निर्भीक माहौल, सरल भाषा, एक-दूसरे का सम्मान, सहमति और असहमति के बावजूद एक-दूसरे को सुनने का साहस और सबसे जरूरी संवाद में भाग ले रहें किसी भी लिंग, पद, जाति, धर्म और क्षेत्र के लोगों को अपनी बात कहने का अवसर।"
- कक्षा में शिक्षक और बच्चों के बीच आपसी बातचीत का स्तर जितना अच्छा होगा, कक्षा का स्तर भी उतना ही बेहतर होगा। दूसरे अर्थों में हम कह सकते हैं कि कक्षा शिक्षण (क्लासरूम टीचिंग) बेहतर संवाद का ही दूसरा नाम है।

- साथी समूह विद्यालय में एक प्रभावशाली सामाजिक वातावरण प्रदान करते हैं। जिसमें समूहीकृत मानकों को, समसामयिक प्रक्रियाओं के माध्यम से विकसित और लागू किया जाता है, जो समानता को बढ़ावा देते हैं।

3.11. शब्दावली

1. **संवाद:** वार्ता, बातचीत, संभाषण, आलाप, वार्तालाप,
2. **अनुप्रयोग:** प्रयोग, उपयोग, इस्तेमाल, अमल

3.12अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. **संवाद** दो या दो से अधिक लोगों के बीच एक लिखित या बोलनेवाली बातचीत के आदान-प्रदान है, और एक ऐसी साहित्यिक और नाटकीय रूप है जो इस तरह के विनिमय को दर्शाता है।

2. संवाद के उद्देश्य इस प्रकार हैं:

   a) शांतिपूर्ण संघर्ष परिवर्तन, सामंजस्य और रोकथाम का समर्थन करने के लिए
   b) विवादित समाज के नागरिकों के बीच बातचीत को बढावा देने
   c) शांतिपूर्ण संघर्ष परिवर्तन की प्रक्रिया में नागरिक समाज की भागीदारी और सशक्तिकरण को बढ़ावा देना;
   d) सहभागियों के लिए क्षमता-निर्माण को बढ़ावा देना - विशेषकर महिलाओं, युवाओं और संघर्ष के शिकार – शांतिपूर्ण संघर्ष परिवर्तन प्रक्रियाओं में;

3. संवाद एक समावेशी प्रक्रिया है। जैसा कि वार्ता/ संवाद परिस्थिति परिवर्तन को दर्शाती है, वार्ता बड़े समाज के एक सूक्ष्म संवेदना को बनाने के लिए विभिन्न आवाज़ों को एक साथ लाती है। दीर्घकालिक बदलाव लाने के लिए, लोगों को इस प्रक्रिया में संयुक्त स्वामित्व की भावना विकसित करना चाहिए और सामान्य चुनौतियों का सामना करने के लिए हिस्सेदार बन, नए दृष्टिकोणों की पहचान करना चाहिए।

4. संवाद के कई प्रकार होते है, लेकिन जब हम जन संबंध में संवाद की बात करते है तो आमतौर पर चार प्रकार के संवाद का प्रयोग किया जाता है जो कि निम्नलिखित हैं:
   i. मौखिक-संवाद
   ii. 2सांकेतिक-संवाद
   iii. लिखित-संवाद
   iv. वेब-संवाद

5. William Isaacs (1999) के आधार पर, एक व्यक्ति के लिए संवाद का उपयोग करने के लिए आवश्यक पांच तत्व हैं। ये हैं:
   i. सम्मान
   ii. बात सुनो
   iii. फैसले निलंबित
   iv. स्वयं को मुक्त करो
   v. अपनी तर्क प्रक्रिया को संचारित करें
6. संवाद के माध्यम से शांति आज की दुनिया में अधिक प्रासंगिक है क्योंकि जहां कहीं भी संवाद अनुपस्थित या अनुचित तरीके से किया जाता है, उस स्थिति का नतीजा विवाद हुआ है। सार्थक, व्यावहारिक और सामंजस्यपूर्ण बातचीत न केवल संघर्ष का समाधान करते हैं बल्कि शांति भी लाती है।
7. समाज में यदि किसी व्यक्ति से संबंध स्थापित करना है, तो संवाद या बातचीत सर्वोत्तम साधन है। दरअसल, जब आप किसी से बातचीत करते हैं तो सामने वाले को यह पता चल जाता है कि आपकी बातों में कितनी गहराई है, कितना तथ्य है और अपनी बातों को आप दूसरों के सामने कैसे प्रस्तुत करते हैं। हमें हमेशा इन बातों का ध्यान रखना चाहिए कि जो भी हम बोलें, उन शब्दों का कुछ अर्थ निकले। हमारा बोलना तभी सार्थक हो सकता है जब हमारी बातों का सामने वाले व्यक्ति पर सकारात्मक प्रभाव पड़े।
8. शादी और पारिवारिक जीवन में प्रेम का अनुभव, व्यक्त करने और बढ़ावा देने के लिए संवाद आवश्यक है ।
9. छात्रों,शिक्षकों, परिवार या सामुदायिक हितधारकों
10. कक्षा में बच्चों और शिक्षक के मध्य संवाद या बच्चों के बीच आपसी संवाद या किसी के भी मध्य बेहतर संवाद का मतलब होता है कि संवाद में भाग लेने वाले सभी लोगों और पक्षों को अपनी बात कहने का अवसर मिलें। सभी अपनी बात बगैर किसी डर के कह सकें, क्योंकि संवाद में पद, लिंग, जाति, धर्म या और किसी भी वजह से डर होने पर संवाद का स्तर बहुत ही निम्न कोटी का हो जाता है।

3.13 संदर्भ

1. http://www.undp.org/content/dam/undp/library/crisis%20prevention/dialogue_conflict.pdf
2. http://www.unesco.org/new/en/communication-and-information/freedom-of-expression/dialogue-for-peace/
3. http://www.transconflict.com/gcct/gcct-members/europe/the-caucasus/armenia/peace-dialogue/

4. http://www.undp.org/content/dam/undp/library/crisis%20prevention/dialogue_conflict.pdf
5. (29 सितंबर के यूएनए), कुवैत Al-Awadh हानी स्रोत: www.kuna.net
6. http://www.jagran.com/editorial/apnibaat-importance-of-dialogue-11368919.html#sthash.wKlT5LnS.dpuf
7. https://educationmirror.org/2016/02/ शिक्षा -विमर्श: "बेहतर संव/
8. https://educationmirror.org/2016/02/28/how-a-classroom-interaction-should-take-place-in-school/
9. https://www.linkedin.com/pulse जन-संपर्क-में-संवाद-का-महत्व -pr-professionals
10. http://www.jagran.com/delhi/new-delhi-city-11605465.html#sthash.ngRrJJOx.dpuf
11. http://aatmavikas.blogspot.in/2013/06/blog-post.html
12. http://www.hindisamay.com/contentDetail.aspx?id=1181&pageno=1
13. http://www.deshbandhu.co.in/miscllenious/बोलने-की-अनमोल-कला-37386-2
14. http://www.osho.com/hi/read/osho/osho-on-topics/topic-707

3.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय एकीकरण में बातचीत कैसे उपयोगी है? उपयुक्त उदाहरणों के साथ समझाएं।
2. जीवन, परिवार, स्कूल और साथियों के समूह में बातचीत की भूमिका समझाओ।
3. आप कक्षा में संवाद के माध्यम से शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया कैसे संचालित कर सकते हैं? उपयुक्त उदाहरणों के साथ समझाएं।

खण्ड 3

Block 3

इकाई 2 - शांति के बारे में प्राचीन भारतीय विचार (बौद्ध धर्म और जैन धर्म)

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 विश्व शांति के लिए विश्व के धर्म
2.4 बौद्ध धर्म
2.4.1 गौतम बुद्ध का परिचय
2.4.2 गौतम बुद्ध के उपदेश
2.5 शांति के संबंध में गौतम बुद्ध के विचार
2.5.1 बौद्ध धर्म की शिक्षा की सार्वभौमिकता शांति के संदर्भ में
2.6 जैन धर्म
2.6.1 भगवान महावीर का परिचय
2.6.2 भगवान महावीर शिक्षा
2.7 शांति के संबंध में जैन धर्म के विचार
2.7.1 जैन धर्म की प्रासंगिकता / सार्वभौमिकता शांति के संदर्भ में
2.8 सारांश
2.9 शब्दावली
2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

वर्तमान में असहिष्णुता, कट्टरवाद, विवाद का समाज में बोलबाला हो गया है जो विकास और कल्याणकारी कार्यो में बाधा उत्पन्न कर रहा है। उन्होंने कहा कि वैश्विक राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तर पर बढ़ती हुई हिंसा के चलते राष्ट्रीय स्कूली शिक्षा पाठ्यचर्या के ढाँचे में शांति शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिए जाने की जरूरत है। 'अहिंसा के सिद्धांत का सबसे पहले गंभीरता से सुव्यवस्थित रूप से निर्माण व

उसका उचित व मुख्य रूप से उपदेश जैन तीर्थंकरों द्वारा और खास तौर पर चौबीसवें अंतिम तीर्थंकर महावीर द्वारा हुआ और फिर महात्मा बुद्ध द्वारा।' – **चीनी विद्वान डॉ. तानयुन शा**

शास्त्रीय संस्कृत शंत में शांति के अर्थ में निकटतम शब्द है, जो आमतौर पर शांति, आनंद, शाश्वत आराम, और खुशी की व्याख्या करते हैं, लेकिन आमतौर पर यह शब्द विनाश, मृत्यु के संबंध में, और विद्रोह (अलग, अलगाव, शत्रुता) के विपरीत है। यहां शांति "अलगाव की अनुपस्थिति" (विगराभास्वा) या "संघर्ष या युद्ध की अनुपस्थिति" (यद्धभव) के विपरीत है। भारत की भूमि प्राचीन संस्कृति और सभ्यता, शांति के संदर्भ में एक व्यापक, असाधारण और अनोखी जगह रखती है। हजारों साल पहले इस देश द्वारा व्यक्त शांति का संदेश पूरे विश्व पर गहरा असर हुआ था। इस प्रभाव का मुख्य कारण यह है कि शांति के प्रति दृष्टिकोण जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त किए गए ज्ञान के माध्यम से प्राप्त किए गए हैं और वास्तव में वास्तविक अनुभव है।

शांति के प्रति भारतीय दृष्टिकोण व्यक्तिगत स्तर पर शुरू होता है। इसलिए, यह सामूहिक, सामाजिक और बाद में राष्ट्रीय स्तर पर चलता है इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि भारतीय दर्शन दर्शाता है कि मनुष्य को अपने कर्मों के अनुसार पुरस्कृत या दंडित किया जाता है यह शांति के दृष्टिकोण से असाधारण कुछ है, और यह इसलिए है क्योंकि शांति स्थापित करने के लिए व्यक्तियों द्वारा किए गए प्रयास अत्यंत महत्वपूर्ण हैं दूसरे शब्दों में व्यक्तिगत प्रयास शांति के निर्माण का निर्माण करने के लिए नींव का काम करते हैं। हम सभी जानते हैं कि जब लोग एक साथ मिलते हैं तो समाज या एक देश का निर्माण होता है, इस प्रकार समाज या समाज की वृद्धि और गिरावट निर्भर करती है। वर्तमान इकाई शांति के बारे में बौद्ध धर्म और जैन धर्म के विचारों से संबंधित है। इस इकाई का उद्देश्य शांति के प्रश्न पर बौद्ध धर्म और जैन धर्म के दृष्टिकोण पेश करना है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई में पढने के बाद, आप सक्षम होंगे:

1. शांति के बारे में बौद्ध धर्म के विचारों को वर्णन करने।
2. शांति के बारे में जैन धर्म के विचारों का वर्णन करने।
3. शांति के बारे में अपने विचारों को विकसित करने।
4. शांति के संबंध में बौद्ध धर्म और जैन धर्म के विचारों के बीच अंतर समझने।
5. बौद्ध धर्म और जैन धर्म के विचारों में समानता को समझने।

2.3 विश्व शांति के लिए विश्व के धर्म

विश्व के सभी प्रमुख धर्म-बौद्ध, ईसाई, कन्फूशिवाद, हिंदू, इस्लाम, जैन, यहूदी, सिक्ख, ताओवाद, पारसी- के प्रेम को लेकर आदर्श एक से हैं, आध्यात्मिक अभ्यास से मानवता का भला करने का समान लक्ष्य,

और धर्म का पालन करने वालों को एक अच्छा मानव बनाने का प्रभाव भी एक सा ही है। सभी धर्म चित्त, काय और वाक को परिष्कृत करने के लिए नैतिक सिद्धांतों की शिक्षा देते हैं। सभी हमें झूठ न बोलने, चोरी न करने की या दूसरों के प्राण न लेने आदि की शिक्षा देते हैं। मानवता के महान शिक्षकों द्वारा दिए गए सभी नैतिक उपदेशों का एक समान लक्ष्य है निस्वार्थ भाव। महान शिक्षक अपने अनुयायियों को अज्ञान के कारण नकारात्मक कार्यों के मार्ग पर चलने से रोककर उन्हें अच्छाई के मार्ग से परिचय करना चाहते थे। सभी धर्म स्वार्थ और अन्य बुराइयों की जड़ अनुशासनहीन चित्त पर नियंत्रण की आवश्यकता को लेकर सहमत हैं और प्रत्येक एक मार्ग की शिक्षा देता है जो ऐसे आध्यात्मिक अवस्था की ओर ले जाता है, जो शांतिपूर्ण, अनुशासित, नैतिक और प्रज्ञावान होता है। इस अर्थ में मेरा मानना है कि सभी धर्मों का मूलत: एक ही संदेश है। रुढ़ियों में अंतर का कारण समय, परिस्थिति और साथ ही सांस्कृतिक प्रभाव हो सकते हैं, वास्तव में जब हम धर्म के गूढ़ पक्ष की चर्चा करते हैं तो बौद्धिक चर्चा का कोई अंत नहीं है। पर अपने नित्य प्रति के जीवन में व्यावहारिकता को लेकर छोटे-छोटे अंतरों पर तर्क करने के स्थान पर सभी धर्मों की अच्छी शिक्षाओं के साझा विचार को अपनाना कहीं अधिक लाभकारी है।

कई विभिन्न धर्म हैं जो मानवता को आराम और सुख देते हैं ठीक उसी तरह जैसे विभिन्न रोगों के लिए विशिष्ट उपचार उपलब्ध हैं। क्योंकि सभी धर्म अपने ढंग से सत्वों को दुख को दूर कर सुख प्राप्त करना सिखाते हैं। और यद्यपि हम धार्मिक सच्चाइयों की विशिष्ट विवेचना को अपनाने के लिए कारण खोज सकते हैं, परन्तु एकता के और बड़े कारण हैं जो मानवीय हृदय से उत्पन्न होते हैं। एक बड़ा कारण है। प्रत्येक धर्म अपने ढंग से मनुष्य की कठिनाइयों को कम करने का प्रयास करता है और विश्व सभ्यता में योगदान देता है।

मानवीय अनुभव और विश्व सभ्यता को समृद्ध बनाने के लिए विश्व के सभी विभिन्न धर्मों की आवश्यकता है। हमारे मानवीय मस्तिष्क की विभिन्न क्षमताओं और स्वभाव के कारण शांति और सुख प्राप्त करने के लिए अलग उपायों की आवश्यकता होती है। यह भोजन की तरह है। कुछ लोगों को ईसाई धर्म ज्यादा आकर्षित करता है, तो अन्य कईयों को बौद्ध, क्योंकि इसमें कोई सृजनकर्ता नहीं है और सब कुछ आपके अपने कर्मों पर निर्भर करता है। हम इसी तरह से दूसरे धर्मों के पक्ष में भी तर्क दे सकते हैं। इसलिए यह बात तो स्पष्ट है, मानवता को जीवन शैलियों से तालमेल बिठाने के लिए, विभिन्न आध्यात्मिक आवश्यकताओं के लिए और विरासत में मिली हर एक व्यक्ति की राष्ट्रीय परम्परा के लिए विश्व के सभी धर्मों की आवश्यकता है।

इसी दृष्टिकोण से मैं विश्व के विभिन्न भागों में धर्मों के बीच किए जा रहे बेहतर तरीके से समझने के प्रयासों का स्वागत करता हूँ। आज तो विशिष्ट रूप से इसकी तुरन्त आवश्यकता है। यदि सभी धर्म मानवीयता को और अच्छा करने को अपना मुख्य चिंतन बना लें तो वे विश्व शांति के लिए सरलता और सद्भाव से कार्य कर सकते हैं। अंतर्धर्मीय समझ सभी धर्मों को एक साथ कार्य करने की आवश्यक एकता लाएगी। परन्तु यद्यपि यह एक महत्त्वपूर्ण कदम है, पर हमें याद रखना चाहिए कि इसका कोई तत्कालीन और सरल समाधान नहीं है। विभिन्न धर्मों के बीच जो सैद्धांतिक मतभेद हैं हम उन्हें अनदेखा नहीं कर सकते और न ही हम वर्तमान धर्मों के स्थान पर किसी नये सार्वभौमिक विश्वास को ही रख सकते हैं। प्रत्येक धर्म का

अपना कुछ विशिष्ट योगदान होता है और प्रत्येक अपने ढंग से किसी विशिष्ट समुदाय के लोगों के लिए जैसा वे जीवन को समझते हैं, उपयुक्त है। विश्व को सभी धर्मों की जरूरत है।

उन धार्मिक अभ्यासियों के समक्ष, जो विश्व शांति को लेकर चिंतित हैं, आज दो प्राथमिक कार्य हैं। पहला, हमें विभिन्न धर्मों के बीच बेहतर समझ को विकसित करना होगा, ताकि सभी धर्मों के बीच कार्य करने के अनुकूल एकता स्थापित की जा सके। यह एक-दूसरे के मतों का सम्मान करते हुए और मानवता के कल्याण की हमारी समान सोच पर बल देकर कुछ अशों में प्राप्त की जा सकती है। दूसरा, हमें मूलभूत आध्यात्मिक मूल्यों पर एक ऐसी व्यावहारिक आम सहमति बनानी होगी, जो हर एक मनुष्य के हृदय को स्पर्श करे और साधारण मानवीय सुख को बढ़ावा दे। इसका अर्थ यह है कि हमें सभी विश्व धर्मों के समान गुणों पर बल देना चाहिए - मानवीय आदर्श। ये दो चरण हमें व्यक्तिगत तौर पर और एक साथ मिलकर विश्व शांति के लिए आवश्यक आध्यात्मिक परिस्थितियाँ तैयार करने के कार्य में सहायक होंगे।
हम विभिन्न धर्म के अभ्यासी मिलकर विश्व शांति के लिए काम कर सकते हैं जब हम विभिन्न धर्मों को सहृदयता के विकास - दूसरों के प्रति प्यार और सम्मान, समुदाय का एक सच्चा भाव के आवश्यक उपकरणों के रूप में देखते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है धर्म के उद्देश्य की ओर देखना, न कि उसके धर्मशास्त्र और तत्व मीमांसा के विस्तृत रूप की ओर, जो कोरी बौद्धिकता की ओर ले जाता है। मेरा मानना है कि विश्व के सभी प्रमुख धर्म विश्व शांति में योगदान दे सकते हैं और मानवता के कल्याण के लिए मिलजुलकर कार्य कर सकते हैं, यदि हम सूक्ष्म आध्यात्मिक विभिन्नताओं को परे रख दें, जो कि वास्तव में प्रत्येक धर्म का आंतरिक मामला है।
वैश्विक स्तर पर हुई आधुनिकता के कारण आई प्रगतिशील धर्मनिरपेक्षता और विश्व के कुछ भागों में आध्यात्मिक मूल्यों को नष्ट करने की सभी व्यवस्थित प्रयासों के बावजूद मानव जाति का एक बड़ा भाग किसी न किसी धर्म को मानता ही है। धर्म में अटूट विश्वास, जो अधार्मिक राजनीतिक प्रणाली में भी स्पष्ट है, स्पष्ट रूप से धर्म की शक्ति को प्रदर्शित करता है। इस आध्यात्मिक ऊर्जा और शक्ति का उद्देश्यपूर्ण उपयोग विश्व शांति के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ लाने में हो सकता है। इस संबंध में विश्व के सभी धर्मगुरु और मानवतावादियों की विशिष्ट भूमिका है। हम विश्व शांति को प्राप्त कर पाएँगे अथवा नहीं, पर हमारे पास उस दिशा में काम करते रहने के अलावा कोई और विकल्प नहीं है।

2.4 बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म भारत की श्रमण परम्परा से निकला धर्म और दर्शन है। इसके प्रस्थापक महात्मा बुद्ध शाक्यमुनि (गौतम बुद्ध) थे। ईसाई और इस्लाम धर्म से पहले बौद्ध धर्म की उत्पत्ति हुई थी। दोनों धर्म के बाद यह दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा धर्म है । इस धर्म को मानने वाले ज्यादातर चीन, जापान, कोरिया, थाईलैंड, कंबोडिया, श्रीलंका, नेपाल, भूटान और भारत जैसे कई देशों में रहते हैं। आज, हालाँकि बौद्ध धर्म में तीन सम्प्रदाय हैं: हीनयान या थेरवाद, महायान और वज्रयान, परन्तु बौद्ध धर्म एक ही है। सभी बौद्ध सम्प्रदाय बुद्ध के सिद्धांत ही मानते है।

2.4.1 गौतम बुद्ध का परिचय

गौतम बुद्ध (जन्म 563 ईसा पूर्व – निर्वाण 483 ईसा पूर्व) विश्व महान दार्शनिक, वैज्ञानिक, धर्मगुरू एवं उच्च कोटी के समाज सुधारक थे। तथागत बुद्ध प्राचीनतम धर्मों में से एक महान **बौद्ध धर्म** के संस्थापक थे। उनका जन्म **लुंबिनी** में 563 ईसा पूर्व **शाक्य** कुल के राजा **शुद्धोधन** के घर मे हुआ था। उनकी माँ का नाम **महामाया** था जिनका सात दिन बाद निधन हुआ, उनका पालन **महाप्रजापती गौतमी** ने किया। सिद्धार्थ विवाहोपरांत एक मात्र प्रथम नवजात शिशु **राहुल** और पत्नी **यशोधरा** को त्यागकर संसार को जरा, मरण, दुखों से मुक्ति दिलाने के मार्ग की तलाश एवं सत्य दिव्य ज्ञान खोज में रात में राजपाठ छोड़कर जंगल चले गए। वर्षों की कठोर साधना के पश्चात **बोध गया** (बिहार) में बोधी वृक्ष के नीचे उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई और वे सिद्धार्थ गौतम से **बुद्ध** बन गए।

वे 80 वर्ष की उम्र तक अपने धर्म का संस्कृत के बजाय उस समय की सीधी सरल लोकभाषा पाली में प्रचार करते रहे। उनके सीधे सरल धर्म की लोकप्रियता तेजी से बढ़ने लगी। चार सप्ताह तक बोधिवृक्ष के नीचे रहकर धर्म के स्वरूप का चिंतन करने के बाद बुद्ध धर्म का उपदेश करने निकल पड़े। आषाढ़ की पूर्णिमा को वे काशी के पास मृगदाव (वर्तमान में सारनाथ) पहुँचे। वहीं पर उन्होंने सबसे पहला धर्मोपदेश दिया और पहले के पाँच मित्रों को अपना अनुयायी बनाया और फिर उन्हें धर्म प्रचार करने के लिये भेज दिया।

2.4.2 गौतम बुद्ध के उपदेश

भगवान बुद्ध ने लोगों को मध्यम मार्ग का उपदेश किया। उन्होंने दुःख, उसके कारण और निवारण के लिए अष्टांगिक मार्ग सुझाया। गौतम बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद, बौद्ध धर्म के अलग-अलग संप्रदाय उपस्थित हो गये हैं, परंतु इन सब के बहुत से सिद्धांत मिलते हैं। तथागत बुद्ध ने अपने अनुयायिओं को चार आर्यसत्य, अष्टांगिक मार्ग, दस पारमिता, पंचशील आदी शिक्षाओं को प्रदान किए हैं जो इस प्रकार है-

चार आर्य सत्य

तथागत बुद्ध का पहला धर्मोपदेश

1. **दुःख:** इस दुनिया में दुःख है। जन्म में, बूढे होने में, बीमारी में, मौत में, प्रियतम से दूर होने में, नापसंद चीज़ों के साथ में, चाहत को न पाने में, सब में दुःख है।
2. **दुःख कारण:** तृष्णा, या चाहत, दुःख का कारण है और फ़िर से सशरीर करके संसार को जारी रखती है।
3. **दुःख निरोध:** तृष्णा से मुक्ति पाई जा सकती है।
4. **दुःख निरोध का मार्ग:** तृष्णा से मुक्ति अष्टांगिक मार्ग के अनुसार जीने से पाई जा सकती है।

अष्टांगिक मार्ग

बौद्ध धर्म के अनुसार, चौथे आर्य सत्य का आर्य अष्टांग मार्ग है दुःख निरोध पाने का रास्ता। गौतम बुद्ध कहते थे कि चार आर्य सत्य की सत्यता का निश्चय करने के लिए इस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए:

1. **सम्यक दृष्टि**: चार आर्य सत्य में विश्वास करना।
2. **सम्यक संकल्प**: मानसिक और नैतिक विकास की प्रतिज्ञा करना।
3. **सम्यक वाक**: हानिकारक बातें और झूट न बोलना।
4. **सम्यक कर्म**: हानिकारक कर्मों को न करना।
5. **सम्यक जीविका**: कोई भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हानिकारक व्यापार न करना।
6. **सम्यक प्रयास**: अपने आप सुधरने की कोशिश करना।
7. **सम्यक स्मृति**: स्पष्ट ज्ञान से देखने की मानसिक योग्यता पाने की कोशिश करना।
8. **सम्यक समाधि:** निर्वाण पाना और स्वयं का गायब होना।

कुछ लोग आर्य अष्टांग मार्ग को पथ की तरह समझते है, जिसमें आगे बढ़ने के लिए, पिछले के स्तर को पाना आवश्यक है। और लोगों को लगता है कि इस मार्ग के स्तर सब साथ-साथ पाए जाते है। मार्ग को तीन हिस्सों में वर्गीकृत किया जाता है : प्रज्ञा, शील और समाधि। गौतम बुद्ध के मत में अष्टांगिक मार्ग ही वह मध्यम मार्ग है जिससे दुःख का निदान होता है। अष्टांगिक मार्ग चूँकि ज्ञान, संकल्प, वचन, कर्मांत, आजीव, व्यायाम, स्मृति और समाधि के संदर्भ में सम्यकता से साक्षात्कार कराता है, अतः मध्यम मार्ग है। मध्यम मार्ग ज्ञान देने वाला है, शांति देने वाला है, निर्वाण देने वाला है, अतः कल्याणकारी है और जो कल्याणकारी है वही श्रेयस्कर है। गौतम बुद्ध विश्वकल्याण के लिए मैत्री भावना पर बल देते हैं। ठीक वैसे ही जैसे महावीर स्वामी ने मित्रता के प्रसार की बात कही थी। गौतम बुद्ध मानते हैं कि मैत्री के मोगरों की महक से ही संसार में सद्भाव का सौरभ फैल सकता है। वे कहते हैं कि बैर से बैर कभी नहीं मिटता। अबैर से मैत्री से ही बैर मिटता है। मित्रता ही सनातन नियम है। गौतम बुद्ध घृणा के घावों पर मोहब्बत का मरहम लगाते हैं।

पारमिता

बौद्ध धर्म में 'परिपूर्णता' या कुछ गुणों का चरमोन्नयन की स्थिति को **पारमिता** या **पारमी** (पालि) कहा गया है। बौद्ध धर्म में इन गुणों का विकास पवित्रता की प्राप्ति, कर्म को पवित्र करने आदि के लिए की जाती है ताकि साधक अनावरुद्ध जीवन जीते हुए भी ज्ञान की प्राप्ति कर सके। 'पारमिता' शब्द 'परम्' से व्युत्पन्न है।

छः पारमिता: महायान ग्रन्थों में छः पारमिता की गणना मिलती है-

1. दान पारमिता
2. शील पारमिता
3. क्षान्ति पारमिता
4. वीर्य पारमिता
5. ध्यान पारमिता

6. प्रज्ञा पारमिता

दशभूमिकासूत्र में निम्नलिखित चार पारमिता भी गिनायी गयीं हैं-

1. उपाय पारमिता
2. प्राणिधान पारमिता
3. बल पारमिता
4. ज्ञान पारमिता

दस पारमिता: थेरवाद ग्रन्थों में दस पारमिता वर्णित हैं-

1. दान पारमी
2. शील पारमी
3. नेक्खम्मा (त्याग) पारमी
4. पण्ण पारमी
5. वीरिय पारमी
6. खान्ति पारमी
7. सच्च पारमी
8. अधित्थान पारमी
9. मेत्ता पारमी
10. उपेक्खा पारमी

पंचशील

भगवान बुद्ध ने अपने अनुयायिओं को पांच शालों का पालन करने की शिक्षा दि हैं।

1. **अहिंसा:** मैं प्राणि-हिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
2. **अस्तेय:** मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
3. **अपरिग्रह:** मैं व्यभिचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
4. **सत्य:** मैं झूठ बोलने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
5. **सभी नशा से विरत:** मैं पक्की शराब (सुरा) कच्ची शराब (मेरय), नशीली चीजों (मज्जपमादठटाना) के सेवन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

बुद्ध की शिक्षाओं का सार है- शील, समाधि और प्रज्ञा। सर्व पाप से विरति ही 'शील' है। शिव में निरंतर निरति 'समाधि' है। इष्ट-अनिष्ट से परे समभाव में रति 'प्रज्ञा' है। भगवान बुद्ध प्रज्ञा व करुणा की साक्षात मूर्ति थे। ये दोनों ही गुण उनमें उत्कर्ष की पराकाष्ठा प्राप्त कर समरस होकर समाहित हो गये थे। महात्मा बुद्ध के अनुसार धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में सभी स्त्री एवं पुरुषों में समान योग्यता एवं अधिकार हैं। इतना ही नहीं, शिक्षा, चिकित्सा और आजीविका के क्षेत्र में भी वे समानता के पक्षधर थे। उनके अनुसार एक मानव

का दूसरे मानव के साथ व्यवहार मानवता के आधार पर होना चाहिए, न कि जाति, वर्ण और लिंग आदि के आधार पर। उन्होंने अहिंसा पर बहुत जोर दिया है। उन्होंने यज्ञ और पशु-बलि की निंदा की। बुद्ध के उपदेशों का सार इस प्रकार है -

सम्यक ज्ञान

बुद्ध के अनुसार धम्म है: -	**बुद्ध के अनुसार अ-धम्म है**: -
• कर्म को मानव के नैतिक संस्थान का आधार मानना • जीवन की पवित्रता बनाए रखना • जीवन में पूर्णता प्राप्त करना • तृष्णा का त्याग • निर्वाण प्राप्त करना • यह मानना कि सभी संस्कार अनित्य हैं	आत्मा में विश्वास करना कल्पना-आधारित विश्वास मानना धर्म की पुस्तकों का वाचन मात्र परा-प्रकृति में विश्वास करना

बुद्ध के अनुसार सद्धम्म क्या है**: -**

1. जो धम्म प्रज्ञा की वृद्धि करे--	2. जो धम्म मैत्री की वृद्धि करे--	3. जब वह सभी प्रकार के सामाजिक भेदभावों को मिटा दे
• जो धम्म यह बताए कि आवश्यकता प्रज्ञा प्राप्त करने की है • जो धम्म यह बताए कि केवल विद्वान होना पर्याप्त नहीं है • जो धम्म सबके लिए ज्ञान के द्वार खोल दे	• जो धम्म यह बताए कि करुणा से भी अधिक मैत्री की आवश्यकता है। • जो धम्म यह बताए कि प्रज्ञा और शील के साथ-साथ करुणा का होना भी अनिवार्य है • जो धम्म यह बताए कि प्रज्ञा भी पर्याप्त नहीं है, इसके साथ शील भी अनिवार्य है	• जब वह आदमी और आदमी के बीच की सभी दीवारों को गिरा दे • जब वह आदमी-आदमी के बीच समानता के भाव की वृद्धि करे • जब वह बताए कि आदमी का मूल्यांकन जन्म से नहीं कर्म से किया जाए

अभ्यास प्रश्न

1. भगवान बुद्ध ने दुःख, उसके कारण और निवारण के लिए कौन सा मार्ग सुझाया?
2. बुद्ध की शिक्षाओं का सार क्या है?
3. पारमिता क्या है?

2.5 शांति के संबंध में गौतम बुद्ध के विचार

कई बौद्ध धर्मावलंबी मानते हैं कि विश्व शांति तभी हो सकती है, जब हम अपने मन के भीतर पहले शांति स्थापित करें। बौद्ध धर्म के संस्थापक सिद्धार्थ गौतम ने कहा, "शांति भीतर से आती है। इसे इसके बिना न तलाशें." विचार यह है कि गुस्सा और मन की अन्य नकारात्मक अवस्थाएं युद्ध और लड़ाई के कारण हैं। बौद्धों का विश्वास है कि लोग केवल तभी शांति और सद्भाव के साथ जी सकते हैं, जब हम अपने मन से क्रोध जैसी नकारात्मक भावनाओं को त्याग दें और प्यार और करुणा जैसी सकारात्मक भावनाएं पैदा करें।

आज बेईमानी के बाजार में स्वार्थ के सिक्के चल रहे हैं। 'पगड़ी उछाल' की राजनीति अनैतिकता के आंगन में अठखेलियां कर रही हैं। अन्याय की आग में ईमान को ईंधन बनाया जा रहा है। दया का दम घुट रहा है। छल-छंद की छुरियों से विश्वसनीयता को घायल किया जा रहा है। ऐसी त्रासद स्थिति से मुक्ति के लिए गौतम बुद्ध की शिक्षाओं को अपने आचरण में लाना आज भी आवश्यक है।

बौद्ध धर्म के विषय में प्रायः एक भ्रांति लोगों के मन में यह रहती है कि यह मात्र एक धर्म है जो हमें हिन्दू धर्म के विपरीत आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करता है। जबकि वास्तविकता यह है कि बौद्ध धर्म शैक्षिक मानव जीव के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में लोक कल्याण की दीक्षा देता है। बौद्ध धर्म विश्व के सभी धर्मों में अपना अद्वितीय स्थान रखता है। इस धर्म ने मानव लोक कल्याण की भावना को जन्म दिया और शान्ति का उपदेश देकर सबसे पहले पंचशील के विषय में अवगत कराया। लोगों को समता-करुणा-प्यार के साथ रहना सिखाया। बौद्ध धर्म सुखमय जीवन बिताने का मार्ग प्रशस्त करता है।

‘‘महामंगलसुत्त" और ‘‘करणीयमेत्तसुत्त" विश्व के मानव को बन्धुता के सूत्र में आबद्ध रखने में आज भी सक्षम है। इसमें सुशिक्षित होना, शिल्प प्रशिक्षित होना, विनयशील होना, मृदुभाषी होना, माता-पिता की सेवा करना, पत्नी और सन्तानों का पालन-पोषण करना, अहितकारी कर्मों से दूर रहना, दान देना, पवित्र जीवन बिताना, आपत्ति-विपत्ति आने पर साहसपूर्वक उसका सामना करना और विचलित न होना, क्रोध पर विजय प्राप्त करना और क्षमाशीलता को न खोना आदि ‘‘महामंगलसुत्त" प्रमुख बातें हैं।

बौद्ध धर्म मानव को स्वतंत्र जीवन जीना सिखाता है। यही कारण है कि भारत में जब-जब बौद्ध शासकों का शासन हुआ देश की राजनैतिक और सांस्कृतिक सीमाएं बढ़ती ही गयीं। उनके समय में भारत कभी परतन्त्र नहीं हुआ बौद्ध धर्म को मानने वाले म्यांमर, बर्मा, थाईलैण्ड, श्रीलंका, जापान कोरिया, चीन जैसे राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अपने शरीर के रक्त की अंतिम बूँद तक संघर्षरत प्रयासरत एवं प्रयत्नशील रहते हैं। भगवान बुद्ध ने उस मानवता का संदेश दिया जहां जाति धर्म और सम्प्रदाय, राष्ट्र की सीमाएं नहीं होतीं।

बौद्ध धर्म का शान्ति से अटूट सम्बन्ध भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। बौद्ध धर्म के 2557 वर्ष के इतिहास में जबकि यह सम्पूर्ण पृथ्वी के चतुर्थ भाग से अधिक प्रदेश में फैल गया, काफी श्रम साध्य, गंवेषण करने पर

भी स्थायी और अल्प महत्व के कुछ एक उदाहरण ही मिल सकेंगे जबकि बल का प्रयोग किया गया हो। बौद्ध धर्म के इतिहास का एक भी पृष्ठ ऐसा नहीं है जो रक्त रंजित हो। बौद्ध धर्म के पास केवल एक ही तलवार है प्रज्ञा की तलवार और उसका एक ही शत्रु है अज्ञान। यह इतिहास का साक्ष्य है, जिसका विरोध नहीं किया जा सकता। बौद्ध धर्म और विश्व शान्ति का सम्बन्ध कार्य कारण का सम्बन्ध है। बौद्ध धर्म के प्रवेश से पूर्व तिब्बत, एशिया का सबसे बलवान सैनिक देश था। वर्मा, स्याम और कंबोडिया का पूर्वकालीन इतिहास बतलाता है कि यहां के निवासी अत्यन्त युद्ध प्रिय और हिंसात्मक स्वभाव के थे। मंगोल लोगों ने एक बार संपूर्ण ऐशिया को ही नहीं भारत, चीन, ईरान और अफगानिस्तान को भी रौंद डाला था और यूरोप के दरबाजों पर भी वे जा गरजे थे। जापान की सैनिक भावना को बौद्ध धर्म की पंद्रह शताब्दियां भी अभी पूरी तरह परास्त नहीं कर सकी हैं। संभवतः भारत और चीन के अपवादों को छोडकर एशिया के प्रायः अन्य सब राष्ट्रों के लोग मूलतः हिंसा प्रिय थे। बाद में उनमें जो शांति प्रियता आई वे बौद्ध धर्म के शांतिवादी उपदेशों के प्रभाव स्वरूप ही थी। इस प्रकार बौद्ध धर्म और शांति का संबंध आकस्मिक न होकर अनिवार्य है। विश्व शांति की स्थापना में बौद्ध धर्म अतीत में योगदान देने वाला साधन रहा है, इस समय है और आगे भी रहेगा।

अपने 2557 वर्ष के इतिहास में बौद्ध धर्म ने सांस्कृतिक कार्य किये हैं और इस बीच उसका जो राजनैतिक स्थान और प्रभाव रहा है उसकी झांकी हमारे लिए पूर्व और पश्चिम में बौद्ध धर्म के सांस्कृतिक निष्कर्षों को समझने में सहायक होगी।

भगवान बुद्ध ने धर्म की उपमा बेड़े से दी है, जिस प्रकार बेड़ा पार होने के लिए है, पकड़कर रखने के लिए नहीं, उस प्रकार बुद्ध ने धर्म का उपदेश दिया है। यह संसार सागर को पार करने के लिए है पकड़कर रखने के लिए नहीं। जिस प्रकार पार होने के बाद बेड़े की आवश्यकता नहीं रहती, उसे छोड़ देते हैं उसी प्रकार धर्म की स्थिति है। परन्तु जब हम तक समुद्र के इस पार हैं या उसे उतरने का प्रयत्न कर रहे हैं धर्म रूपी बेड़े की हमें अनिवार्य आवश्यकता है और किसी प्रकार छोड़ नहीं सकते।

बौद्ध धर्म का स्वरूप व्यवहारिक है, इस बात पर जोर हमें भगवान बुद्ध के उन शब्दों में मिलता है जो उन्होंने अपनी मौसी महाप्रजापति गौतमी से कहे थे। "गौतमी, जिन धर्मों के बारे में तू निश्चयपूर्वक जान सके कि ये निष्कामता के लिए है, कामनाओं की वृद्धि के लिए नहीं, विराग के लिए हैं राग के लिए नहीं, एकांत के लिए हैं, भीड़ के लिए नहीं, उद्यम के लिए हैं, प्रमोद के लिए नहीं, अच्छाई में प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए हैं, बुराई में प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए नहीं तो गौतमी ! उन ऐसे धर्मों के विषय में तू निश्चयपूर्वक जानना है कि यही धर्म है, यह विनय है, यही शास्ता का संदेश है।" यही बुद्ध का वचन है।

तथागत द्वारा अनुमति प्रदान करने पर सिंह सेनापति ने कहा-शास्ता ! मैं एक योद्धा हूं और राजा के नियमों को लागू करने और उसके लिए युद्ध लड़ने को नियुक्त किया गया हूँ। क्या असीम दयालुता और दुखियों के साथ सहानुभूति सिखाने वाले तथागत अपराधी को दंड देने की अनुमति देंगे? और क्या तथागत यह कहेंगे कि कुटुंब, पत्नियों, बच्चों और संपत्ति की रक्षा के लिए युद्ध करना अनुचित है ? क्या तथागत आत्म समर्पण का सिद्धांत सिखायेंगे, जिससे मैं दुराचारी की मनमानी को सहूं और मेरे अधिकारों को बल

प्रयोग से छीन लेने वाले के सम्मुख झुक जाऊँ ? क्या तथागत यह मानते हैं कि सभी संघर्ष, भले ही वे किसी उचित उद्देश्य के लिए हो निषिद्ध है ?

बुद्ध ने उत्तर दिया जो दण्ड के योग्य है, उसे दंड दिया जाना चाहिए और जो कृपा के पात्र है, उस पर कृपा की जानी चाहिए किन्तु इसके साथ ही तथागत किसी जीव को चोट न पहुंचाने और प्रेम, करूणा मैत्री से परिपूर्ण होने का उपदेश देते हैं। ये आदेश अंतर्विरोधी नहीं है, क्योंकि अपराध करने के लिए दण्ड का भागीदार मनुष्य न्यायाधीश के द्वेष के कारण नहीं, बल्कि अपने दुराचरण के कारण दण्ड पाता है। नियमों को निष्पादित करने वाला उसे जो क्षति पहुंचाता है उसका कारण स्वयं अपराधी के दुष्कर्म ही हैं। और भगवान बुद्ध ने कहा 'तथागत यह नहीं सिखाता कि शांति को बनाये रखने के सभी संभव प्रयासों में विफल रहने के बाद न्यायसंगत उद्दश्यों के लिए युद्ध करने वाले निन्दनीय हैं। किन्तु जो युद्ध का कारण पैदा करता है, वह अवश्य दोषी है। 'तथागत आत्म का पूर्ण समर्पण करना अवश्य सिखाता है किन्तु वह बुरी शक्तियों के सम्मुख चाहे वे मनुष्य हो, देवता हो या प्राकृतिक तत्व, किसी भी वस्तु का समर्पण करने की शिक्षा नहीं देता। संघर्ष तो रहेगा, क्योंकि पूरा जीवन किसी न किसी तरह का संघर्ष ही है। किन्तु संघर्ष करने वाले को यह देखना होगा कि कहीं वह सत्य और सदाचार के विरूद्ध आत्म का संघर्ष तो नहीं कर रहा है।' जो आत्म हित में संघर्ष करता है जिससे कि स्वयं शक्तिशाली, महान, धनी या विख्यात हो सके, वह कोई पुरस्कार नहीं पाता। किन्तु जो सत्य और सदाचार के पक्ष में संघर्ष करेगा, वह श्रेष्ठ पुरस्कार प्राप्त करेगा। क्योंकि उसकी पराजय भी एक विजय होगी। किन्तु हे सिंह ! यदि वह स्वयं को उदार बनाता है और अपने हृदय की सारी घृणा को बुझाकर अपने पद, दिल शत्रु को उठाकर यह कहता है कि 'आओ, अब समझौता कर हम बंधु बन जायें', तो वह ऐसी विजय प्राप्त करता है जो अस्थायी सफलता नहीं अपितु जिसके फल हमेशा विद्यमान रहेंगे। 'हे सिंह! एक सफल सेनापति महान है, किन्तु जिसने अपने को जीत लिया है, वह सर्वश्रेष्ठ विजेता है।' वह विजय जो पीछे दुख छोड़ जाये उसे विजय नहीं कहते, विजय उसे कहते हैं कि कोई पराजित न हो।

बुद्ध ने कहा भिखुओं संसार जल रहा है। कोई तृष्णा से, राग से, द्वेष से, सम्प्रदाय से, जाति-पाति से, बाप-बेटा से, पत्नी और पति से, मां-बेटा से, ब्राह्मण-ब्राह्मण से क्षत्रिय-क्षत्रिय से, वैश्य-वैश्य से, एक राजा दूसरे राजा से सब युद्धरत हैं, बैर-बैर से शान्त नहीं होता, बैर शान्ति से शान्त होता है।

बौद्ध धर्म मन से शांति का संचार करके उसका बाहर प्रसारण करना चाहता है। इस प्रकार उसका अन्दर से शुरू होकर बाहर फैलता है। राजनैतिक स्तर पर बौद्ध धर्म किसी पक्ष में नहीं पड़ता है। उसके पास मैत्री का ही सबसे बड़ा बल है, जो तटस्थ है और सम्पूर्ण विश्व को अपने में समेटे हुए है। बुद्ध ने अपने अनुयायियों से कहा कि उन्हें उनके काम को स्वीकार करना चाहिए, परन्तु उसके जीवन को आदर्श नहीं मानना चाहिए।

स्वतंत्रता, बन्धुत्व, समता, विकास, शिक्षा और अधिकार एवं राष्ट्रीयता ब्राह्मणवाद की तंग चार दीवारों के अन्दर बन्द नहीं किया जा सकता। कमल कीचड़ में पैदा होता है। कमल से प्रेम करो, कीचड़ से नहीं। शरहपाद (सहजियान) द्वारा की गई आलोचना का स्मरण हो आता है। उदाहरण देखिए-

निर्लज्ज लोग सम्पन्न बन जाते हैं। वाकपटु लोग उच्च अधिकारी बन जाते हैं। छोटे-मोटे चोरों को कारावास में डाल दिया जाता है, किन्तु बड़े डाकू सामंत स्वामी बन जाते हैं और इन्हीं सामंतों के द्वार पर आपको-धर्म परायण विद्वान' नजर आयेंगे।

बौद्ध संग्रह, पाली (श्रावद्दीन) धम्मपद पाठ का पांचवें पद (423 छंदों) में कहा गया है:

"घृणा को नफरत द्वारा कभी संतुष्ट नहीं किया जाता है। घृणा केवल प्रेम द्वारा संतुष्ट है। यह एक अनन्त कानून है।"

8 वीं शताब्दी में महायान में बहुत ज्यादा एक ही बात कहीं हैं:

"नफरत के समान कोई बुराई नहीं है, और धैर्य के समान कोई आध्यात्मिक अभ्यास नहीं है। इसलिए, बहुत से प्रयासों के साथ, विभिन्न तरीकों से धैर्य को विकसित करना चाहिए।" - (छ: 6, कविता 2)

बुद्ध की शिक्षाओं को बुद्ध के शब्दों से सबसे अच्छा संक्षेप किया जा सकता है:

गलत काम करने से बचें, अच्छा करो और मन को शुद्ध करें, यह बुद्धों की शिक्षा है। "धम्मपद 183

बौद्ध परिप्रेक्ष्य से, जीवन का सही पहलू उसके निरंतर प्रवाह में पाया जाता है, जिस तरह से अनुभव आंतरिक प्रवृत्तियों और बाहरी परिस्थितियों के बीच परस्पर क्रिया द्वारा उत्पन्न होते हैं। दूसरे शब्दों में, जो हम अच्छे और बुरे के रूप में अनुभव करते हैं वह तय नहीं होता है, बल्कि हमारे दृष्टिकोण और प्रतिक्रिया पर निर्भर करता है। अच्छे और बुरे संस्थाएं अपरिवर्तनीय नहीं हैं: वास्तव में, इसमें बुराई के अंदर अच्छा है, और बुराई में वह अच्छा है।

मनुष्य जिन दु:खों से पीड़ित है, उनमें बहुत बड़ा हिस्सा ऐसे दु:खों का है, जिन्हें मनुष्य ने अपने अज्ञान, ग़लत ज्ञान या मिथ्या दृष्टियों से पैदा कर लिया हैं उन दु:खों का प्रहाण अपने सही ज्ञान द्वारा ही सम्भव है, किसी के आशीर्वाद या वरदान से उन्हें दूर नहीं किया जा सकता। सत्य या यथार्थता का ज्ञान ही सम्यक ज्ञान है। अत: सत्य की खोज दु:खमोक्ष के लिए परमावश्यक है। खोज अज्ञात सत्य की ही की जा सकती है। यदि सत्य किसी शास्त्र, आगम या उपदेशक द्वारा ज्ञात हो गया है तो उसकी खोज नहीं। अत: बुद्ध ने अपने पूर्ववर्ती लोगों द्वारा या परम्परा द्वारा बताए सत्य को नकार दिया और अपने लिए नए सिरे से उसकी खोज की। बुद्ध स्वयं कहीं प्रतिबद्ध नहीं हुए और न तो अपने शिष्यों को उन्होंने कहीं बांधा। उन्होंने कहा कि मेरी बात को भी इसलिए चुपचाप न मान लो कि उसे बुद्ध ने कही है। उस पर भी सन्देह करो और विविध परीक्षाओं द्वारा उसकी परीक्षा करो। जीवन की कसौटी पर उन्हें परखो, अपने अनुभवों से मिलान करो, यदि तुम्हें सही जान पड़े तो स्वीकार करो, अन्यथा छोड़ दो। यही कारण था कि उनका धर्म रहस्याडम्बरों से मुक्त, मानवीय संवेदनाओं से ओतप्रोत एवं हृदय को सीधे स्पर्श करता था।

2.5.1 बौद्ध धर्म की शिक्षा की सार्वभौमिकता शांति के संदर्भ में

मानव-समता- भगवान बुद्ध के अनुसार धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में सभी स्त्री एवं पुरुषों में समान योग्यता एवं अधिकार हैं। इतना ही नहीं, शिक्षा, चिकित्सा और आजीविका के क्षेत्र में भी वे समानता के पक्षधर थे। उनके अनुसार एक मानव का दूसरे मानव के साथ व्यवहार मानवता के आधार पर होना चाहिए, न कि जाति, वर्ण, लिङ्ग आदि के आधार पर। क्योंकि सभी प्राणी समानरूप से दु:खी हैं, अत: सब समान हैं। दु:ख प्रहाण ही उनके धर्म का प्रयोजन है। अत: संवेदना और सहानुभूति ही इस समता के आधारभूत तत्त्व हैं। उन्होंने कहा कि जैसे सभी नदियाँ समुद्र में मिलकर अपना नाम, रूप और विशेषताएं खो देती हैं, उसी प्रकार मानवमात्र उनके संघ में प्रविष्ट होकर जाति, वर्ण आदि विशेषताओं को खो देते हैं और समान हो जाते हैं। निर्वाण ही उनके धर्म का एकमात्र रस है।

मानवश्रेष्ठता - बुद्ध के अनुसार मानवजन्म अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्य में वह बीज निहित है, जिसकी वजह से यदि वह चाहे तो अभ्युदय एवं नि:श्रेयस अर्थात् निर्वाण और बुद्धत्व जैसे परम पुरुषार्थ भी सिद्ध कर सकता है। देवता श्रेष्ठ नहीं हैं, क्योंकि वे व्यापक तृष्णा के क्षेत्र के बाहर नहीं हैं। अत: मनुष्य उनका दास नहीं है, अपितु उनके उद्धार का भार भी मनुष्य के ऊपर ही हैं। इसीलिए उन्होंने कहा कि भिक्षुओं, बहुजन के हित और सुख के लिए तथा देव और मनुष्यों के कल्ण के लिए लोक में विचरण करो। ऋषिपतन मृगदाव (सारनाथ) में अपने प्रथम वर्षावास के अनन्तर भिक्षुओं को उनका यह उपदेश मानवीय स्वतन्त्रता और मानवश्रेष्ठता का अप्रतिम उद्‌घोष है।

व्यावहारिकता - बुद्ध की शिक्षा अत्यन्त व्यावहारिक थी। उसमें किसी भी तरह के रहस्यों और आडम्बरों के लिए कोई स्थान न थां उनका चिन्तन प्राणियों के व्यापक दु:खों के कारण की खोज से प्रारम्भ होता है, न कि किसी अत्यन्त निगूढ, गुहाप्रविष्ट तत्त्व की खोज से। वे यावज्जीवन दु:खों के अत्यन्त निरोध का उपाय ही बताते रहे। उन्होंने ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने से इन्कार कर दिया और उन्हें अव्याकरणीय (अव्याख्येय) करार दिया, जिनके द्वारा यह पूछा जाता था कि यह लोक शाश्वत है कि अशाश्वत; यह लोक अनन्त है कि सान्त अथवा तथागत मरण के पश्चात होते हैं या नहीं- इत्यादि। उनका कहना था कि ऐसे प्रश्न और उनका उत्तर न अर्थसंहित है और न धर्मसंहित।

अपने सुख-दु:खों के लिए प्राणी स्वयं ही उत्तरदायी हैं। अपने अज्ञान और मिथ्यादृष्टियों से ही उन्होंने स्वयं अपने लिए दु:खों का उत्पाद किया है, अत: कोई दूसरी शक्ति ईश्वर या महेश्वर उन्हें मुक्त नहीं कर सकता। इसके लिए उन्हें स्वयं प्रयास करना होगा। किसी के वरदान या कृपा से दु:खमुक्ति असम्भव है। कोई महापुरुष, जिसने अपने दु:खों का प्रहाण कर लिया हो, अपने अनुभव के आधार पर दु:खमुक्ति का मार्ग अवश्य बता सकता है, किन्तु उसकी बातों की परीक्षा कर, सही प्रतीत होने पर उस मार्ग पर प्राणी को स्वयं चलना होगा। इस कर्म सिद्धान्त के द्वारा मानव-स्वतन्त्रता और आत्म-उत्तरदायित्व का विशिष्ट बोध प्रतिफलित होता है। यह भारतीय संस्कृति में बौद्धों का अनुपम योगदान है।

आंतरिक शांति - खुशी का वास्तविक स्रोत -बौद्ध धर्म लोगों को सिखाता है कि खुशी का वास्तविक स्रोत आंतरिक शांति है। अगर हमारा दिमाग शांतिपूर्ण है, तो हम बाहरी परिस्थितियों के बावजूद हर समय

खुश रहेंगे, लेकिन अगर यह किसी भी तरह से परेशान या परेशान है, तो हम कभी भी खुश नहीं रहेंगे, भले ही हमारी बाहरी स्थिति कितनी अच्छी न हो। यदि हमारे मन शांतिपूर्ण है तो बाहरी परिस्थितियां हमें खुश कर सकती हैं हम इसे अपने अनुभव के माध्यम से समझ सकते हैं उदाहरण के लिए, यहां तक कि अगर हम सबसे खूबसूरत परिवेश में हैं और जो कुछ भी हमें ज़रूरत है, तब भी जब हम गुस्सा आते हैं, हम किसी भी खुशी से गायब हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि क्रोध ने हमारे आंतरिक शांति को नष्ट कर दिया है।

ध्यान - मन को नियंत्रित करने की विधि -बौद्ध धर्म सिखाता है कि ध्यान ऐसी विधि है जिसके द्वारा लोग आंतरिक शांति प्राप्त कर सकते हैं। ध्यान हमारे मन को भावनाओं और भावनाओं से प्राप्त करने के लिए एक तरीका है जो शांति और सुख के लिए अनुकूल है। जब हमारा मन शांतिपूर्ण होता है हम चिंता और मानसिक परेशानी से होते हैं, और हम सच्ची खुशी का अनुभव करते हैं।

निष्कर्ष

यदि कोई अन्य व्यक्तियों और दुनिया के साथ सभी शांतिपूर्ण, सौम्य और परस्पर व्यवहार करने का फैसला कर सकता है, तो हमें सभी को शांति की संस्कृति का आनंद लेना चाहिए। फिर भी, ऐसी संस्कृति को प्राप्त करना आसान नहीं है। करने के लिए प्रयास, समाधान, धैर्य, सहयोग और अभ्यास की आवश्यकता है। ध्यान बौद्ध धर्म का बहुत दिल है, बौद्ध (और अन्य) को स्वयं को और साथ ही दूसरों के प्रति हमारे विभिन्न पूर्वाग्रहों की उत्पत्ति में गहराई से देखने के लिए अपने ध्यान विधियों का लाभ उठाना चाहिए - और उन्हें बदलने के लिए। हम अपना मन बदल सकते हैं; हम अपने विचार बदल सकते हैं; हम अपने आप को और अधिक शांतिपूर्ण बना सकते हैं और, परिणामस्वरूप, हम दुनिया में शांति पैदा करने में मदद कर सकते हैं।

भारत में, "शांति" के बराबर "शांति" है, जिसका अर्थ है आंतरिक शांति की अवस्था। इसका अर्थ भी शाकमुनी द्वारा प्राप्त प्रबुद्ध स्थिति को कभी-कभी "निर्वाण" कहा जाता है। मन की शांति के संबंध में बौद्ध पाठ इस प्रकार वर्णित है: "मन की शांति सफलतापूर्वक लालच, घृणा और अज्ञान को पार करने से आती है।" जैसा कि इस मार्ग से स्पष्ट हो जाता है, शांति के लिए बौद्ध दृष्टिकोण इन भ्रामक आवेगों या आंतरिक जहरों को उबारने के मौलिक कार्य से शुरू होता है। इन आवेगों को नियंत्रण में लाने की स्थिति, हालांकि, स्थैतिक और निजी आंतरिक शांति नहीं है। इसके बजाय, यह स्वभाव में गतिशील, विशाल और विकासवादी है।

बौद्ध धर्म का शांतिपूर्ण योगदान मुख्य रूप से पूरे मानव समाज में बहुत दुख और विनाश का कारण है, जो आतंकवादी आवेगों के खिलाफ संघर्ष में पाया जाता है, जो व्यक्ति के भीतर की जिंदगी की गहराई में निहित है। शक्यामुनी के लोटस सूत्र में, भ्रमित आवेगों के द्वारा लाया जाने वाला विनाशकारी प्रभाव को "अशुद्धता" के रूप में वर्णित किया गया है और पांच चरणों में वर्गीकृत किया गया है, जो भीतर और सबसे अधिक व्यक्तिगत है, जो पूरे युग या युग का दाग करता है ये हैं: इच्छाओं, सोचा, लोगों की, खुद की और आयु की अशुद्धता।

हिंसा आमतौर पर परिवारों में, स्कूलों और स्थानीय समुदायों में मिलती है। गहरी घृणा जो दूर के ऐतिहासिक घटनाओं के पीछे ट्रेस करते हैं, वह अनुचित जातीय और नस्लीय संघर्षों को जन्म देते हैं। कुछ मामलों में, इस तरह की ऐतिहासिक घृणा धार्मिक कारणों या पहचान से जुड़ी होती है, और आतंक और यादृच्छिक हत्या में अभिव्यक्ति पाती है

अभ्यास प्रश्न

4. बौद्ध धर्म के अनुसार विश्व शांति के लिए क्या आवश्यक है?
5. शांति के संदर्भ में बौद्ध धर्म के उपाय सूचीबद्ध करें?

2.6 जैन धर्म

जैन धर्म भारत का एक प्राचीन दर्शन है जिसे आम भाषा में धर्म कह दिया जाता है। 'जैन धर्म' का अर्थ है - 'जिन द्वारा प्ररूपित धर्म'। जो 'जिनेश्वर' के अनुयायी हों उन्हें जैन कहते है तथा 'जिन' या 'जिनेश्वर' शब्द 'जि' धातु से बना है जिसका अर्थ जीतने वाला होता है अर्थात जिन्होंने अपने मन को जीत लिया,अपनी वाणी को जीत लिया और अपनी काया को जीत लिया, और विशिष्ट ज्ञान को पाकर सर्वज्ञ या पूर्णज्ञान प्राप्त किया उन आप्त पुरुष को जिनेश्वर या जिन कहते है ! जिनेश्वर के द्वारा प्रतिपादित होने से व्यवहार भाषा में जैन धर्म कहा जाता है! अहिंसा जैन धर्म का मूल सिद्धान्त है! जैन दर्शन में सृष्टिकर्ता ईश्वर को स्थान नहीं दिया गया है। क्योंकि जैन दर्शन अनीश्वरवादी है लेकिन नास्तिक नही है ... जैन दर्शन अपने ही पूर्वजो में विशिष्ट ज्ञान के धारक सर्वज्ञ (अरिहंत या तीर्थंकर) केवलज्ञानी आप्त पुरुषो को ईश्वर तुल्य मानता है तथा उन्ही के मंदिर आदि का निर्माण करवाकर उन्हें पूजा जाता है

2.6.1 भगवान महावीर का परिचय

महावीर जैन धर्म में वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौंबीसवें (२४वें) तीर्थंकर है। भगवान महावीर का जन्म करीब ढाई हजार साल पहले (ईसा से 599 वर्ष पूर्व), वैशाली के गणतंत्र राज्य क्षत्रिय कुण्डलपुर में हुआ था। महावीर को 'वर्धमान', वीर', 'अतिवीर' और 'सन्मति' भी कहा जाता है।

तीस वर्ष की आयु में गृह त्याग करके, उन्होंने एक लँगोटी तक का परिग्रह नहीं रखा। प्रभु महावीर प्रारंभिक तीस वर्ष राजसी वैभव एवं विलास के दलदल में 'कमल' के समान रहे। मध्य के बारह वर्ष घनघोर जंगल में मंगल साधना और आत्म जागृति की आराधना में, बाद के तीस वर्ष न केवल जैन जगत या मानव समुदाय के लिए अपितु प्राणी मात्र के कल्याण एवं मुक्ति मार्ग की प्रशस्ति में व्यतीत हुए।

हिंसा, पशुबलि, जात-पात का भेद-भाव जिस युग में बढ़ गया, उसी युग में भगवान महावीर का जन्म हुआ। उन्होंने दुनिया को सत्य, अहिंसा का पाठ पढ़ाया। तीर्थंकर महावीर स्वामी ने अहिंसा को सबसे उच्चतम नैतिक गुण बताया। उन्होंने दुनिया को जैन धर्म के पंचशील सिद्धांत बताए, जो है-

अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अचौर्य (अस्तेय) और ब्रह्मचर्य। सभी जैन मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका को इन पंचशील गुणों का पालन करना अनिवार्य है। महावीर ने अपने उपदेशों और प्रवचनों के माध्यम से दुनिया को सही राह दिखाई और मार्गदर्शन किया।

जनकल्याण हेतु उन्होंने चार तीर्थों साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका की रचना की। इन सर्वोदयी तीर्थों में क्षेत्र, काल, समय या जाति की सीमाएँ नहीं थीं। भगवान महावीर का आत्म धर्म जगत की प्रत्येक आत्मा के लिए समान था। दुनिया की सभी आत्मा एक-सी हैं इसलिए हम दूसरों के प्रति वही विचार एवं व्यवहार रखें जो हमें स्वयं को पसंद हो। यही महावीर का 'जीयो और जीने दो' का सिद्धांत है।

परस्परोग्रहो जीवानाम्' को मूल मंत्र मानने वाले जैन धर्म एवं दर्शन के सार्वभौमिक एवं सर्वकालिक सत्य सिद्धांतों ने विगत सहस्रों वर्षों में विश्वशांति में अनन्य योगदान दिया है तथा वर्तमान विश्व की ज्वलंत समस्याओं को भी जैन जीवन मूल्यों के द्वारा हल किया जा सकता है। जैन धर्म के अंतिम तीर्थकर महावीर स्वामी ने अहिंसक एवं अनेकांत की जो सूक्ष्म विवेचना की, उसका सम्पूर्ण मानवता पर गहरा प्रभाव पड़ा। महामानव महात्मा गाँधी ने जैनदर्शन को आत्मसात करके अहिंसक का एक ऐसा प्रायोगिक रूप प्रस्तुत किया जिससे पूरी दुनिया ने परतंत्रता के बंधन तोड़े। वस्तुत: 'गांधी' के पूरे जीवन एवं विचारों में जैन सिद्धान्तों के साक्षात् दर्शन होते हैं तथा 'गांधीवाद' आज विश्व की सबसे सशक्त, विचारधारा मानी जाने लगी है। अगर हम दूसरे के पक्ष को उसी के दृष्टिकोण से देखने की कोशिश करें तो कटुता और आंतकवाद दूर हो सकता है जिसके लिये आवश्यक 'माध्यस्थ भाव' जैन दर्शन ही सिखा सकता है। सभी जीवों पर दया एवं शाकाहार करने मात्र से खाद्यान्न समस्या, जल समस्या, ग्लोबल वार्मिंग इत्यादि को समूल नष्ट किया जा सकता है। यह अहिंसक कोई कोरी दार्शनिक अवधारणा मात्र नहीं है बल्कि इसके प्रचुर वैज्ञानिक तथ्य प्रामाणिक रूप से उपलब्ध हैं

2.6.2 भगवान महावीर शिक्षा

कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् महावीर ने अपने सिद्धांतों का प्रचार प्रारंभ किया। जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:-

- निवृत्तिमार्ग
- ईश्वर
- सृष्टि
- कर्म
- त्रिरत्न
- ज्ञान
- स्यादवाद या अनेकांतवाद या सप्तभंगी का सिद्धान्त
- अनेकात्मवाद

- निर्वाण
- कायाक्लेश
- नग्नता
- पंचमहाव्रत
- पंच अणुव्रत
- अठारह पाप

सात तत्त्व

जैन ग्रंथों में सात तत्त्वों का वर्णन मिलता हैं। यह हैं-

1. जीव- जैन दर्शन में आत्मा के लिए "जीव" शब्द का प्रयोग किया गया हैं। आत्मा द्रव्य जो चैतन्यस्वरुप है। [5]
2. अजीव- जड़ या की अचेतन द्रव्य को अजीव (पुद्गल) कहा जाता है।
3. आस्रव - पुद्गल कर्मों का आस्रव करना
4. बन्ध- आत्मा से कर्म बन्धना
5. संवर- कर्म बन्ध को रोकना
6. निर्जरा- कर्मों को क्षय करना
7. मोक्ष - जीवन व मरण के चक्र से मुक्ति को मोक्ष कहते हैं।

नौ पदार्थ

जैन धर्म ने मोक्ष को प्राप्त करने के तरीकों की भी सलाह दी है। इस संदर्भ में नौ तात्यावों का एक उल्लेख है। ये नौ सिद्धांत कर्म के सिद्धांत से जुड़े हुए हैं, वे "जीव, जीवन, पुण्य, पाप, आश्रव, बांधा, समर, निर्जरा और मोक्ष" हैं। जैन ग्रंथों के अनुसार जीव और अजीव, यह दो मुख्य पदार्थ हैं। आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य, पाप अजीव द्रव्य के भेद हैं।

छह द्रव्य

जैन धर्म के अनुसार लोक ६ द्रव्यों (substance) से बना है। यह ६ द्रव्य शाश्वत हैं अर्थात इनको बनाया या मिटाया नहीं जा सकता। यह है जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

पंचमहाव्रत

सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य- वे पांच महाव्रत हैं, जिनका विधान भिक्षुओं के पालनार्थ किया गया। इनका विवरण निम्नलिखित है:

i. **सत्य:** हित, मित, प्रिय वचन बोलना। सत्य के बारे में भगवान महावीर स्वामी कहते हैं, हे पुरुष! तू सत्य को ही सच्चा तत्व समझ। जो बुद्धिमान सत्य की ही आज्ञा में रहता है, वह मृत्यु को तैरकर पार कर जाता है।

ii. **अहिंसा:** किसी भी जीव को मन, वचन, काय से पीड़ा नहीं पहुँचाना। किसी जीव के प्राणों का घात नहीं करना। अहिंसा यह जैन धर्म का प्रमुख सिद्धांत है, जिसमें सभी प्रकार की अहिंसा के पालन पर बल दिया गया है। अहिंसा के पूर्ण पालन के लिए निम्नलिखित आचारों का निर्देश हुआ है- ;पद्ध इर्या समिति - संयम से चलना ताकि मार्ग में कीट-पतंगों के कुचलने से कोई हिंसा न हो जाए। ;पपद्ध भाषा समिति: संयम से बोलना ताकि कटु वचन से किसी को कष्ट न पहुंचे। ;पपपद्ध एषणा समिति: संयम से भोजन ग्रहण करना, जिससे किसी प्रकार भी कीड़े-मकोड़ों की हत्या न हो सके। ;पअद्ध आदान-निक्षेप समिति- किसी वस्तु को उठाने तथा रखने के समय विशेष सावधानी बरतना जिससे जीव की हत्या न हो जाए

iii. **अस्तेय: अस्तेय** का शाब्दिक अर्थ है - चोरी न करना। जैन धर्म में यह एक गुण माना जाता है। योग के सन्दर्भ में अस्तेय, पाँच यमों में से एक है। अस्तेय का व्यापक अर्थ है - चोरी न करना तथा मन, वचन और कर्म से किसी दूसरे की सम्पत्ति को चुराने की इच्छा न करना।

iv. **अपरिग्रह:** परिग्रह पर भगवान महावीर कहते हैं जो आदमी खुद सजीव या निर्जीव चीजों का संग्रह करता है, दूसरों से ऐसा संग्रह कराता है या दूसरों को ऐसा संग्रह करने की सम्मति देता है, उसको दुःखों से कभी छुटकारा नहीं मिल सकता। यही संदेश अपरिग्रह का माध्यम से भगवान महावीर दुनिया को देना चाहते हैं

v. **ब्रह्मचर्य:** महावीर स्वामी ब्रह्मचर्य के बारे में अपने बहुत ही अमूल्य उपदेश देते हैं कि ब्रह्मचर्य उत्तम तपस्या, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, संयम और विनय की जड़ है। तपस्या में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ तपस्या है। जो पुरुष स्त्रियों से संबंध नहीं रखते, वे मोक्ष मार्ग की ओर बढ़ते हैं।

अभ्यास प्रश्न

6. जैन धर्म का मूल सिद्धान्त क्या है?
7. जैन धर्म के महाव्रत क्या है?

2.7 शांति के संबंध में जैन धर्म के विचार

भगवान महावीर ने अपने प्रवचनों में धर्म, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, क्षमा पर सबसे अधिक जोर दिया। त्याग और संयम, प्रेम और करुणा, शील और सदाचार ही उनके प्रवचनों का सार था। भगवान महावीर ने चतुर्विध संघ की स्थापना की। देश के भिन्न-भिन्न भागों में घूमकर भगवान महावीर ने अपना पवित्र संदेश फैलाया। आत्म-अनुशासन और तपतंत्र जैन धर्म का मुख्य रूप है।

जैन प्रतीक चिह्न कई मूल भावनाओं को अपने में समाहित करता है। चिह्न के निचले भाग में प्रदर्शित हाथ अभय का प्रतीक है और लोक के सभी जीवों के प्रति अहिंसा का भाव रखने का प्रतीक है। हाथ के बीच में २४ आरों वाला चक्र चौबीस तीर्थंकरों द्वारा प्रणीत जिन धर्म को दर्शाता है, जिसका मूल भाव अहिंसा है धर्मचक्र, जो सच्चाई और अहिंसा के निरंतर पीछा के माध्यम से आसा (स्थलांतरण) को रोकने के संकल्प के लिए खड़ा है। जैन तीर्थंकर द्वारा उपदेश और अभ्यास के रूप में अहिंसा, शांति, गरीबी और मानवता के सामने आने वाले प्रदूषण की समस्याओं का एकमात्र उत्तर है। गैर हिंसा (अहिंसा) और सहिष्णुता जैन धर्म के 2 बहुत महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं।

वर्तमान अशांत, आतंकी, भ्रष्ट और हिंसक वातावरण में महावीर की अहिंसा ही शांति प्रदान कर सकती है। महावीर की अहिंसा केवल सीधे वध को ही हिंसा नहीं मानती है, अपितु मन में किसी के प्रति बुरा विचार भी हिंसा है। वर्तमान युग में प्रचलित नारा 'समाजवाद' तब तक सार्थक नहीं होगा जब तक आर्थिक विषमता रहेगी। एक ओर अथाह पैसा, दूसरी ओर अभाव। इस असमानता की खाई को केवल भगवान महावीर का 'अपरिग्रह' का सिद्धांत ही भर सकता है। अपरिग्रह का सिद्धांत कम साधनों में अधिक संतुष्टि पर बल देता है। यह आवश्यकता से ज्यादा रखने की सहमति नहीं देता है। इसलिए सबको मिलेगा और भरपूर मिलेगा। जब अचौर्य/ **अस्तेय** की भावना का प्रचार-प्रसार और पालन होगा तो चोरी, लूटमार का भय ही नहीं होगा। सारे जगत में मानसिक और आर्थिक शांति स्थापित होगी। चरित्र और संस्कार के अभाव में सरल, सादगीपूर्ण एवं गरिमामय जीवन जीना दूभर होगा। भगवान महावीर ने हमें अमृत कलश ही नहीं, उसके रसपान का मार्ग भी बताया है।

भगवान महावीर जब धरती पर अवतारित हुए थे तो भारतीय समाज में अनेक तरह की कुरीतियों के कारण लोगों का जीवन दुष्कर हो गया था। छुआछुत, ऊँच-नीच धनी और निर्धन के भेदभाव के कारण समाज में असमानता व्याप्त थी। महावीर स्वामी समाज के निम्न निर्धन लोगों की पीड़ा से दु:खी हुए। उन्होंने स्वयं राज पाट त्यागा और सन्यास लेकर तप करने निकल पड़े। कई वर्षों के कठिन तपस्या मय जीवन बिताने के बाद जो ज्ञान प्राप्त किया। वह व्यावहारिक व समाज को बदलने वाला था। महावीर ने समाज के दोषों का विवेचन किया और व्यावहारिक तथा सरल निष्कर्ष निकाले। महावीर स्वामी के ये शिक्षा संदेश आज की पीड़ित मानवता के लिए मार्ग दर्शन बन गये। अति तुच्छ भोग-विलास व सुख सुविधाओं को त्यागकर उन्होंने सरल, सादा व कर्तव्यनिष्ठ जीवन जीने की प्रेरणा दी। आज से ढ़ाई हजार से भी अधिक वर्ष पूर्व जैन परम्परा के चौबीसवें और अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने एक नये विश्व एवं एक नये समाज के निर्माण हेतु तीन महत्वपूर्ण सूत्रों का प्रतिपादन किया था- अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्तवाद। अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, सामाजिक, राजनीतिक एवं वैयक्तिक स्तर पर अनेक असमानताएं मौजूद हैं, जैसे साम्राज्यवादी गुलामी, अमीर-गरीब का भेंद, जातिगत या नस्लगत उंच-नीच, तानाशाही,

नर-नारी की असमानता, मानवाधिकारों का हनन आदि। इन गैर बराबरियों के विरूद्ध अनादि काल से संघर्ष चलता आ रहा है। कभी हिंसा के रास्ते से और कभी अहिंसा के रास्ते से।

हिंसा का रास्ता कभी कभी त्वरित सफलता देने वाला पाया गया है। परन्तु वह स्थायी और समाधानकारी परिवर्तन का मार्ग कभी नहीं रहा। स्थानीय और सुखद परिवर्तन के लिए तो हिंसा वालों को भी अंतत: अहिंसा का मार्ग ही अपनना पड़ता है। महावीर ने 'जीव' की अवधारणा को जितना व्यापक विस्तार दिया, उतना किसी भी अन्य धर्म में दिखाई नहीं देता। इस अवधारणा में पेड़-पोधों को भी समाहित कर लिया गया। महावीर का मानव जाति को सबसे बड़ा योगदान उनका वह दर्शन है, जिसमें हर 'जीव' की सुरक्षा की व्यवस्था है यही उनका अहिंसा का दर्शन हैं और पर्यावरण का सुदृढ़ सुरक्षा कवच भी। मनुष्य के हित में प्रकृति को बचाने की बात सभी करते है पर महावीर ने प्रत्येक जीव को बचाने की बात सोची। वस्तुत: हर जीव को बचाने का रूप देकर महावीर ने धरती को व उसके पर्यावरण को बचाने का दर्शन दिया है। सच तो यह है कि जब तक समाज में हर जीव को बचाने की जागृति पैदा नहीं होगी जंगलों को बचा पाना दुष्कर होगा। छले दिनों दुनिया भर में जो वैचारिक खुलापन आया है और उससे विश्व शांति की संभावना में जो स्वागत योग्य वृद्धि हुई है, वह अनेकातंवाद की महत्ता को रेखांकित करती है। महावीर का दिव्यदर्शित्व इसमें है कि उनके ये सिद्धान्त उनके काल की तुलना में आज विश्व और मानव समाज की परिस्थितियों में अधिक ही प्रासंगिक हो उठे हैं। यदि हम न्याय शांति, मैत्री और बंधुत्व पर आधारित नया मानवतावादी समाज और नयी विश्व व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं तो हमें तीर्थंकर महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा , अपरिग्रह और अनेकांत के सिद्धान्तों को उनका आधार बनाना ही होगा। परमात्मा परिग्रह नहीं करता। वह अपनी आवश्यक वस्तु रोज की रोज पैदा करता है। अत: यदि हमारा उस पर विश्वास है, तो हमें समझना चाहिए कि वह हमें आवश्यक चीजें रोज की रोज देता है, देगा। रोज के काम भर का रोज पैदा करने के ईश्वरीय नियमों को हम नहीं जानते अथवा जानते हुए भी पालते नहीं है। अत: जगत में विषमता और उससे होने वाले दु:ख भोगते हैं। यदि सब लोग अपनी आवश्यकता भर को ही संग्रह करें तो किसी को तंगी न हो और सबको संतोष रहे। यदि महावीर की इस शिक्षा का शतांश में भी पालन हो तो देश मिलावट, चोरबाजारी, मुनाफाखोरी, तस्करी, महंगाई, शोषण और आर्थिक गैर बराबरी के मारक नागपाश से मुक्त हो कर राहत की सांस ले सकेगा और इनके कारण जो लूट खसोट, झगडे हत्या और हिंसक संघर्षों का झमेला निरन्तर चलता रहता है, वह भी समाप्त हो जायेगा।सभी तरह के जीवन, मानवीय या गैर-मानवीय, में करुणा जैन धर्म का केंद्र है। मानव जीवन एक अद्वितीय, ज्ञान तक पहुंचने के एक दुर्लभ अवसर, किसी भी व्यक्ति की हत्या नहीं करने, इससे मतलब नहीं कि उसने क्या अपराध किया है, के अवसर के रूप में मूल्यवान है, जिसे अकल्पनीय घृणित माना जाता है। यह एक ऐसा धर्म है, जिसमें अपने सभी संप्रदायों और परंपराओं के भिक्षुओं और गैर-पादरी वर्ग की जरूरत होती है, उन्हें शाकाहारी होने की आवश्यकता होती है। भारत के कुछ क्षेत्र, जैसे गुजराती जैनियों से बहुत प्रभावित होते है और अक्सर पंथ के स्थानीय हिंदुओं का बहुमत शाकाहारी बन जाता है।

राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार -विश्व में शांति स्थापना के लिए अपने प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप भारत की इस समय जो स्थिति है, वह अद्वितीय है। भारत के नेताओं ने स्वतंत्रता की लड़ाई में और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भगवान महावीर के सत्य और अहिंसा प्रेम के उपदेश का अनुसरन किया, जो किसी जाति एवं समुदाय विशेष के लिए नहीं बल्कि समस्त विश्व के लिए था। महावीर ने सदियों पहले अहिंसा का पाठ पढ़ाया। महात्मा गाँधी ने भी ऐसे ही सन्देश दिये। अब आवश्यकता उन सिध्दांतों पर अमल करने की है। श्री महावीर स्वामी ने सहस्त्रों वर्ष पूर्व का जो उपदेश दिया था वह आजकल की घोर स्थितियों के सर्वथा अनुकूल है। उस समय भी विश्व और मानव समाज आज के समान ही हिंसा से उत्पीड़ित था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आज तक भारत ने जो तरक्की की है और संसार में उसका मान बढ़ा है, वह केवल इसलिए कि भारत आज की परिस्थितियों के अनुकूल शान्ति और अहिंसा के सिध्दांत में कोई त्रुटि है। हम भी उसे अपने जीवन में पूरी तरह नहीं उतार सके हैं। हमारे अपने देश में भी हम अहिंसा को मनुष्य तक ही सीमित रखना चाहते हैं, मनुष्य की खातिर अनेक जानवरों की हिंसा करनी पड़े तो वह वैध समझी जाती है।अहिंसा की वाणी अभी ह्रदय के अंतस्थल तक नहीं पहुँच सकी है। लेकिन हम उसे पूरी तरह समझे या न समझे हों यदि हम बाहय शक्ति पर भरोसा छोड़ कर मेल और सद्भावना पर अधिक भारोसा करने लग जायँ तो अहिंसा का दायरा केवल मनुष्य मात्र तक तक सीमित न रह कर जन्तुओं तथा प्राणी मात्र तक बढ़ सकता है। जिन्होंने अपने जीवन में अहिंसा को उतारने से कुछ हासिल किया है, उसे वे दूसरों में भी बांटे। अहिंसा से बड़ी कोई दूसरी चीज नहीं हो सकती। इसलिये उसे ज्यादा बांटना और फैलाना चाहिए। अभी यह तथ्य संसार के बहुत से लोगों के दिमाग में प्रवेश नहीं कर सका है। यह सिखाने का प्रयत्न भगवान महावीर स्वामी ने किया था। एक समय ऐसा आयगा जब लोग सैनिक शक्ति पर कम और विश्व शांति स्थापित करने के लिये मानव के बीच प्रेम, मैत्री तथा सद्भावना पर अधिक निर्भर रहेंगे। अहिंसा मानव मात्र के लिये अत्यन्त आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है, यदि मानव समाज को कायम रहना है तो अहिंसाव्रतियों को चाहिये कि वे वर्तमान युग की चुनौती स्वीकार करते हुए अहिंसा को अपने जीवन में उतार कर इस ढंग से दूसरों के सामने रक्खें जिससे सारा संसार उसे समझ सके और ग्रहण कर सकें। जैन धर्मवलम्बियों को चाहिए कि उनके जितने ग्रन्थों का आज तक प्रकाशन नहीं हो पाया है, उन्हें शीघ्रता पूर्वक और हो सके तो सरल अनुवाद या टीका के साथ छपवाना चाहिए। ताकि उन साधारण उनसे लाभ उठा सके। प्रकाशन का कार्य चल रहा है पर तेजी से नहीं हो रहा है। इसके अलावा इस बात का भी ध्यान रखा जाय कि प्रचार के काम में वैमनस्य न आय और न किसी दूसरे पर आक्षेप किए जायँ। सब को प्रेम से जीतने की कोशिश की जाय तभी सफलता मिलेगी। अहिंसा जैनों की सम्पत्ति है। जगत में अन्य किसी भी धर्म में अहिंसा सिध्दांत का प्रतिपादन इतनी सफलता से नहीं मिला।

2.7.1 जैन धर्म की प्रासंगिकता / सार्वभौमिकता शांति के संदर्भ में

जैन ग्रंथ भगवान महावीर एवं जैन दर्शन में जैन धर्म एवं दर्शन की युगीन प्रासंगिकता को व्याख्यायित करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि आज के मनुष्य को वही धर्म-दर्शन प्रेरणा दे सकता है तथा मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं के समाधान में प्रेरक हो सकता है जो वैज्ञानिक अवधारणाओं का

परिपूरक हो, लोकतंत्र के आधारभूत जीवन मूल्यों का पोषक हो, सर्वधर्म समभाव की स्थापना में सहायक हो, अन्योन्याश्रित विश्व व्यवस्था एवं सार्वभौमिकता की दृष्टि का प्रदाता हो तथा विश्व शान्ति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का प्रेरक हो। लेखक ने इन प्रतिमानों के आधार पर जैन धर्म एवं दर्शन की मीमांसा की है।

जैन का अर्थ है मनुष्य से प्रेम करना । जैन से युक्त व्यक्ति अपना भरण-पोषण करता हुआ दूसरों का भी भरण-पोषण करता है । अपना विकास करता हुआ दूसरों को भी विकसित होने में मदद देता है और अपने प्रति जैसे व्यवहार की अपेक्षा रखता है, दूसरों के प्रति भी ठीक उसी प्रकार का व्यवहार करता है । धर्म सबसे उत्तम मंगल है। अहिंसा, संयम और तप ही धर्म है। महावीरजी कहते हैं जो धर्मात्मा है, जिसके मन में सदा धर्म रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

अहिंसा- शांति, मैत्री और बंधुत्व पर आधारित व्यवस्था की स्थापना के लिए अहिंसा एकमात्र रास्ता है इस लोक में जितने भी त्रस जीव (एक, दो, तीन, चार और पाँच इंद्रिय वाले जीव) आदि की हिंसा मत कर, उनको उनके पथ पर जाने से न रोको। उनके प्रति अपने मन में दया का भाव रखो। उनकी रक्षा करो। यही अहिंसा का संदेश भगवान महावीर अपने उपदेशों से हमें देते हैं।

यह एक विशाल अवधारणा है और इसमें अहिंसा, कार्रवाई में, विचारों में, भावनाओं में और विस्तार से अभिव्यक्ति में शामिल है। यहां तक कि किसी के विश्वास को चोट पहुँचाओ, हिंसा भी शब्द, या लिखने या किसी अन्य रूप से किसी को भी उत्तेजित करती है, हिंसा और निषिद्ध है, जाहिर है क्योंकि यह हिंसा को प्राप्त करेगा। यही कारण है कि यहां भी जैन धर्म के अनुयायी, जो कि गृहस्थ हैं, केवल स्वयं का बचाव करने के लिए और किसी भी जीव (जिवा) पर हमला नहीं करने की अनुमति है। यह आत्मा का मुक्ति के उद्देश्य से जीवन का एक तरीका है

सही विश्वास, उचित व्यवहार और ज्ञान- जैन धर्म की शिक्षाओं के महत्वपूर्ण पहलू कुछ विचारों पर आधारित होते हैं, जो एक बेहतर शांतिपूर्ण जीवन में सहायता कर सकते हैं। महावीर ने विचारों पर जोर दिया, जैसे सही विश्वास, उचित व्यवहार और ज्ञान बहुत महत्वपूर्ण है। ये वास्तव में एक व्यक्ति के जीवन को आकार देते हैं विश्वास बहुत व्यक्तिगत है, जब तक यह समझ में नहीं आता है कि इसे उपयोगी माना जा सकता है, इसे पढ़ाया नहीं जा सकता है इसी प्रकार, मनुष्यों, जानवरों और पौधे सामग्रियों सहित सभी जीवित जीवों में शुद्ध आत्मा या आत्मा (जिवा, जो एक जैन शब्द है) है, जो अपने आप से मुक्त है और पूर्ण ज्ञान है यह शुद्ध भावना कर्म जैसी घनिष्ठ चीज़ों से घिरी हुई है, जो वास्तव में हमारे ज्ञान को समाप्त कर देती है, जो हमारी स्वतंत्रता को सीमित करती है और अंत में एक दूसरे के साथ हमें बांधती है। जैन धर्म में कर्म का एक अलग अर्थ है। यह जीवित प्राणियों, काम या काम के भाग्य को नियंत्रित करने वाली रहस्यमय शक्ति नहीं है, बल्कि यह एक बहुत ही अच्छे मामले के सम्मिश्रणों को संदर्भित करता है जो इंद्रियों से अप्रभावी है। एक आत्मा इस मामले के साथ अपनी बातचीत के साथ महान परिवर्तन से गुजरता है। महावीर कर्म में विश्वास करते थे और हमें कर्मा के दुख से मुक्ति और मोक्ष या निर्वाण प्राप्त करने के

लिए सिखाते हैं। महावीर को ईश्वर पर कोई विश्वास नहीं था लेकिन सभी आत्माओं में एक शक्ति के अस्तित्व पर विश्वास था, जो सर्वव्यापी है।

क्षमा- क्षमा के बारे में भगवान महावीर कहते हैं- 'मैं सब जीवों से क्षमा चाहता हूँ। जगत के सभी जीवों के प्रति मेरा मैत्रीभाव है। मेरा किसी से वैर नहीं है। मैं सच्चे हृदय से धर्म में स्थिर हुआ हूँ। सब जीवों से मैं सारे अपराधों की क्षमा माँगता हूँ। सब जीवों ने मेरे प्रति जो अपराध किए हैं, उन्हें मैं क्षमा करता हूँ।' वे यह भी कहते हैं 'मैंने अपने मन में जिन-जिन पाप की वृत्तियों का संकल्प किया हो, वचन से जो-जो पाप वृत्तियाँ प्रकट की हों और शरीर से जो-जो पापवृत्तियाँ की हों, मेरी वे सभी पापवृत्तियाँ विफल हों। मेरे वे सारे पाप मिथ्या हों।'

सहनशीलता- सहिष्णुता का कारण यह है कि पृथ्वी पर रहने वाले सभी प्राणियों में जीवन है, इसलिए उन्हें अस्तित्व का अधिकार है और इसलिए सभी को दूसरे के अस्तित्व के अधिकार का सम्मान करना चाहिए और जीवन का नेतृत्व करना चाहिए जो उसे सबसे अच्छा लगाता है- यहां तक कि एक कीट भी। सहिष्णुता फिर से एक कारण है जो अहिंसा को जन्म देती है।

जैन धर्म का मानना है कि हथियारों को प्रभावी ढंग से कोई जवाब नहीं दिया गया है। भगवान महावीर ने आचांगा सूत्र में स्पष्ट रूप से घोषित किया है कि एक हथियार दूसरे से बेहतर है, लेकिन अहिंसा या शांति का मार्ग नायाब रहता है। जैन तीर्थंकरों द्वारा प्रचारित अहिंसा अच्छी तरह से विश्व शांति की स्थापना में सहायक है। जैन अहिंसा का एक परिणाम यह है कि यह गैर-चोट के बौद्धिक पहलू पर बल देता है। यह उम्मीद करता है कि हम दूसरों के विचार, उपेक्षा या घृणा न करें।

निष्कर्ष

जैन धर्म का आज एक आधुनिक दृष्टिकोण है; यह आधुनिक दुनिया के लिए उपयुक्त रूप से फिट बैठता है महावीर ने एक जातिहीन, वर्ग के कम समाज के साथ कोई उच्च और निम्न, लिंग भेदभाव नहीं किया। उनकी शिक्षाओं ने जीने के लिए बेहतर आसन बनाने में मदद की है। जैन धर्म हमें सच्चा और ईमानदार होने के लिए सिखाता है, चोरी, झूठ और सामान्य असुरक्षा से ग्रस्त समाज सुरक्षित निकल जाने में मदद करता है। जैन धर्म हर जीवित मसले के बीच आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करता है इसलिए इसने शाकाहार और पशु बलि के परित्याग को प्रोत्साहित किया। यह सबसे मानवीय आधार से महत्वपूर्ण है और समाज में बदलाव लाया है। शांति और अहिंसा के आधार पर जैन धर्म में विशाल योगदान है।

अगर युद्ध, युद्ध और संघर्षों के कारणों का विश्लेषण किया जाता है, तो हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि हमारी बढ़ती हुई सामग्री, स्व-हितों, लालच, आपसी घृणा, व्यक्तिगत और साथ ही राष्ट्रीय स्वार्थ मुख्य कारक हैं । जैन धर्म का मानना है कि व्यक्तिगत सुधार सामाजिक सुधार के लिए अग्रणी स्वर्ण मार्ग है। हमारे व्यक्तिगत जुनून और बुराइयों का समाज पर प्रतिबिंब है। इसलिए नैतिक कोड हमें पूछताछ, सुधार और नैतिक रूप से नेतृत्व के लिए अन्य इंतजार किए बिना खुद को उत्थान करने के लिए कहता है। यदि हम भीतर व्यक्तिगत रूप से शांतिपूर्ण हैं, यह सांसारिक चीज़ों के लिए गैर-लगाव को प्रोत्साहित करता है

और अपनी स्वयं की संपत्ति को स्वेच्छा से सीमित करके समान सामाजिक क्रम के विकास को बढ़ावा देता है।

जैन धर्म की शिक्षा समानता, अहिंसा, आध्यात्मिक मुक्ति और आत्म-नियंत्रण के विचारों पर जोर देती है। महावीर ने युगों को सिखाया है, फिर भी आज के जीवन में इसका महत्व है। जैन एक महत्वपूर्ण धार्मिक समुदाय हैं और जैन धर्म जनसंख्या को समृद्ध बनाने के गुणों के विभिन्न सिद्धांतों पर उपदेश करते हैं।

इस प्रकार जैन धर्म नैतिकता और नैतिक रूप से जागरूक नागरिकों को विश्व शांति बनाए रखने में मदद कर सकता हैं। अगर नैतिक संहिता का पालन किया जाता है, तो राज्य के भारी काम को आसान बनाया जा सकता है और अन्य कल्याणकारी गतिविधियों के लिए करोड़ों रुपए बचाए जा सकते हैं। जैन धर्म शुद्ध, सरल और ईमानदार घरेलू जीवन पर जोर देते हुए, विश्व शांति के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।

अभ्यास प्रश्न

8. जैन धर्म के कौन कौन से तत्व विश्व शांति की स्थापना में सहायक है?
9. जैन धर्म की शिक्षा कौन कौन से विचारों पर जोर देती है?

2.8 सारांश

1. शास्त्रीय संस्कृत शंत में शांति के अर्थ में निकटतम शब्द है, जो आमतौर पर शांति, आनंद, शाश्वत आराम, और खुशी की व्याख्या करते हैं, लेकिन आमतौर पर यह शब्द विनाश, मृत्यु के संबंध में, और विद्रोह (अलग, अलगाव, शत्रुता) के विपरीत है। यहां शांति "अलगाव की अनुपस्थिति" (विगराभास्वा) या "संघर्ष या युद्ध की अनुपस्थिति" (यद्धभव) के विपरीत है।
2. 'अहिंसा के सिद्धांत का सबसे पहले गंभीरता से सुव्यवस्थित रूप से निर्माण व उसका उचित व मुख्य रूप से उपदेश जैन तीर्थंकरों द्वारा और खास तौर पर चौबीसवें अंतिम तीर्थंकर महावीर द्वारा हुआ और फिर महात्मा बुद्ध द्वारा।' – चीनी विद्वान डॉ. तानयुन शा
3. शांति के प्रति भारतीय दृष्टिकोण व्यक्तिगत स्तर पर शुरू होता है। इसलिए, यह सामूहिक, सामाजिक और बाद में राष्ट्रीय स्तर पर चलता है । शांति स्थापित करने के लिए व्यक्तियों द्वारा किए गए प्रयास अत्यंत महत्वपूर्ण हैं दूसरे शब्दों में व्यक्तिगत प्रयास शांति के निर्माण का निर्माण करने के लिए नींव का काम करते हैं।
4. तथागत बुद्ध ने अपने अनुयायिओं को चार आर्यसत्य, अष्टांगिक मार्ग, दस पारमिता और पंचशील आदी शिक्षाओं को प्रदान किए।
5. चार आर्य सत्य: दुःख, दुःख कारण, दुःख निरोध और दुःख निरोध का मार्ग

6. अष्टांगिक मार्ग: सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाक, सम्यक कर्म, सम्यक जीविका, सम्यक प्रयास, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि
7. पारमिता: दान पारमिता, शील पारमिता, क्षान्ति पारमिता, वीर्य पारमिता, ध्यान पारमिता, प्रज्ञा पारमिता, उपाय पारमिता, प्राणिधान पारमिता, बल पारमिता और ज्ञान पारमिता
8. पंचशील:अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, सत्य और नशा से विमुक्त
9. बौद्ध धर्मावलंबी मानते हैं कि विश्व शांति तभी हो सकती है, जब हम अपने मन के भीतर पहले शांति स्थापित करें। बौद्ध धर्म का स्वरूप व्यवहारिक है । बौद्ध धर्म मन से शांति का संचार करके उसका बाहर प्रसारण करना चाहता है। राजनैतिक स्तर पर बौद्ध धर्म किसी पक्ष में नहीं पड़ता है। उसके पास मैत्री का ही सबसे बड़ा बल है, जो तटस्थ है और सम्पूर्ण विश्व को अपने में समेटे हुए है।
10. बौद्ध धर्म की शिक्षा की सार्वभौमिकता शांति के संदर्भ में- मानव-समता, मानवश्रेष्ठता, व्यावहारिकता, आंतरिक शांति और ध्यान में पाया जाता है।
11. 'जैन धर्म' का अर्थ है - 'जिन द्वारा प्ररूपित धर्म'। जो 'जिनेश्वर' के अनुयायी हों उन्हें जैन कहते है तथा 'जिन' या 'जिनेश्वर' शब्द 'जि' धातु से बना है जिसका अर्थ जीतने वाला होता है अर्थात जिन्होंने अपने मन को जीत लिया,अपनी वाणी को जीत लिया और अपनी काया को जीत लिया, और विशिष्ट ज्ञान को पाकर सर्वज्ञ या पूर्णज्ञान प्राप्त किया उन आप्त पुरुष को जिनेश्वर या जिन कहते है !
12. जैन धर्म के पंचशील सिद्धांत बताए, जो है- अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अचौर्य (अस्तेय) और ब्रह्मचर्य।
13. महावीर की अहिंसा केवल सीधे वध को ही हिंसा नहीं मानती है, अपितु मन में किसी के प्रति बुरा विचार भी हिंसा है।
14. महावीर ने विचारों पर जोर दिया, जैसे सही विश्वास, उचित व्यवहार और ज्ञान बहुत महत्वपूर्ण है।
15. जैन धर्म ने मोक्ष को प्राप्त करने के तरीकों की भी सलाह दी है। इस संदर्भ में नौ तात्यावों का एक उल्लेख है। ये नौ सिद्धांत कर्म के सिद्धांत से जुड़े हुए हैं, वे "जीव, जीवन, पुण्य, पाप, आश्रव, बांधा, समर, निर्जरा और मोक्ष" हैं।
16. जैन धर्म की शिक्षा समानता, अहिंसा, आध्यात्मिक मुक्ति और आत्म-नियंत्रण के विचारों पर जोर देती है।

2.9 शब्दावली

1. पारमिता: 'परिपूर्णता' या कुछ गुणों का चरमोन्नयन की स्थिति, **सम्यक:** उचित, **आर्य:** शील, महानुभाव

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. शील, समाधि और प्रज्ञा
2. बौद्ध धर्म में 'परिपूर्णता' या कुछ गुणों का चरमोन्नयन की स्थिति को पारमिता या पारमी (पालि) कहा गया है।
3. भगवान बुद्ध ने दुःख, उसके कारण और निवारण के लिए अष्टांगिक मार्ग सुझाया।
4. बौद्ध धर्मावलंबी मानते हैं कि विश्व शांति तभी हो सकती है, जब हम अपने मन के भीतर पहले शांति स्थापित करें
5. मानव-समता, मानवश्रेष्ठता, व्यावहारिकता, आंतरिक शांति, ध्यान
6. अहिंसा जैन धर्म का मूल सिद्धान्त है।
7. जैन धर्म के पांच महाव्रत- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य हैं, जिनका विधान भिक्षुओं के पालनार्थ किया गया।
8. जैन धर्म की शिक्षा समानता, अहिंसा, आध्यात्मिक मुक्ति और आत्म-नियंत्रण के विचारों पर जोर देती है।
9. अहिंसा, आर्थिक समता, अपरिग्रह का सिद्धांत, अचौर्य/ अस्तेय की भावना, सरल, सादा व कर्तव्यनिष्ठ जीवन और अनेकान्तवाद

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. https://hi.m.wikipedia.org/wiki/महावीर
2. https://hi.wikipedia.org/wiki/**जैन_धर्म**
3. http://bharatdiscovery.org/india/**बुद्ध_की_शिक्षा**
4. http://www.futuresamachar.com/hi/jain-education-and-message-7821
5. https://hi.m.wikipedia.org/wiki/विश्व_शांति
6. http://www.jainsagar.com/vishav.html
7. http://hindi.webdunia.com/buddha-jayanti-special/buddha-purnima-116051700047_1.html
8. http://www.pravakta.com/teachings-of-mahavir-only-for-the-welfare-of-humans/
9. प्रमाणसागर, मुनि (२००८), *जैन तत्त्वविद्या*, भारतीय ज्ञानपीठ, आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-263-1480-5
10. जैन, विजय कुमार (२०११), *आचार्य उमास्वामी तत्त्वार्थसूत्र*, Vikalp Printers, आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-903639-2-1

11. आचार्य नेमिचन्द्र (२०१३), *द्रव्यसंग्रह*, Vikalp Printers, आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 81-903639-5-6
12. Sangave, Vilas Adinath (२००१), Facets of Jainology: Selected Research Papers on Jain Society, Religion, and Culture, Mumbai: Popular prakashan, आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 81-7154-839-3
13. Zimmer, Heinrich (1953), Campbell, Joseph, ed., Philosophies Of India, London, E.C. 4: Routledge & Kegan Paul Ltd, आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-208-0739-6
14. शास्त्री, प. कैलाशचन्द्र (२००७), *जैन धर्म*, आचार्य शांतिसागर 'छाणी' स्मृति ग्रन्थमाला, आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 81-902683-8-4

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. बुद्ध और जैन धर्म के अनुसार अहिंसाकी अवधारणा का विस्तृत विवरण दें
2. विश्व शांति के संदर्भ में बुद्ध और जैन धर्म के विचारों का तुलनात्मक वर्णन करें।

इकाई 3 - गांधी जी और शांति शिक्षा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 गांधी जी के अनुसार शांति के केंद्र
  3.3.1 मानवीय मूल्य
  3.3.2 अहिंसा
  3.3.3 सत्याग्रह
3.4 सर्वोदय और शांति
3.5 साधन और साध्य का नैतिक सम्बंध
3.6 शिक्षा और शांति
3.7 सारांश
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.10 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

गांधीवादी दर्शन, शिक्षा में प्रमुख भूमिका निभाता है। यह एक आदर्शवादी, प्रकृतिवादी, एवं व्यावहारिक दर्शन है। गांधी जी का शांति शिक्षा संबंधित दर्शन सत्य तथा अहिंसा से जुड़ा हुआ है। गांधी जी का नाम शांति और अहिंसा का समानार्थी है, यही कारण है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने उनके जन्म दिवस को विश्व-शांति दिवस घोषित किया है। मानवता हेतू गांधी जी का योगदान अतुलनीय है। इस इकाई में आप यह जानेंगे कि गांधी जी के दर्शन के अनुसार शांति शिक्षा क्या है और यह शिक्षा कैसे व्यक्तियों के साथ-साथ राष्ट्रों के बीच में शांति को बढ़ावा दे सकती है। आज दुनिया के कई हिस्सों में नागरिक हिंसक संघर्ष और युद्ध की स्थितियों से पीड़ित है। वर्तमान में वैश्विक स्तर पर आने वाली समस्याओं ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि हमें गांधी जी के शांति शिक्षा के दर्शन को व्यवहारिक स्तर पर लागू करने की आवश्यकता है। गांधी जी के शांति सिद्धांत में मानवीय मूल्यों का बहुत महत्व है। उनके अनुसार अहिंसा जीवन जीने का तरीका है और सत्याग्रह के साथ मिलकर अन्याय के खिलाफ लड़ने में सक्रिय संघर्ष में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप:

1. गांधी जी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा संबंधी दर्शन को जान पाएंगे।
2. गांधीजी के शांति शिक्षा दर्शन में सत्य अहिंसा सर्वोदय इत्यादि का विस्तार से अध्ययन कर पाएंगे।
3. गांधी जी द्वारा दिए गए साधन और साध्य के नैतिक संदर्भ तथा उसके निहितार्थ से परिचित होंगे।
4. गांधी जी द्वारा बताए गए शिक्षा व शांति के संबंध को समझ पाएंगे।

3.3 गांधी जी के अनुसार शांति के केंद्र

गांधीजी ने शांति शिक्षा का दर्शन एक व्यवस्थित संरचनात्मक तरीके से नहीं दिया है। वह कार्यकर्ता रहे हैं तथा व्यवहारिक दार्शनिक रहे हैं और उन्होने कोई अकाद्यिक व अमूर्त सिद्धांत नहीं दिए। अपितु उनका उपागम चिंतन, वार्तालाप तथा अपने कार्यों में लोगों (यहां तक कि अपने विरोधियों को भी) विश्वास में लेने और उन्हें प्रेरित करने का रहा है। उनका दार्शनिक निरूपण समाज व देश के सामने आ रही तात्कालिक समस्याओं से निर्देशित था। अतः गांधीजी के शांति सिद्धांत को समझने यह जानने की शांति के सिद्धांत पर हिंसा को वह किस दृष्टिकोण से देखते थे, हमें उनके जीवन को पढ़ना व समझना चाहिए। इस संदर्भ में उनके अभिव्यक्ति मेरा जीवन ही मेरा संदेश है, को अपनाना होगा तभी हम उनके परिपेक्ष्य को समझ पाएंगे।

3.3.1 मानवीय मूल्य

गांधी जी के शांति सिद्धांत में मानवीय मूल्यों जैसे सत्य, अहिंसा,त्याग, मानवता करुणा इत्यादि का बहुत महत्व है। उनके अनुसार अहिंसा जीवन जीने का तरीका है और सत्याग्रह के साथ मिलकर अन्याय के खिलाफ लड़ने में अन्याय के सामने निष्क्रिय झुकने तथा सक्रिय संघर्ष के बीच अंतर को स्पष्ट करती है।

संघर्ष के युग में किसी भी राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर (चाहे वह गांधीजी का समय हो या वर्तमान हो) गांधी यह मानते हैं कि व्यक्ति को अपने मन का अन्वेषण करने की आवश्यकता है। क्योंकि कुछ मूल्य (समाजिक और मानवीय) ऐसे हैं जिनके अनुपस्थिति में व्यक्ति समाज का हिस्सा नहीं बन सकता । गांधीजी ने उस सही मन की पुनरीक्षा की पैरवी की है जिस में मानवीय एकता, प्रेम, शांति के गुण हो, जो कुछ शाश्वत मूल्यों जैसे नैतिक, आध्यात्मिक, सार्वभौमिक मानवता से ओतप्रोत हो। गांधीजी के अनुसार इन मूल्यों के बिना व्यक्ति समाज का हिस्सा नहीं बन पाता है। किंतु दुर्भाग्य से ये गुण व मूल्य हमारी लापरवाही और असंवेदनशीलता के चलते हमसे खोते जा रहे हैं। परिणामस्वरुप हम जीवन का 'मानवीय' रूप में सामना कर पाने में असमर्थ हैं, और स्वयं की मानवता को भी नष्ट कर रहे हैं। गांधीवादी विचार युद्ध की भत्सर्ना तक ही सीमित नहीं है। उनका विचार गहरे विश्लेषण का परिणाम है उनके अनुसार

युद्ध तब तक नहीं रुक जा सकते जब तक कि इसके बीज व्यक्तियों के अंदर, उनके सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन में बचे रहेंगे।

3.3.2 अहिंसा

समाज का ढांचा बदलते मानवीय मूल्यों पर टिका है यह कभी भी समाप्त नहीं होता है और एक उत्पाद के रुप में नहीं देखा जा सकता यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। गांधीजी के अनुसार अहिंसा समाज के इस निरंतर बदलते ढांचे का ध्यान रखते हुए व्यक्तियों को साथ लाने व संबंधों को बेहतर बनाने का प्रयास करती है क्योंकि यह व्यक्तियों में आंतरिक एकता के भाव से ही उत्पन्न होती है। अतः गांधीजी ने स्वैच्छिक तरीके से 'स्व' को संभावनाएं विकसित करने, तथा हिंसा पर पार पाने का एक साधन विकसित किया है, जो नैतिक संदर्भ में संबंधों को बदलने उन्हें एकीकृत करने में दिशा प्रदान करेगा। उन्होंने इस तकनीक या जीवन के तरीके को ही सत्याग्रह का नाम दिया है। गांधी जी ने जोर देकर कहा है कि अहिंसा की सक्रिय अवस्था व्यक्ति विशेष को गलत करने वाले का विरोध करने की आवश्यकता महसूस करवाती है। *वे कहते हैं कि यह सिद्धांत का मामला है न कि योग्यता का (अर्थात व्यक्ति सैधांतिक तौर पर अहिंसा में विश्वास रखता है इसलिये इस मार्ग को चुनता है, न कि इसलिये कि वह कमजोर है और हिंसा नही कर सकता*)।

अहिंसा की प्रेम के साथ तादात्म्यता स्थापित करके गांधी इस बात को रेखांकित करते हैं कि सत्याग्रह में रचनात्मकता और पुनर्निर्माण तथा अंतर व्यक्तिगत संबंध महत्वपूर्ण है। उनके द्वारा दिया गया वाक्य "विश्व में सभी व्यक्ति भाई हैं", यह मात्र एक नारा नहीं है। यह इस बात को स्थापित करता है कि सार्वभौमिक स्तर पर मानवीय पीड़ा समान रूप से पाई जाती है और मनुष्य में परिवर्तन लाने की क्षमता भी पाई जाती है। गांधीजी मानते हैं कि अहिंसा कोई रणनीति नहीं है बल्कि यह दूसरों के साथ एकता स्थापित करने का साधन है, अहिंसा निःशब्द है और यह प्रेम और करुणा भाव के दिवालियापन से उत्पन्न होती है। इसकी शुरुआत तर्कसंगत संवाद व संप्रेषण के बंद होने, दूसरों के साथ नकारात्मक विनाशकारी संवाद के अलावा सभी संवादों के रास्ते बाधित होने पर होती है। गांधीजी की अहिंसा की अवधारणा न तो कोई भावुकता है न ही कोई धार्मिकता बल्कि यह बुराई की वास्तविकता का खंडन है।

उनके अनुसार उनके अनुसार किसी भी सत्याग्रही का पहला कर्तव्य है कि वह बुराई/अन्याय जिसकी उसे जानकारी है, को वह सामने लाएगा चाहे इसके लिए उसे कोई कीमत चुकानी पड़े। साथ ही अहिंसक साधन होने चाहिए क्योंकि सत्य और प्रेम हमारे अस्तित्व का सार है, यदि प्रेम और अहिंसा हमारे तरीके नहीं है तो हमारा तर्क टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। अहिंसा बुराई को न केवल एक बार में खत्म करती है, बल्कि प्रतिदिन इसका विरोध करने और इसपर काबू पाने का रास्ता भी हमें दिखाती है। तथा इंसान संबंधों को बदलने में, उन्हें अच्छा करने की ओर प्रयत्नशील होती है। अतः यह व्यक्ति विशेष में खास तरह का साहस भर देती है जो कि हिंसा से बहुत दूर होता है व्यक्ति लगातार क्षमा करना, परस्पर मुक्ति देना आदि की ओर अग्रसर होता है।

गांधी जी का यह सिद्धांत केवल भारतीय संदर्भ पर आधारित नहीं है यह वैश्विक स्तर पर मानव की मूलभूत व सामान्य आवश्यकता पर आधारित है। गांधी जी का उपाय बहुत क्रांतिकारी व दूरदर्शी रहा है वह हिंसा को व्यक्ति विशेष के अंदर उसके वातावरण से जड़ से निकाल देने की पैरवी करते हैं। गांधी जी ने जिस सही मन की बात की है वह मन असहिष्णुता व आरोपों के विभाजनों से दूर है। यह मन एकता से परिपूर्ण, समझ भाव से पूर्ण, अनंत प्रेम से पूर्ण, शांति हेतु कार्यरत जिसमें शांति जीवन का तरीका है। यहां शांति से तात्पर्य युद्ध की समाप्ति युद्ध के बीच की अवधि से नहीं है, यह उस विभाजन को कम करने का भाव है, जो कि आंतरिक व बाह्य विभाजन में सद्भाव हेतु सकारात्मक दिशा प्रदान करता है। गांधीजी भी नफरत में असहिष्णुता की वास्तविकता को समझते थे क्योंकि उन्होंने अपने जीवन में स्वयं इसका अनुभव किया हुआ था।

3.3.3 सत्याग्रह

सत्याग्रह को परिभाषित करते हुए गांधीजी कहते हैं कि सत्याग्रह या आत्मा बल को अंग्रेजी में पैसिव रेजिस्टेंस कहा जाता है, जिन लोगों ने अपने अधिकार पाने के लिए खुद दुख सहन किया था, उनके दुख सहने के ढंग के लिए यह शब्द प्रयोग में लाया गया है। उसका ध्येय लड़ाई के ध्येय से उल्टा है। गांधीजी कहते हैं कि जो मुझे कोई काम पसंद नहीं आए और मैं वह काम में न करुं तो उसमें मैं सत्याग्रह या आत्मा बल का प्रयोग करता हूं। मिसाल के तौर पर मुझ पर लागू होने वाला कोई कानून सरकार ने पास किया वह कानून मुझे पसंद नहीं है, और अगर मैं सरकार पर हमला करके यह कानून रद्द करवाता हूं तो यह कहा जाएगा कि मैंने शरीर बल का उपयोग किया। अगर मैं उस कानून को मंजूर ही ना करू और उस कारण से होने वाली सजा भुगत लू तो कहा जाएगा कि मैंने आत्म बल या सत्याग्रह से काम लिया। सत्याग्रह में मैं अपना ही बलिदान देता हूं। जब गांधी जी से यह सवाल पूछा गया कि जो कानून बन चुके हैं उन्हें तो मानना ही चाहिए लेकिन कानून खराब हो तो उनको बनाने वालों को मार कर भगा देना चाहिए। वे कहते हैं "हम कानून को मानने वाली प्रजा है इसका सही अर्थ तो यह है कि हम सत्याग्रही प्रजा है। कानून जब पसंद नहीं आए तब हम कानून बनाने वालों का सिर नहीं तोड़ते बल्कि उन्हें रद्द करवाने के लिए खुद उपवास करते हैं खुद दुख उठाते हैं।"

गांधीजी पूछते हैं कि "सरकार तो कहेगी कि हम उसके सामने नंगे होकर नाचे तो क्या आप नाचेंगे? अगर मैं सत्याग्रही हूं तो सरकार से कहूंगा कि यह क्या कानून आप अपने घर में रखिये, मैं न तो आपके सामने नंगा होने वाला हूं और ना ही मैं नाचने वाला हूं।"

शांति पर गांधी के परिप्रेक्ष्य को समझने की कुंजी उनके द्वारा दिए गए कार्य के तरीके जिसने भी जिसे वह सत्याग्रह कहते हैं, को समझना आवश्यक है। उनका कहना है कि दमनकारी को नष्ट करने पर उसका विनाश करने के लिए हिंसा का चक्र शुरू होता है। वह कहते हैं कि वास्तविक मुक्ति वह है जो उत्पीड़क व उत्पीड़ित दोनों को मुक्त करें सत्याग्रही हिंसा के बजाय आत्म पीड़ा का विकल्प चुनता है और अपनी आत्मा पीड़ा को सहन करने के लिए आंतरिक शक्ति अनिवार्य है। आत्म पीड़ा जीवन को अधिक सक्षम

व्यक्तिगत रुप से समृद्ध बनाती है। वास्तव में गांधी इस बात पर जोर देते हैं कि बुराई पर विजय आत्म पीड़ा से पाई जा सकती है साथ ही प्रतिद्वंद्वी पर काबू पाने का एक ही रास्ता है कि उसकी बुराई से निकलने में मदद की जाए। एक सच्चा सत्याग्रही हिंसा का उपयोग करने से इसलिए नहीं बचता क्योंकि वह इंसान करने में समर्थ नहीं है, बल्कि वह आत्म पीड़ा का चुनाव करता है। गांधी जी कहते हैं कि जो व्यक्ति झुक जाता है किंतु उसके मन में घृणा होती है और मौका पाने पर स्वयं को दुख पहुंचाए बिना अपने विरोधी को मार सकता है वह इंसान आत्म पीडा से बहुत परे है। ऐसा समर्पण कभी भी आत्म पीड़ा का हिस्सा नहीं बन सकता है।

3.4 सर्वोदय और शांति

गांधीजी के शांति पर दृष्टिकोण को समझने के लिए आवश्यक है कि उनके सर्वोदय के लक्ष्य को भी समझा जाए। सर्वोदय से उनका तात्पर्य सबके लिए, जिसने बिना किसी भेदभाव, गरीबी, अमीरी, कमजोरी, मजबूती के सब शामिल हैं, के कल्याण से है। सर्वोदय न केवल गांधी जी का मुख्य उद्देश्य था बल्कि यह उनके शांति प्राप्ति व सद्भाव बनाए रखने हेतु सिद्धांत की मुख्य आवश्यकता भी बना। सर्वोदय सामाजिक हित में व्यक्तिगत समर्पण की मांग करता है यह न्यासिता (ट्रस्टीशिप) की अवधारणा को रेखांकित करता है तथा सभी की सामाजिक सेवा की अनिवार्यता को सुनिश्चित करती है। यह आर्थिक समानता का रास्ता भी है, और शोषण को समाप्त करने का भी। गांधीजी कहते हैं कि मैं न्यासिता का पालन करता हूं, चाहे लोग उसका उपहास उड़ाएं। यह सच है कि इसे प्राप्त करना बहुत मुश्किल है, यही बात अहिंसा पर भी लागू होती है। सर्वोदय तथा न्यासिता इस बात को मान्यता देते हैं कि किसी भी प्रकार का शोषण व आर्थिक असमानता समाप्त होनी चाहिए।

गांधीजी सर्वोदय की संकल्पना में समाज की आर्थिक समता को देखते हैं जहां बिना क्रूर अनिवार्यता और हिंसा के समाज के प्रत्येक निचले तथा अंतिम व्यक्ति तक पहुंचा जा सके। वे मांते हैं कि मनुष्य का सर्वोच्च परीक्षण उसके आर्थिक व नैतिक विकास के संतुलन में होता है। सर्वोदय के रुप में गांधी जी एक सामाजिक क्रांति का, एक शांतिपूर्ण व्यवहारिक तरीका सूझा रहे थे, जो जीवन की गुणवत्ता की बेहतरी की सुनिश्चितता करता है। इसका प्रभाव 1950 में भूदान आंदोलन में दिखाई पड़ा जहां लोगों ने सामूहिक उत्पादन हेतु स्व-हित को त्यागकर भूमि दान की एक सामूहिक पहल की।

3.5 साधन और साध्य का नैतिक सम्बंध

गांधीजी के शांति की अवधारणा में साधन और साध्य के बीच का संबंध बहुत ही महत्वपूर्ण है । उनके अनुसार अकेले साध्य कभी भी साधनों का औचित्य निर्धारित नहीं कर सकते हैं। उनका मानना था कि साधन भी साध्य के जितने ही महत्वपूर्ण होते हैं और उनके चुनाव में कोई कोताही नहीं बरती जानी चाहिए।

हिंद स्वराज में गांधी जी टिप्पणी करते हैं

"(यदि) आप मानते हैं कि साधन और साध्य के बीच कोई संबंध नहीं है। यह बहुत बड़ी भूल है, इस भूल के कारण जो लोग धार्मिक कहलाते हैं, उन्होंने घोर दुष्कर्म किए हैं। यह तो धतूरे का पौधा लगाकर मोगरे के फूल की इच्छा करने जैसा हुआ। मेरे लिए समुद्र पार करने का साधन जहाज ही हो सकता है अगर मैं पानी में बैलगाड़ी डाल दूं, तो वह गाड़ी और मैं दोनों समुद्र की तह में पहुंच जाएंगे। 'जैसे देव वैसी पूजा' यह वाक्य सोचने लायक है इसका गलत अर्थ करके लोग भुलावे में पड़ गए हैं। यहाँ साधन बीज है और साध्य हासिल करने की चीज, पेड है। इसलिए जितना संबंध बीज और पेड़ के बीच है उतना ही साधन और साध्य के बीच है। शैतान को भजकर मैं ईश्वर भजन का फल पा जाऊ, यह कभी हो ही नहीं सकता। इसलिए यह कहना कि हमें तो ईश्वर को ही पाना है, साधन भले शैतान हो बिल्कुल अज्ञान की बात है। जैसी करनी वैसी भरनी।" (हिंद स्वराज)

वह आगे कहते हैं "मुझे अगर आपसे आपकी घड़ी छीन लेनी है तो बेशक आप के साथ मुझे मार पीट करनी होगी लेकिन अगर मुझे आपकी घड़ी खरीदनी है तो आप को दाम देने होंगे। अगर मुझे बख्शीश के तौर पर आपको घड़ी लेनी होगी तो मुझे आपसे विनती करनी होगी। घड़ी पाने के लिए मैं जो साधन काम में लूंगा उसके अनुसार वह चोरी का माल, मेरा माल या बख्शीश की चीज होगी। तीनो साधनों के तीन अलग-अलग परिणाम आएंगे। तब आप कैसे कह सकते हैं कि साधन की कोई चिंता नहीं।" (हिंद स्वराज)

गांधी जी ने भारतीय विद्यालयों के संचालन हेतु शराब पर लगाए गए राजस्व से लिए गए पैसे का विरोध जताया था। उनका मानना था कि यह साधन राजस्व पवित्र नहीं है। अतः साध्य यानि बच्चों की शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित करेगा। इसी के चलते वे विद्यालयों के आर्थिक-स्वावलम्बन की वकालत भी करते थे उनके अनुसार पढ़े-लिखे भारतीयों द्वारा 'नौकरशाही में भ्रष्टाचार' का एक कारण साधन और साध्य की असंगतता ही है।

गांधीजी के सिद्धांत में सत्य और अहिंसा का संयोजन साधनों के चुनाव की समस्या को हल करने में सहायक है। अपने जीवन में सत्य के साथ प्रयोगों से वह सिद्ध कर पाये कि सत्य और अहिंसा एक दूसरे में गुथे होते हैं।

चोर व्यक्ति के साथ बर्ताव से भी उसके स्वभाव को बदला जा सकता है । गांधीजी कहते हैं कि "कभी मौका मिलने पर आप उसे समझाने के बारे में आप्ने सोचा है? क्या आप्ने कभी सोचा है कि वह भी हमारे जैसा आदमी है? उसने किसी इरादे से चोरी की यह आप को क्या मालूम? आप के लिए अच्छा रास्ता तो यही है कि जब मौका मिले, तब आप उस आदमी के भीतर से चोरी का बीज निकालने मे मदद करे। जब आप यह सोच रहे

हैं और इतने में वह भाई साहब फिर से चोरी करने आते हैं, तब आप नाराज नहीं होते, आप को उस पर दया आती है। आप सोचते हैं कि यह आदमी रोगी है। आप खिड़की-दरवाजे खुले कर देते हैं, आप अपनी सोने की जगह बदल देते हैं। आप अपनी चीजें ऐसी जगह लाकर रख देते हैं जहाँ से चोर आराम से ले जा सके, चोर आता है, वह घबराता है। यह सब उसे नया ही मालूम होता है, माल तो वह ले जाता लेकिन उसका मन चक्कर में पड़ जाता है। वह गांव में जांच पड़ताल करता है। आपकी दया के बारे में उसको मालूम होता है,वह पछताता है और आपसे माफी मांगता है। आपकी चीजें वापस ले आता है, वह चोरी का धंधा छोड़ देता है, आपका सेवक बन जाता है, आप उसे काम धंधे से लगा देते हैं।"(हिंद स्वराज)

गांधीजी कहते हैं कि मैं यही दिखाना चाहता हूं कि अच्छे नतीजे लाने के लिए अच्छे ही साधन चाहिए, और अगर सब नहीं तो ज्यादातर मामलों में हथियार बल से आत्म बल ज्यादा ताकतवर होता साबित होता है। हथियार से हानि है, और दया से कभी हानि नहीं होती। दया बल आत्म बल है सत्याग्रह है और इस बल के प्रमाण पग पग पर दिखाई देते हैं। अगर यह बल नहीं होता तो पृथ्वी रसातल में पहुंच गई होती। दुनिया में कितने लोग आज भी जिंदा है यह बताता है कि दुनिया का आधार हथियार बल पर नहीं है परंतु सत्य दया व आत्मा बल पर है इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि दुनिया लड़ाई के हंगामे के बावजूद टिकी हुई है। इसलिए लड़ाई के बल के बजाए दूसरा ही बल उसका आधार है।

3.6 शिक्षा और शांति

'अगर हम विश्व को वास्तविक शांति का पाठ पढ़ाना चाहते हैं तो हमें शुरुआत बच्चों से करनी होगी'

गांधीजी ने व्यक्तित्व एवं सामाजिक स्तर पर समग्र विकास हेतु शिक्षा को महत्वपूर्ण बताया है। बच्चों को शिक्षा दी जानी चाहिए ताकि वे मानवतावाद, न्याय, नैतिकता व शांति के मूल्य विकसित कर पाये । वे मानते हैं कि 'सर्वोदय समाज' के निर्माण हेतु ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है। वे कहते हैं कि हमें बच्चों को इस बात से अवगत करवाना चाहिए कि शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व प्रत्येक नागरिक से संबंधित होता है। अतः उन्हें सांप्रदायिक दबावों, धार्मिकता, क्षेत्रीयता व अन्य हितों से ऊपर उठकर शांतिपूर्ण सहअस्तित्व में अपनी भूमिका निभानी पड़ेगी। शिक्षकों को यह पारस्परिक सामंजस्यपूर्ण संबंध स्थापित करने हेतु औपचारिक व अनौपचारिक दोनों ही माध्यमों का प्रयोग करने की आवश्यकता है। गांधी जी द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा अहिंसा के मूल्य पर आधारित थी उनके अनुसार इस शिक्षा व्यवस्था में हस्तकला, स्वास्थ्य, व शिक्षा का एकीकृत रूप है, जो बच्चों के चहुमुखी विकास के लिए आवश्यक है।

धार्मिक शिक्षा के संदर्भ में गांधी जी का 'सर्वधर्म समभाव' का नजरिया था। उनके अनुसार यह विचार धार्मिक समूहों में व्याप्त तनाव का सामना करने के लिए एक प्रभावी उपकरण है। गांधी जी के अनुसार किसी भी विद्यालयी पाठ्यक्रम में विभिन्न धर्मों के अध्ययन को शामिल किया जाना चाहिए। उनके अनुसार सभी धर्म शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का मूल्य सिखाते हैं। बच्चों को विश्व के मुख्य धर्मों के बारे में

जानने, समझने तथा उनकी प्रशंसा का मौका दिया जाना चाहिए। विश्व शांति के संदर्भ में यह बहुत महत्वपूर्ण है।

वह कहते हैं कि नैतिकता व ईमानदारी का गुण बच्चों में शिक्षा द्वारा विकसित किया जाना चाहिए। शिक्षा एक और तो विद्यार्थियों में उच्च नैतिकता, आत्म-नियंत्रण और सही सोच का विकास होना चाहिए दूसरी ओर उनसे समाज में 'सेवा प्रदान' किए जाने की उम्मीद की जानी चाहिए। इसके अंतर्गत माता-पिता, बड़ों, शिक्षकों का सम्मान, बच्चों के साथ प्रेम पूर्वक व्यवहार, सामाजिक परंपराओं का पालन और अपनी जिम्मेदारियों के कर्तव्यों के प्रति लगातार जागरूकता आती है।

यदि गांधीजी के शिक्षा व्यवस्था संबंधी विचारों को लागू किया जाए तो वर्तमान समय की न केवल सामाजिक आर्थिक चुनौतियां अपितु नैतिक दुविधाओं को दूर करने की दिशा में लंबे कदम उठाए जा सकते हैं। गांधीजी की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मानव को आंतरिक व बाह्य दासता से मुक्ति दिलाने का था। शिक्षा मानव को सत्य के मार्ग पर चलने हेतु पथ प्रदर्शक का कार्य भी करती है। गांधीजी के अनुसार अहिंसा के व्यापक ढांचे में धार्मिक और नैतिक शिक्षा एक दुसरे की पूरक हैं, तथा शांति शिक्षा के केंद्र बिंदु है। उनके अनुसार शांति शिक्षा में शांति निर्माण कौशल जैसे वार्ता, मध्यस्थता, शांति हेतु प्रयास करने का कौशल आदि विकसित करना शामिल है। अतः शांति शिक्षक आपसी सम्मान, समझ व अहिंसा जैसे गुणों पर ध्यान देता है। वे कहते हैं कि मूल्य शिक्षा व्यक्ति के नैतिक विकास के लिए आवश्यक है, जबकि शांति शिक्षा पूरी मानवजाति के लिए महत्वपूर्ण है।

वे कहते हैं कि हमें बच्चों में इस भावना का विकास करना चहिये कि सत्य का आधार अहिंसा होती है, और सत्य को अपनाकर ही हमें सकारात्मक फल प्राप्त होते हैं। सत्याग्रह अहिंसा का व्यवहारिक प्रयोग है और यह दूसरों को दुख देने की वजह स्वयं जलकर, न्याय प्राप्त करने की विधि है। गांधी जी के अनुसार हमें ऐसे व्यक्ति तैयार करने हैं जो विश्व को शांति की और ले जाये ना कि केवल ऐसे व्यक्ति जो सिर्फ शांति उपभोक्ता हो। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो आत्मानुशासन पर ध्यान दें, ऐसा आत्मानुशासन जो अहिंसक व्यवहार को बढ़ावा देता है। वे कहते हैं कि बच्चों को हमें घटनाओं को व्यापक व दूरदर्शी परिप्रेक्ष्य से देखने योग्य बनाने की आवश्यकता है। शिक्षक को प्रत्यक्ष ना कहकर अपने व्यवहार में बच्चों को सिखाना चाहिए कि सर्व व्यापक साध्य एक ऐसा साध्य है, जो कठोर अनुशासित जीवन, निर्धनता, अहिंसा, विनम्रता द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

यदि सत्य का आचरण पूर्ण रूप से ना किया जाए तो ही अच्छा अशांति पैदा होती है। यह आवश्यक है कि संघर्ष को हल करने के लिए शिक्षक स्वयम गैर हिंसा का सहारा नहीं लेता बल्कि शांति का मार्ग चुनता है। यदि शिक्षक पिटाई का सहारा लेते हैं, तो उनकी अनुपस्थिति में बच्चे भी दूसरों को पीट्कर उनपर आधिपत्य जमाने की कोशिश करते हैं।

3.7 सारांश

गांधीजी के लिए जो भविष्य था वह आज हमारा वर्तमान है, फिर भी आज हम उन्ही मौलिक समस्याओं का सामना कर रहे हैं, जो गांधी जी के समय में थी। आज का युग भी संघर्ष का युग है, कहीं राष्ट्रों के बीच संघर्ष है तो कहीं लोगों/समुदायों के बीच। राष्ट्र के अंदर भी अपनी समस्याएं हैं जैसे जातिगत भेदभाव, धार्मिक भेदभाव, आर्थिक भेदभाव, नस्लीय भेदभाव आदि। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अभी भी उपनिवेशवाद के बाद के विभाजित राष्ट्रों में परस्पर द्वंद बने हुए हैं, और आज भी विनाश का खतरा लगातार बना हुआ है। वर्तमान में हिंसा के साधन और बढ़ गए हैं तथा तकनीकी तौर पर कहीं तो अधिक विध्वंसकारी व प्रभावी हो गए हैं। अगर इनको प्रयोग में लाया जाए तब मानवजाति खत्म हो सकती है। आज विश्व स्तर पर हिंसा व युद्ध में सही,गलत व न्याय भावना लगभग समाप्त हैं। आज यह तथ्य निर्विवाद रुप से सत्य है कि राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर युद्ध हिंसा का प्रयोग संघर्ष व्यक्तियों को समाप्त करने के लिए होता है, किंतु वह और अधिक विवाद अहिंसा को जन्म देते हैं। इस तथ्य को जानने के बावजूद हम हिंसा पर संघर्ष व विवादों को हल करने हेतु भरोसा कर लेते हैं। हालांकि यह भी सच है कि आधुनिक युग की जटिलताएं मानव संगठनों में तकनीकी प्रगति और मानव मन पर लगातार बढ़ते दबाव के चलते मानवीय अनुभवों में विभिन्न स्तरों पर संघर्ष तो पैदा होते ही हैं, किंतु यह आवश्यक नहीं है कि हम विनाशकारी युद्ध में अनियंत्रित हिंसा को मानव जीवन का सामान्य हिस्सा मान ले। गांधीजी के शांति के प्रति दृष्टिकोण में उनके सत्याग्रह, सत्य, अहिंसा, व साधन-साध्य में नैतिक संबंधों को ध्यान में रखकर अगर हम वर्तमान स्थितियों की पड़ताल करेंगे तो जान पाएंगे कि मानव आचरण में परिवर्तन लाकर विश्व को संघर्ष व विवादों से बचाया जा सकता है।

इकाई 5- जिददु कृष्णमूर्ति और शांति शिक्षा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 विश्व में अशांति का कारण
5.3.1 डर और सुरक्षा की चाह
5.3.2 धर्म पर निर्भरता
5.3.3 विचारधारा और बाह्य संस्थाओं पर निर्भरता
5.4 विश्व-शांति 'व्यक्तिगत जिम्मेदारी' है
5.5 शांति स्थापना में शिक्षा की भूमिका
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 संदर्भ ग्रंथ सूची तथा सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.9 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

जिद्दू कृष्णमूर्ति का जन्म 11 मई 1985 में दक्षिण भारत के एक छोटे से कस्बे मदनपल्ली में हुआ। डॉक्टर एनी बेसेंट, अध्यक्ष थियोसोफिकल सोसायटी, ने कृष्णमूर्ति को बचपन में ही गोद ले लिया था। डॉक्टर एनी बेसेंट व अन्य व्यक्तियो ने घोषणा की, कि कृष्णमूर्ति भविष्य में विश्वगुरु बनेंगे तथा विश्व को एक नई राह दिखाएंगे। इसके साथ ही विश्व को इस शिक्षक हेतु तैयार करने के लिए पूर्व में 'आर्डर ऑफ़ द स्टार' नाम का संगठन बनाया गया तथा कृष्णमूर्ति को इसका अध्यक्ष बनाया गया ।

हालांकि 1929 में कृष्णमूर्ति ने स्वयं इस संगठन को भंग कर दिया तथा इस संगठन के लिए दी गई अनुदान राशि व संपत्ति को वापस कर दिया। इसके पश्चात वे लगभग अगले 60 वर्षों तक दुनिया की यात्रा करते रहे और बड़ी सभाओ में तथा व्यक्तिगत रूप से लोगों से मानव जाति में एक क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता के बारे में बातचीत करते रहे।

कृष्णमूर्ति वैश्विक स्तर पर एक महान शिक्षक व विचारक माने जाते हैं। हालांकि उन्होंने किसी धर्म के दर्शन का विस्तार नहीं किया फिर भी दैनिक जीवन संबंधित विषयों पर दार्शनिक दृष्टिकोण से विवेचन किया है। जिसमें उन्होंने दैनिक जीवन की समस्याएं, आधुनिक समाज में हिंसा व भ्रष्टाचार के साथ रहने की समस्याएं, व्यक्तियों की 'सुरक्षा' व 'चाह' संबंधित मुद्दे तथा मनुष्य द्वारा अपने आंतरिक बोझ (भय,

गुस्सा, चोट, दुःख इत्यादि) से मुक्त होने जैसे कई मुद्दे शामिल किए हैं। उन्होंने मनुष्य के मन की कार्यप्रणाली को गहन तरीके से विश्लेषित किया है, और बताया है कि हमें दैनिक जीवन में गहन ध्यान व आध्यात्मिक गुणवत्ता लाने की आवश्यकता है।

कृष्णमूर्ति किसी भी धार्मिक संगठन, संप्रदाय, राजनीतिक, वैचारिक विचार के समूह के सदस्य नहीं रहे हैं। बल्कि वे कहते हैं कि ये सब संगठन मनुष्यों को विभाजित करते हैं तथा युद्ध व संघर्षों को जन्म देते हैं। इस इकाई में आप उनके इन विचारों का विस्तार से अध्ययन करेंगें। कृष्णमूर्ति का शांति का दृष्टिकोण सकारात्मक एवं रचनावादी हैं, क्योंकि वह 'प्रसन्नता', 'स्वास्थ्य', 'स्वतंत्रता', व 'सृजनात्मकता' आदि की बात करते हैं। यह सम्पूर्ण मानव जाति के उद्देश्यों को पूरा करते हुए मानवता में सुधार का रास्ता दिखाते हैं।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:-

1. वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में अशांति के मुख्य कारणों को जान पाएंगे ।
2. कृष्णमूर्ति द्वारा प्रतिपादित शांति शिक्षा संबंधी विचार जान पाएंगे।
3. शांति के संदर्भ में आप 'व्यक्तिगत जिम्मेदारी' के महत्व से अवगत होंगे।
4. कृष्णमूर्ति द्वारा प्रतिपादित 'सही शिक्षा' के संप्रत्यय को समझ पाएंगे।
5. शांति लाने में शिक्षा व शिक्षकों की भूमिका से परिचित होंगे।

5.3 विश्व में अशांति का कारण

कृष्णमूर्ति कहते हैं कि आज हमने एक और तकनीकी स्तर पर बहुत तरक्की पा ली है, किंतु सभ्यता के इस मोड़ पर भी हम मानवीय संबंधों के स्तर पर कुछ खास बेहतर नहीं कर पाए हैं। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि हमने तकनीकी जानकारी हासिल कर ली है, किंतु तकनीक विनाश का साधन बन गई है और उसका उदाहरण विश्व में हो रहे युद्ध हैं, आज हम परमाणु का विखंडन करना जानते हैं किंतु उसका उपयोग मानव जाति के विनष्ट विनाश में कर रहे हैं। आज हम तकनीक द्वारा अनाज का \ उत्पादन कई गुना बढ़ा सकते हैं फिर भी विश्व में दिन-ब-दिन भुखमरी से मरने वालों की संख्या बढ़ रही है। वैश्विक स्तर पर शोषण, द्वंद्व, संघर्ष लगातार बढ़ रहे हैं और मानव जीवन में तनाव, द्वेष, कटुता, और घृणा बढ़ती जा रही है।

कृष्णमूर्ति के अनुसार वर्तमान विश्व संकट को समझने हेतु यह आवश्यक है कि हम यह जाने कि यह संकट आया कैसे होगा। उनका तर्क यह है कि यह स्पष्ट रुप से हमारे गलत मूल्यों हुए संबंधों जिनमें व्यक्तियों संपत्ति तथा विचारों के साथ संबंध शामिल हैं, का परिणाम है। एक अन्य संभावित कारण हमारे प्रभुता पर निर्भरता भी है क्योंकि जब हम प्रभुता/प्राधिकार का पालन करते हैं तब हमें केवल भय व अनुरूपता उत्पन्न होती है। जैसे ही हम किसी विचारधारा विश्वास या नियम-कानून या विधान को मानकर उसके अनुरूप व्यवहार करते हैं तो यह प्रक्रिया अधिनायकवादी राज्य की क्रूरता व संगठित धर्म की मतांधता

को आगे बढ़ाने में सहायक हो जाते है। विभिन्न विश्वास एवं विचारधाराएं व संगठित धर्म हमें हमारे ही पड़ोसियों से अलग कर रहे हैं। अतः संघर्ष न केवल विभिन्न समाजो में ही पाया जा रहा है अपितु एक समाज के विभिन्न समूहों में भी पाया जाता है।

कृष्णमूर्ति के अनुसार राष्ट्रीयता, धर्म, जाति इत्यादि विभाजन हम में लगातार दूरी को बनाए रखता है, और परिणाम-स्वरुप हम में से कोई भी यह मूलभूत बात कि अंततः हम सब मानव है, और अलग नहीं है, समझ नहीं पाते हैं। कृष्णमूर्ति के अनुसार 'मानवता की जागरुकता' हम सब में पाई जाती है। उनके अनुसार व्यक्तित्वता एक भूलावा हो सकती है, मनोवैज्ञानिक स्तर पर हम सब (वैश्विक स्तर)एक जैसे हैं।

कृष्णमूर्ति के अनुसार युद्ध हमारे दैनिक जीवन का विनाशकारी प्रभाव हैं, और जब तक हम अपनी रोजमर्रा की जिंदगी को नहीं बदलेंगे कोई भी कानून, बाहरी नियंत्रण या प्रतिबंध युद्ध को नहीं रोक सकते हैं। वे कहते हैं कि कोई भी बाहरी कानून/ नियंत्रण युद्ध को नहीं रोक सकते हैं वे पहले हमारे अंदर से रोके जाने चहिये । हमें खुद से यह पूछना चहिये कि क्या हमारे मन में और हमारे हृदय में शांति है? क्या हमारी दैनिक जीवन-शैली द्वंद्व रहित व शांतिपूर्ण है? क्या हम यह मानते हैं कि यह केवल सरकारों द्वारा जारी किए गए विधान में या कानूनों द्वारा ही लागू की जा सकती है?

उनके अनुसार मानव प्रजाति के प्रारंभ से ही हमे शांति की प्राप्ति नहीं हुई है। मनुष्य ने शांति हेतु बहुत सारी संस्थाएं भी स्थापित की हैं किंतु आज भी वह इन युद्ध रोककर शांति की स्थापना को नहीं कर पाया है। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि स्वयं की गहरी समस्या से शुरू होने वाली शांति के लिए सरकारों पर निर्भर करना, संगठनों और सत्ता अधिकारियों से आशा करना और अधिक व्यापक द्वंद्व को पैदा करना है।

कृष्णमूर्ति के अनुसार यदि हम वर्तमान परिस्थितियों में परिवर्तन चाहते हैं, तो हमें पहले अपने में परिवर्तन लाना होगा। यानी कि हमें प्रतिदिन के जीवन में अपनी क्रियाओं, विचारों और भावनाओं के प्रति जागरूक होना होगा। कृष्णमूर्ति तो यहां तक कहते हैं कि वास्तव में हम सब शांति चाहते ही नहीं, हम शोषण का अंत भी नहीं करना चाहते। हम नहीं चाहते कि हमारी लोलुपता में कोई बाधा पडे या वर्तमान सामाजिक ढांचे के आधारों में परिवर्तन किया जाए। वे कहते हैं कि हम में से अधिकतर लोग नही चाहते कि आमुलचूल परिवर्तन आये, हम चाहते हैं कि वस्तुए जैसी है वैसी ही रहे, हमारे अनुसार और हमारे लाभ के अनुसार थोडे परिवर्तन के बाद वे वैसे ही बनी रहे। और इसी कारण शक्तिशाली और धूर्त व्यक्ति निश्चित ही हमारे जीवन पर शासन करते रहेंगे।

कृष्णमूर्ति के अनुसार शांति किसी विचार प्रणाली से पैदा नहीं होती वह कानून पर आश्रित नहीं होती, वह तभी संभव होती है जब व्यक्ति के रूप में हम स्वयं अपनी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को समझने लगते हैं। शांति स्थापित करने के लिए यदि हम व्यक्तिगत रूप से कार्य करने के लिए अपने दायित्व से बच कर किसी नई समाज-व्यवस्था की प्रतीक्षा करेंगे तो हम उन उस व्यवस्था के केवल दास बनकर रह जाएंगे।

5.3.1 डर और सुरक्षा की चाह

कृष्णमूर्ति के अनुसार सुख-सुविधा की खोज में हम जीवन का कोई शांत व न्यूनतम द्वंद्व वाला कोना खोज लेते हैं। और फिर हमें उस कोने से बाहर निकलने, नये अनुभव करने, संघर्ष करने व जीवन में परीक्षण करने में डर लगता है। साथ ही हम सत्ता, परंपरा व आस-पास के वातावरण के सामने

आत्मसमर्पण कर देते हैं, और उसका अनुकरण करने लगते हैं। मनुष्य को इस अनुबंधन से मुक्ति की आवश्यकता है तभी वे शांति की ओर जा सकते हैं। मनुष्य सदैव ही सुरक्षा की चाह रखता है। किंतु क्या यह सुरक्षा बाहर तत्वों या ताकतों द्वारा पाई जा सकती है? कृष्णमूर्ति के अनुसार संबंधों में सुरक्षा ही मूल सुरक्षा है। उनके अनुसार ज्यादा दूर तक पहुंचने के लिए हमें पास से शुरुआत करनी होगी, हमें अपने संबंधों को अपने संबंधियों अपने पड़ोसियों के साथ सुधारने की आवश्यकता है। उनके अनुसार हमारी मनःस्थिति बाह्य कायदे, कानूनों, व सरकारों इत्यादि से अधिक महत्वपूर्ण है। कृष्णमूर्ति पूछते हैं क्या हमारी जीवनशैली में शांति है या यह केवल सरकारों द्वारा जारी किए गए कानूनों द्वारा ही लागू की जा सकती है? वह कहते हैं कि मुझे डर है कि हम में से अधिकतर लोगों के लिए शांति कानून व्यवस्था से संबंधित मुद्दा है, और हममें से कोई भी मन व हृदय की शांति को लेकर चिंतित नहीं हैं। इसीलिए विश्व में शांति संभव नहीं हो पायी है। दुनिया में शांति (आंतरिक और बाह्य) तब तक संभव नहीं है, जब तक हम महत्वाकांक्षी हैं, हम प्रतिस्पर्धी हैं। जब तक हम स्वयं इस खोखली अस्मिताओं का शिकार बने हुए हैं जो स्वयं को एक जर्मन/एक हिंदू/ एक रूसी/ या एक अंग्रेज मानने व इस दुनिया में मैं कुछ या कोई बनने को आतुर रहती है। हमारी इन अस्मिताओं के चलते हमारा मस्तिष्क अनुबंधित (कंडिश्न्ड)रहता है, और हम परम्परा, धर्म, जाति, समुदाय इत्यादि के अनूरूप कार्य करते हैं। वे कहते हैं कि हमें इन अनुबंधनो को समझकर इनसे बाहर आने की जरुरत है।कृष्णमूर्ति के अनुसार शांति तभी संभव है जब व्यक्ति इन सब बातों को समझता है और इस 'भ्रष्ट समाज' में सफलता हासिल करने की दौड़ व स्वार्थ से परे हो जाता है।

5.3.2 धर्म पर निर्भरता

जैसा के ऊपर चर्चित किया गया है कि मनुष्य विभिन्न सुविधाओं से अनुबंधित होता है और उसके अनुरुप कार्य करता है। धर्म इन्ही अस्मिताओं में महत्वपूर्ण अस्मिता व अनुबंधन है जो व्यक्ति विशेष के दैनिक जीवन के व्यवहार को प्रभावित/ निश्चित करता है। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि धर्म शांति का स्रोत नहीं बन सकते। चूंकि धर्म विचारों द्वारा निर्मित होते हैं, अतः विश्व को पूर्णता में समझने में हमारी मदद नहीं कर सकते, और अलगाव का स्रोत बनते हैं। उनके अनुसार विचार हमारे अनुभवों का परिणाम होते हैं तथा व्यक्तिगत अनुभवों की सीमा पाई जा सकती है। अतः विचार सदैव सीमाबद्ध होते हैं। और ये सीमाबद्ध विचार जिस भी धर्म को जन्म देंगे वो विश्व की पूर्ण समझ नही रख सकते, और वे अलगाव को जन्म देते हैं।

कृष्णमूर्ति के अनुसार भौतिक परिवर्तन के बजाय हमें दैनिक जीवन की गतिविधियों में आमूलचूल परिवर्तन करने की जरूरत है। बिना इन आमूलचूल परिवर्तनों के विश्व में युद्ध को समाप्त नहीं किया जा सकता।

5.3.3 विचारधारा और बाह्य संस्थाओं पर निर्भरता

कृष्णमूर्ति के अनुसार केवल स्वैच्छिक कार्य ही नैतिक और उचित कार्य होते हैं और केवल वही मनुष्य के लिए सुख और शांति ला सकते हैं, जो कार्य हम बाहरी दबाव से करते हैं वे शांति नही ला सकते। हम

किसी विशेष राजनीतिक या धार्मिक समूह के सदस्य हैं, हम इस देश के हैं या हम उस देश के हैं, ऐसा बार-बार कहना हमारे अहंकारों को बढ़ावा देता है, और हमें गुब्बारे की तरह फुला देता है। और यह तब तक जारी रहता है, जब तक हम अपने देश जाति अथवा विचार प्रणाली के लिए मरने और मारने के लिए तैयार नहीं हो जाते। यह सब कितना मूर्खतापूर्ण और अस्वभाविक है। राष्ट्रीय और सैद्धांतिक सीमाओं की अपेक्षा मनुष्य निश्चित ही कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

राष्ट्रवाद पर भी कड़ा प्रहार करते हुए वह कहते हैं कि राष्ट्रवाद वाली वर्गीकरण की भावना आग की तरह विश्व में चारों ओर फैल रही है अधिकाधिक विस्तार, व्यापक अधिकार और समृद्धि चाहने वाले लोग राष्ट्रभक्ति का संवर्धन करते हैं, और बड़ी धूर्तता से इसका इस्तेमाल करते हैं। हममें से प्रत्येक व्यक्ति इस प्रक्रिया में भाग लेता है क्योंकि हमें भी इन वस्तुओं की अभिलाषा है। दूसरे देशों पर विजय हमें केवल अपने माल के लिए ही नहीं बल्कि अपनी राजनीतिक और धार्मिक विचार प्रणालियों के लिए भी एक नया बाजार उपलब्ध कराती है। वह कहते हैं कि हमें हिंसा तथा वह मनुष्य की इन सभी अभिव्यक्तियों को पूर्वाग्रहरहित होकर देखना चाहिए, यानि एक ऐसे मन से जो किसी राष्ट्र, जाति या विचार प्रणाली के साथ अपना तादात्म्य नहीं करता, बल्कि जो कुछ सत्य है उसका पता लगाने का प्रयत्न करता है। चाहे सरकार हो विशेषज्ञ हो या कोई विद्वान किसी की भी शिक्षाओं अवधारणाओं के प्रभाव में न आकर हमें हर वस्तु को साफ साफ देखने में अधिक आनंद आता है ।

कृष्णमूर्ति राष्ट्र संघ (यूनाइटेड नेशन) जैसी संस्थाओं पर भी गहरा प्रहार करते हुए कहते हैं कि हमारी वर्तमान सामाजिक संस्थाएं विश्व संघ में विकसित नहीं हो सकती क्योंकि उनका आधार ही दोषपूर्ण है । राष्ट्रीय प्रभुत्व एवं समूह के महत्व को बढ़ावा देने वाली संस्था और शिक्षा प्रणाली कभी भी युद्ध का अंत नहीं कर सकेंगी। शासक और शासित के रूप में व्यक्तियों के अलग-अलग समूह युद्ध की जड़ है जब तक मनुष्य मनुष्य के बीच रिश्ते में हम शांति कायम नही करेंगे तब तक शांति सम्भव नही है।

5.4 विश्व-शांति 'व्यक्तिगत जिम्मेदारी' है

कृष्णमूर्ति के अनुसार केवल शांतिपूर्ण मन, जो स्वयं को समझता है, वही मन दुनिया में शांति ला सकता है। दुनिया में व्याप्त अशांति हुए युद्धों को समाप्त करने का रास्ता कृष्णमूर्ति के अनुसार स्वयं के आंतरिक द्वंदों और स्वयं से युद्ध को समाप्त करने के रास्ते से ही होकर जाता है। दुनिया में व्याप्त अशांति दुख व युद्धों को तब रोका जा सकता है, जब व्यक्ति विशेष मानव जाति के ऊपर इन के खतरों को महसूस करें अपनी जिम्मेदारी महसूस करें, न कि इसे दूसरों पर डाल दें।

जब तक व्यक्ति इनसे स्वयं को पीड़ित महसूस नहीं करेगा, तब तक वह तत्काल कार्यवाही की जरूरत भी महसूस नही करेगा, और तुरंत कार्यवाही को स्थगित नहीं करेगा। तभी वह स्वयं को बदलेगा। शांति तभी आएगी जब व्यक्ति स्वयं शांतिपूर्ण होगा। जब वह अपने पास पड़ोस के साथ शांतिपूर्ण संबंध स्थापित करेगा। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि हमें शांति के कार्य को दूसरों पर छोड़ने की बजाय स्वयं से शुरुआत करनी होगी। अतः दुनिया में शांति लाने के लिए और युद्ध की समाप्ति के लिए व्यक्ति विशेष में आंतरिक क्रांति

होनी आवश्यक है। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि कुछ समाज विज्ञानी व सिद्धांतकार शांति हेतू समाज में आर्थिक क्रांति व समानता की पैरवी करते हैं, किंतु इनका का मत है कि व्यक्तिगत आंतरिक क्रांति के बिना आर्थिक क्रांति अर्थहीन है। क्योंकि भूख उन आर्थिक परिस्थितियों की उपज है, जो हमारी मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों जैसे लालच ईर्ष्या बुरे स्वभाव से उत्पन्न होती है अतः दुखों, भूख,व युद्ध की समाप्ति हेतु मनोवैज्ञानिक क्रांति होनी चाहिए।

कृष्णमूर्ति इस बात पर जोर देते हैं कि व्यक्ति विशेष का समाज के प्रति उत्तरदायित्व पाया जाता है। वह अपने विद्यार्थियों को कहते हैं 'आप ही समाज है' और आपके कार्य ही समाज के कार्य है। व्यक्ति विशेष के कार्य अन्य व्यक्तियों के कार्यों को प्रभावित करते हैं। वह कहते हैं कि शांति के समझ स्वयं की समझ के साथ शुरू होती है। स्वयं की समझ जिसमें हमारे विचार व कार्य शामिल हैं। उनके अनुसार किसी भी बदलाव हेतू मनुष्य का आंतरिक नवीनीकरण होना आवश्यक है।

हमारे बाह्य जगत में परिवर्तन लाने की पहली शर्त स्वयं में बदलाव करने की है, जिसके लिए हमें दैनिक जीवन में स्वयं के कार्यों, विचारों एवं भावनाओं को समझना आवश्यक है। कृष्णमूर्ति के अनुसार शांति किसी विचारधारा द्वारा लागू नहीं की जा सकती है। न ही किसी कानून पर आधारित होती है। यह केवल तभी संभव होती है, जब हम सब व्यक्ति अपने मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को समझने लगे। यदि हम इस पर व्यक्तिगत जिम्मेदारी को नहीं समझेंगे, और किसी बाहरी व्यवस्था का इंतजार करेंगे, तो फिर हमें उस व्यवस्था की दासता करनी पड़ेगी।

5.5 शांति लाने में शिक्षा की भूमिका

वर्तमान में जब से शांति शिक्षा की विद्यालयों में आवश्यकता एवं अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में इसे शामिल किए जाने की बात की जाती है, तो कृष्णमूर्ति के विचार इस संदर्भ में शिक्षकों को छात्रों के प्रति संवेदनशील बनाने में अधिक प्रासंगिक हो जाते हैं। उन्होंने अपने संपूर्ण जीवन इस बात की हिमायत की, की शिक्षा आंतरिक परिवर्तन व व्यापक स्तर पर समाज में परिवर्तन लाने का अभिकारक बन सकती है। कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा एक ऐसी नीव का कार्य कर सकती है, जिसपर समाज अपना निर्माण कर सकता है। वह कहते हैं कि वर्तमान शिक्षा दुनिया की समस्याओं को समझने और व्यक्तियों को इन समस्याओं का सामना करने हेतु तैयार करने में विफल रही है। कयोंकि वर्तमान शिक्षा के उद्देशय और शिक्षायी व्यवस्था दोनो ही त्रुतिपूर्ण हैं।

कृष्णमूर्ति कहते हैं अगर हम लोगों को केवल काबिल इंजीनियर, प्रतिभाशाली वैज्ञानिक, सक्षम प्रशासक और कुशल कारीगर बनाने के लिए शिक्षित कर रहे हैं, तो ऐसी शिक्षा शोषक और शोषित के बीच की /दरार कभी खत्म नहीं कर सकेगी। पर हम यह देख सकते हैं कि हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली मनुष्यों के बीच जो बैर और विद्वेष पैदा करने वाले तमाम कारणों को बनाए रखती है। यह उन पर सवाल नही करती, यह विध्यर्थियो को उन पर स्वतंत्र चिंतन और राय बनाने के मौके भी नही देती ।

वे पूछते हैं कि क्या शिक्षा में सैनिक प्रशिक्षण का कोई स्थान है? यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि हम अपने बच्चों को किस प्रकार का मनुष्य बनाना चाहते हैं। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि यदि हम उन्हें एक कुशल हत्यारे बनाना चाहते हैं तो सैनिक प्रशिक्षण जरूरी है। यदि हम उन्हें अनुशासित करना चाहते हैं, और उनके मन को नियंत्रित करना चाहते हैं, यदि हमारा लक्ष्य उनको राष्ट्रवादी बनाना है और इस प्रकार संपूर्ण समाज के लिए गैर जिम्मेदार बनाना है। तो यह काम ही है कि वह युद्ध की योजनाएं बनाए और उन्हें लागू करें। लेकिन अगर हम शांति चाहते हैं, हम चाहते हैं कि बच्चे समन्वित, पूर्ण मनुष्य बने तो उन्हे एक अलग तरह की शिक्षा देनी होगी। ऐसी शिक्षा को वो 'सही शिक्षा' का नाम देते हैं उनके अनुसार शिक्षा सही शिक्षा वह होगी जो बच्चो में:

- दूसरों के लिए सम्मान का दृष्टिकोण विकसित करे
- संवेदनशील मनुष्यों का विकास करे
- सर्जनात्मक मनुष्यों का विकास करे
- संपूर्ण मनुष्य का विकास करे
- स्वयं को समझने में मदद करे
- स्वयं को समझने में मदद करे
- दूसरों के साथ संबंधों को समझने में मदद करे
- सही संबंधों का विकास करे

बच्चे परिवार व पास पडोस से बहुत सारे अलगाववादी और भ्रामक मूल्यों को पाते हैं, विद्यालय भी इन अलगाववादी अस्मिताओं को बनाए रखता है, और वह उन पर प्रहार नहीं करता। बच्चे की सही ढंग से परवरिश के लिए इन मूर्खतापूर्ण पूर्वाग्रहों को देखने व समझने की दृष्टि उसमें पैदा करने के लिए हमें उनके बहुत ही निकट आना होगा। बच्चे का बिना किसी पूर्वाग्रह के विकास हो सके, इसके लिए पहले हमें अपने अंदर के सारे पूर्वाग्रह को तोड़ना होगा और फिर अपने परिवेश के पूर्वाग्रहों को तोड़ना होगा। हमें बच्चों से बातचीत करनी होगी और उनमें बुद्धिमत्तापूर्ण परिचर्चाओं को सुनने का मौका देना होगा। उन परिचर्चाओं में पहले से ही मौजूद खोजबीन तथा असंतोष की भावना को प्रोत्साहन देना होगा और इस प्रकार सच और झूठ की परख करने में उनकी मदद करनी होगी।

कृष्णमूर्ति कहते हैं कि लगातार असंतोष से ही सृजनशील प्रज्ञा आती है, लेकिन खोजबीन और असंतोष को जगाए रखना बहुत कठिन होता है। और ज्यादातर माता-पिता और शिक्षक यह नहीं चाहते कि उनके बच्चों में इस प्रकार की प्रज्ञा का विकास हो, क्योंकि ऐसे किसी व्यक्ति के साथ रहना बड़ा ही असुविधाजनक होगा जो मान्यता प्राप्त मूल्यों को हमेशा चुनौती देता है। वह कहते हैं कि बचपन से हम सभी में असंतोष होता है लेकिन दुर्भाग्य से हमारा संतोष धीरे ही शीघ्र ही मुरझा जाता है और दूसरों की नकल करने की हमारी प्रवृत्ति और प्रभुत्व की पूजा से वह दब जाता है।

वह शिक्षा के ऊपर सरकारी नियंत्रण किसी को भी एक विपत्ति के तौर पर देखते हैं। उनके अनुसार जब तक शिक्षा राज्य या संगठित धर्म की दासी है, तब तक विश्व में शांति व्यवस्था की कोई उम्मीद नहीं की जाती है। वे कड़े शब्दों में कहते हैं कि अधिकांश सरकार बच्चों को तथा उनके भविष्य को अपने कब्जे में ले रही हैं और यदि कहीं सरकार नियंत्रण नहीं चाहती तो वहां धार्मिक संगठन हैं, जो शिक्षा को अपने कब्जे में लेना चाहते हैं। वह कहते हैं कि राजनीतिक या धार्मिक किसी भी तरह की विचारधारा के अनुकूल बनने के लिए बच्चे के मन को संस्कारबंद्ध करने का अर्थ है मनुष्य- मनुष्य के बीच डर पैदा करना। स्पर्धारत समाज में भाईचारा हो ही नहीं सकता। कोई भी सुधार, या अधिनायकवाद, या शिक्षा प्रणाली ऐसे समाज में बंधुत्व की भावना नहीं ला सकती।

मौजूदा विश्व संकट से शिक्षा का घनिष्ठ संबंध है और जो शिक्षक इस वैश्विक दुर्व्यवस्था के कारण को देखता है उसे अपने से यह प्रश्न करना चाहिए कि छात्र में इस बुद्धि को कैसे जगाया जाय और किस प्रकार आने वाली पीढ़ी को और अधिक घोर विनाश पैदा करने से रोका जाए? शिक्षकों को उचित प्रकार के परिवेश का सृजन करने में तथा जीवन बोध का विकास करने में अपनी समस्त विचार-क्रिया, समस्त सावधानियां तथा समस्त प्रेम को लगा देना चाहिए ताकि वह बच्चा परिपक्व हो, वह समस्याओं का विवेक पूर्ण ढंग से सामना कर सके। परंतु ऐसा करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक विचार प्रणालियों व्यवस्था और विश्वासों पर निर्भर रहने की बजाय स्वयं अपने को समझे।।

वे कहते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में भी ऐसे लोगों की आवश्यकता है, जिनमें सहानुभूति तथा प्रेम हो, जिनके हृदय खोखले शब्दों से यह मन की कल्पनाओं से भरे न हो। अगर जीवन का अर्थ है खुशी से जीना, समझदारी के साथ मिलकर जीना और अगर हम ऐसा सच्चा प्रबुद्ध समाज बनाना चाहते हैं तो हमारे पास ऐसे शिक्षक अवश्य होने चाहिए जिनमें मानवीय अखंडता का बोध हो और उस बात को वह बच्चे तक पहुंचाने में काबिल हो।

5.6 सारांश

इस इकाई में आपने कृष्णमूर्ति के शांति शिक्षा संबंधी विचार जाने । आप यह जान पाए होंगे कि कृष्णमूर्ति शांति स्थापना में व्यक्ति विशेष की जिम्मेदारी को रेखांकित करते हुए उसे मानवता के संदर्भ में व्यवस्था लाने का महत्व पूर्ण बिंदु बताते हैं ।वे धर्म, सरकार, राज्य, व अन्य बाहरी संस्थाओं को मानव जाति में अशांति फैलाने में तथा उसे बरकरार रखने का दोषी मानते हैं। शांति के संदर्भ में भी सही शिक्षा के विकल्प पर चर्चा करते हुए कहते हैं कि सही शिक्षा व्यक्ति विशेष में पूर्वाग्रह से मुक्त व स्वतंत्र खोजी प्रवृत्ति को बढ़ावा देने वाले मन तथा सृजनशील प्रज्ञा विकसित करने में सहायक होती है। और ऐसे व्यक्ति का मन डर व अनुरूपता से दूर होगा अंततः शांति में होगा और विश्व में शांति लाने में सहायक होगा।

5.7 शब्दावली

1. **अधिनायकवाद:** एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है जिसमें राज्य के पास सभी अधिकार होते हैं, वह सार्वजनिक और निजी जीवन के हर पहलू को विनियमित करने का प्रयास करता है।
2. **पूर्वाग्रह:** एक व्यक्ति के प्रति उसकी किसी एक समूह के साथ संबद्धता के आधार पर अन्य व्यक्ति की भावना पूर्वाग्रह होती है। पूर्वाग्रह सामाजिक संदर्भ् में भेदभाव का कारण बनते हैं।

5.8 संदर्भ ग्रंथ सूची तथा सहायक पाठ्य सामग्री

1. कृष्णमूर्ति, जे. (2005) शिक्षा एवम जीवन का तात्पर्य, कृष्णमूर्ति फाउन्डेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट वाराणसी
2. कृष्णमूर्ति, जे. (2007) शिक्षा संवाद, कृष्णमूर्ति फाउन्डेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट वाराणसी
3. http://www.jkrishnamurti.org/worldwide-information/foundations.php, accessed on 20/02/2017
4. http://voiceseducation.org/content/jiddu-krishnamurti-peace-our-time accessed on 20/02/2017

5.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. चर्चा कीजिए की शांति हेतु सरकारों पर पाए बाहर संस्थाओं पर निर्भरता के क्या- क्या खतरे हैं?
2. कृष्णमूर्ति द्वारा विश्व शांति के संदर्भ में व्यक्ति विशेष की जिम्मेदारी पर चर्चा कीजिए।
3. वर्तमान परिदृश्य में कृष्णमूर्ति के शिक्षा संबंधी विचारों की प्रासंगिकता पर उदाहरणों सहित चर्चा कीजिए।
4. विद्यालयों में शांति शिक्षा के संदर्भ में शिक्षकों की क्या भूमिका है। विस्तार से समझाइए।
5. क्या सही शिक्षा द्वारा विश्व में शांति सम्भव है? अपने उत्तर की पुष्टी तर्क देकर कीजिए।

खण्ड 4

Block 4

इकाई 1- न्याय और शांति : संविधान संघर्ष समाधान के साधन के रूप में

Justice and Peace: The Constitution as a means of Conflict-resolution

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 न्याय
1.4 शांति
1.5 संविधान संघर्ष समाधान के साधन के रूप में
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

सम्पूर्ण विश्व में जब जब उपद्रव और अशांति है तो एक प्रश्न उठता है कि यह उपद्रव या अशांति किस कारण से है। हमारा देश भी अछूता नहीं है। भले ही हम स्वयं को एक शांति चाहने वाला देश मानते हों परन्तु नित प्रतिदिन की यह घटनाएँ ये स्पष्ट करती हैं कि वास्तव में ऐसा नहीं है। विश्व में या देश में शांति के लिए आवश्यक है कि सभी को यह लगे कि उसको समान रूप से अवसर दिया जा रहा है और उनके साथ न्याय हो रहा है। भारत की विशालता और विविधता को देखते हुए इसकी आवश्यता महसूस की गयी कि एक ऐसा नियम हो जिससे सभी के व्यवहार को संचालित किए जाते हुए सभी का विकास किया जा सके और इसमें कोई भी अवमानना न हो। भारतीय संविधान को एक ऐसे माध्यम के रूप में देखा जा सकता है जो देश में न्याय और शांति की स्थापना के लिए कृत संकल्प है। इस अध्याय में उन्हीं बिन्दुओं का वर्णन किया जाएगा।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी

1. न्याय की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए इसकी आवश्यकता को बता सकेंगे।
2. शांति की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
3. भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों का सामाजिक न्याय और शांति के स्थापना में एक कुंजी रूप में वर्णन कर सकेंगे।
4. भारतीय संविधान के विभिन्न भागों का न्याय और शांति के माध्यम के रूप में व्याख्या कर सकेंगे।

1.3 न्याय

भारतीय संविधान में न्याय का तात्पर्य सामजिक न्याय से है। एक विचार के रूप में न्याय की संकल्पना किसी स्थान विशेष या देश विशेष में रहने वाले सभी लोगों को को समान मानने की वकालत करता है। न्याय का यह मानना है कि किसी के साथ सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पूर्वग्रहों के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए।विकसित हों या विकासशील देश, दोनों ही तरह के देशों में राजनीतिक सिद्धांत केदायरे में न्याय की इस अवधारणा और उससे जुड़ी अभिव्यक्तियों काप्रमुखता से प्रयोग किया जाता है।भारत में में सामाजिक न्याय वंचित समूहों की राजनीतिक गोलबंदी का एक प्रमुख आधार रहा है। अल्पसंख्यक अधिकार, बहुसंस्कृतिवाद, मूल निवासियों के अधिकार आदि। इसी तरह, नारीवाद के दायरे में स्त्रियों के अधिकारों को ले कर भी विभिन्नस्तरों पर सिद्धांतीकरण हुआ है और स्त्री-सशक्तीकरण के मुद्दों को उनके सामाजिक न्याय से जोड़ कर देखा जाने लगा है।

मार्क्स ने इन सभी विचारों की आलोचना की और ज़ोर दिया कि न्याय जैसी अवधारणा की आवश्यकता पूँजीवाद के भीतर ही होती है क्योंकि इस तरह की व्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर कब्ज़ा जमाये कुछ लोग बहुसंख्यकसर्वहारा का शोषण करते हैं।

भीमराव आम्बेडकर और उत्पीड़ित जातियों और समुदायों के कई नेता समाज के हाशिये पर पड़ी जातियों को शिक्षित और संगठित होकर संघर्ष करते हुए अपने न्याय पूर्ण हक को हासिल करने की विरासत रच चुके थे। इसी तरह पचास और साठ केद शक में राममनोहर लोहिया ने इस बात पर जोर दिया कि पिछड़ों, दलितों, अल्पसंख्यकों और स्त्रियों को एकजुट होकर सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष करना चाहिए। लोहिया चाहते थे कि ये समूह एकजुट होकर सत्ता और नौकरियों में ऊँचीजातियों के वर्चस्व को चुनौती दें। इस पृष्ठभूमि के साथ नब्बे के दशक के बाद सामाजिक न्याय भारतीय राजनीति का एक प्रमुख नारा बनता चला गया। इसके कारण अभी तक सत्ता से दूर रहे समूहों को सत्ता की राजनीति के केंद्र मेंआने का मौका मिला। इनके अतिरिक्त कालांतर में कांशीराम, अरुणा रॉय, मेधा पाटेकर, इरोम शर्मिला जैसे नाम विभीन क्षेत्रों में न्याय स्थापित करने की संकल्पना से जुड़े।

सामाजिक न्याय के नारे ने विभिन्न समाजों में विभिन्न तबकों को अपने लिए गरिमा मय ज़िंदगी की माँग करने और उसके लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया है। सैद्धांतिक विमर्श में भी यूटोपियाई

समाजवाद से लेकर वर्तमान समय तक सामाजिक न्याय में बहुत सारे आयाम जुड़ते गये हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि विकसित समाजों की तुलना में विकासशील समाजों में सामाजिक न्याय का संघर्षबहुत जटिलताओं से घिरा रहा है। अधिकांश मौकों पर इन समाजों में लोगों को सामाजिक न्याय के संघर्ष में बहुत ज़्यादा संरचात्मक हिंसा और कई मौकों परराज्य की हिंसा का भी सामना करना पड़ा है। लेकिन सामाजिक न्याय के लिए चलने वाले संघर्षों के कारण इन समाजों में बुनियादी बदलाव हुए हैं। कुल मिला करसमय के साथ सामाजिक न्याय के सिद्धांतीकरण में कई नये आयाम जुड़े हैं और एक संकल्पना या नारे के रूप में इसने लम्बे समय तक ख़ामोश या नेपथ्य मेंरहने वाले समूहों को भी अपने के लिए जागृत किया है।

अभ्यास प्रश्न

1. न्याय को परिभाषित करें
2. भारत में सामाजिक न्याय के लिए प्रयासरत अग्रणी नेताओं के नाम बताएं।

1.4 शांति

शांति लोगों के बीच और उनके भीतर स्वतंत्रता और खुशी का एक परिचायक है। शांति का उद्देश्य पूरी दुनिया में अहिंसा, प्रेम और भाई-चारा स्थापित करना है। यह एक ऐसा मूल्य है जिसे दुनिया का प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक समुदाय या राष्ट्र चाहता है (यहाँ आतंकियों की बात नहीं की जा रही है)। यह वह माध्यम है समुदाय या देश स्वेच्छा से या शासन की एक प्रणाली के जरिये इच्छा से सहयोग करते हैं, ताकि युद्ध को रोका जा सके। इस शब्द का प्रयोग कभी-कभी इस शब्द का प्रयोग विश्व शांति के लिए सभी व्यक्तियों के बीच सभी तरह की दुश्मनी के खात्मे के सन्दर्भ में किया जाता है।

शांति अपने आप में बस अकेला मूल्य नहीं है बल्कि अपने साथ ये अन्य मूल्यों जैसे दया, करुणा, अहिंसा, प्रेम सद्भाव को समेटे रहता है। यदि हम शांति की बात दिए हुए परिपेक्ष्य में करें तो यह कह सकते हैं कि प्रत्येक देश अपनी सीमा के अन्दर शांति के लिए अपेक्षित है और इसके लिए हर संभव प्रयास भी करता है। देश का विकास इस बात पर निर्भर करता है कि देश में आतंरिक रूप से कितनी शांति है और विश्व के अन्य देशों के साथ उस देश के सम्बन्ध कितने मधुर हैं।

जब बात शांति की स्थापना के लिए हो तो यह प्रश्न उठता है कि क्या शांति सैद्धांतिक रूप से संभव है ? कुछ लोगों का मानना है कि मनुष्य की प्रकृति स्वाभाविक तौर पर इसे रोकती है। यह विश्वास इस विचार से आया है कि मनुष्य अपने स्वभाव या प्राकृतिक रूप से हिंसक है। या कभी-कभी कुछ परिस्थितियां ऐसी होती हैं जिसमें वह स्वभावगत रूप हिंसक कार्य दिखाता है। मनुष्य स्वभाव से ही हिंसक है और इसलिए इन परिस्थितियों को स्वयं ही उत्पन्न करता है उसी समय में विद्वानों का दूसरा समूह यह मानता है कि युद्ध मानव प्रकृति का एक सहज हिस्सा नहीं हैं और कभी-कभी अपने स्वभाव से

दूर ले जाकर उसे परिस्थितियां, तर्कसंगत कारक उसे हिंसक कार्य करने के लिए बाध्य करते हैं। मनुष्य के आदिम रूप से हिंसक मानने का मिथक वास्तव में लोगों को विश्व शांति के लिए प्रेरित होने से रोकता है।

शांति हेतु कई सिद्धांत दिए गये हैं जिनमें से प्रत्येक सिद्धांत का वर्णन यहाँ संभव नहीं है। भारत एक प्रजातान्त्रिक देश है अतः इस अध्याय में हम केवल लोकतांत्रिक शांति सिद्धांत ककी ही चर्चा करेंगे। विवादास्पद डेमोक्रेटिक शांति सिद्धांत के समर्थकों का यह मानना है कि वह देश जो लोकतान्त्रिक हैं वह अन्य देशों के विरुद्ध कभी युद्ध नहीं छेड़ते हैं और इस बात के पर्याप्त अनुभवजन्य साक्ष्य मौजूद हैं। और कभी ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो जाए तो बड़ी मुश्किल से ही युद्ध जैसी चीज़ का प्रारंभ करते हैं। सम्पूर्ण विश्व में औद्योगिक क्रांति के प्रारंभ होने के बाद से लोकतांत्रिक बनने वाले देशों में वृद्धि हो रही है। सम्पूर्ण विश्व में शांति स्थापित करने का कार्य इस प्रकार से संभव है, अगर देशों का यह रुझान जारी रहे और अगर लोकतांत्रिक शांति सिद्धांत सही हो। हालांकि इस सिद्धांत के कई संभव अपवाद भी है।

दावा किया जाता है कि कभी-कभी विश्व शांति किसी खास राजनीतिक विचारधारा का एक अपरिहार्य परिणाम होती है। पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश ने कहा है कि लोकतंत्र और लोकतान्त्रिक विचार ही विश्व शांति का नेतृत्व करेंगे। उसी समय एक मार्क्सवादी विचारक लियोन त्रोत्स्की ने इससे अलग अपने विचार देते हुए कहा है कि विश्व क्रांति कम्युनिस्ट विश्व शांति का नेतृत्व करेगी।

सम्पूर्ण विश्व ने दो विश्व युद्ध देखे हैं और उन युद्ध की त्रासदियों से गुजरे हैं। शांति की स्थापना कभी भी युद्ध के द्वारा नहीं हो सकती। एक प्रसिद्ध उद्धरण है कि युद्ध लोगों के मन में पलते हैं।और आज के दौर में कई घटनाओं को देखते हुए यह बात सत्य सिद्ध होती है। प्रथम विश्व युद् के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई और यह अपने उद्देश्यों मे सफल नहीं हो पाया और दूसरे विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार हो गयी। यह और बात है कि दूसरा विश्व युद्ध कुछ देशों के लिए लाभप्रद रहा परन्तु युद्ध हमेशा शांति के विनाशक होते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के पश्चात् हालांकि विश्वयुद्ध तो नहीं हुए पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि संयुक्त राष्ट्र संघ पूरी तरह से सफल ही रहा है। विभिन्न देशों में आतंरिक युद्ध, सशक्त देशों का कमजोर देशों के खिलाफ युद्ध इसे इसके उद्देश्यों की प्राप्ति में पूर्ण रूप से सफल नहीं घोषित करते।

आज के युग में जब सारा खेल बाज़ार और संसाधनों का है ऐसे में विश्व शांति तब हासिल की जा सकती है, जब बाज़ार और संसाधनों को लेकर कोई संघर्ष नहीं हो। उदाहरण के लिए तेल एक ऐसा ही संसाधन है और तेल की आपूर्ति और इसको हासिल करने को लेकर संघर्ष जाना पहचाना है। इसलिए, पुन: प्रयोज्य ईंधन स्रोत का उपयोग करने वाली प्रौद्योगिकी विकसित करना विश्व शांति हासिल करने का एक तरीका हो सकता है।

यदि अपने देश की बात करें तो देश में पल रही कई सारीविघटनकारी शक्तियां शांति के मार्ग में रोड़ा हैं। वैसे तो हम एक लोकतान्त्रिक देश हैं और किसी अन्य देश के लिए युद्ध को किसी अपवाद के अलावा कभी नहीं छेड़ा है पर हमारे देश की तीन देशों से लगी सीमायें अक्सर सुलगती रहती हैं। हम किसी अन्य देश के लिए युद्ध प्रारंभ तो नहीं करते पर आतंरिक युद्ध के किए यह बात नहीं कही जा सकती। कभी कुछ लोग प्रायोजित रूप से तो कभी अप्रायोजित रूप से देश की शांति भंग करते रहते हैं। भारत विविधता से

पूर्ण इतना बड़ा देश है और इसकी मूल बनावट ऐसी रही है कि कलह और संघर्ष को हमेशा ही जगह मिल जाती है। कई धर्मों, कई विचारों, कई सम्प्रदायों, विभिन्न जातियों का ताना बना होने के कारण टकराव की स्थिति बनी रहती है और ऐसे में शांति स्थापना हेतु भारतीय संविधान एक मुख्य भूमिका का निर्वहन करता है।

भारतीय संविधान को शांति और न्याय के मुख्य माध्यम के रूप में देखा जाता है जिसके पक्ष में विचार निम्नवत दिए गए हैं।

अभ्यास प्रश्न

3. लोकतान्त्रिक शांति सिद्धांत क्या है ?
4. द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् शांति की स्थापना हेतु सम्पूर्ण विश्व ने क्या प्रयास किए?

1.5 संविधान संघर्ष समाधान के साधन के रूप में

सामान्यतः संविधान का तात्पर्य "नियमों व कानूनों के उस दस्तावेज से है जिनकें आधार पर किसी देश की शासन प्रणाली चलाई जाती है।" एक लोकतान्त्रिक संविधान का तात्पर्य "जनता द्वारा या जनता के द्वारा चुनें गये प्रतिनिधियों के द्वारा बनाये गये नियमों व कानूनों के उस संग्रह से है जिसके आधार किसी देश की शासनप्रणाली चलाई जाती है।" भारत का संविधान भी इसी आधार पर तैयार किया गया है जब जनता के प्रतिनिधियों ने मिलकर जनता के लिए संविधान तैयार किया। भारतीय संसद भवन में लगे खम्भे इसी बात का द्योतक हैं। एक लोकतान्त्रिक संविधान जनता की भावनाओं और इच्छाओं के अनुसार व्यवहार करता है। इसके अंतर्गत नागरिकों को कुछ मूलभूत अधिकार प्रदान किये जाते है, जो व्यक्ति के व्यतिगत, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक या यूँ कहें तो व्यक्तित्व के हर आयाम के विकास के लिए अत्यंत आवश्यक होते हैं। एक लोकतान्त्रिक देश का विकास उसके नागरिकों के विकास पर ही आधारित होता है। यदि व्यक्ति या समाज का विकास नहीं होता है तो हम देश के विकास के बारे में नहीं सोच सकते है।अगर किसी देश के नागरिक प्रगतिशील व आधुनिक लोकतान्त्रिक मूल्यों से युक्त होने के साथ-साथ वैज्ञानिक नवाचार व नैतिक मूल्यों से युक्त हो तो वह देश तीव्र और सतत रूप से प्रगति के पथ पर अग्रसर होता है। भारत की ही तरह विश्व के अन्य लोकतान्त्रिक देशों में भी कार्यपालिका और विधायिका के मनमानी से व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुरक्षितर खने के लिए नागरिकों को कुछ आधारभूत अधिकार प्रदान किये गए हैं, जिनका स्वरुप भले ही भिन्न-भिन्न हो लेकिन उनकी प्रकृति एक है.

भारतीय संविधान विश्व का सबसे बड़ा लिखित संविधान है जो दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र का मार्गदर्शन करता है। ऐसे देश जहाँ की जनसँख्या 125 करोड़ से ऊपर हो, जहाँ लगभग 8 से अधिक धर्म को मानने वाले रहते हैं, जहाँ 200 भाषाएँ हैं और 1600 बोलियाँ बोलने वाले लोग रहते हैं, जहाँ कई प्रजातियों और जातियों के लोग रहते हों वहाँ पर इस विविधता में भी सभी को एक सूत्र में बाँधने के लिए

ऐसे संविधान की आवश्यता है जो बिना किसी भेद-भाव के सबके हित की बात करे। और सिर्फ इतना ही नहीं वह जनसँख्या जो भारत के संविधान की प्रस्तावना में ही शांति और न्याय की अवधारणा दी गयी है।

भारतीय संविधान में भी विश्व के अन्यलोकतान्त्रिक संविधानों की तरह अपने नागरिकों को कुछ मूलभूत अधिकार प्रदान किये गये हैं, जिन्हें संविधान के भाग-3 में अनुच्छेद 12 से लेकर अनुच्छेद 35 के तक हैं; और इन्हें मौलिक अधिकारों के नाम से जानते हैं।

राष्ट्रीय आंदोलनों के समय मौलिक अधिकारोंको संविधान में शामिल करने की मांग तीन कारणों से की गई : पहला, कार्यपालिका के स्वेच्छाचारी व्यवहार पर अंकुश लगाने के लिए, दूसरा, सामाजिक-आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, तथा विभिन्न अल्पसंख्यक समूहों को सुरक्षा और संरक्षण प्रदान करने के लिए. संविधान के अन्दर किन –किन अधिकारों को को जगह दी जाए क्योंकि हर एक को संविधान के अन्दर शामिल नहीं किया जा सकता था इस पर संविधान सभा में पर्याप्त बहस हुई थी और विभिन्न मुद्दों के ऊपर सदस्यों के मध्य मतभेद भी कायम थे। पर अंत में सर्वसम्मति से भारत का संविधान निर्मित हुआ और 26 जनवरी 1950 को लागू कर दिया गया।

यदि संविधान की बात की कए तो यह अपने प्रस्तावना या उद्देशिका से यह साबित करती है कि यह समानता, न्याय और शांति जैसे मुद्दों को देश में कायम करने पर अडिग है।

हम, भारत के लोग, भारत को एकसंपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को:सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता, प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सबमें, व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित कराने वाली, बंधुता बढ़ाने के लिए, दृढ़ संकल्प होकर ***अपनी संविधान सभा में*** *आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ईस्वी (मिति माघशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।*

भारतीय संविधान के उद्देशिका से यह स्पष्ट है कि लोकतंत्र में सभी इकाईयां बराबर हैं और इन सभी के विकास के लिए लोकतंत्र कृतसंकल्प है। संविधान की प्रस्तावना में ही न्याय शब् का उल्लेख किया गया है और जब न्याय, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक स्वतंत्रता और समान अवसर प्राप्त होते हैं तो देश में शांति की स्थापना स्वयं ही हो जाती है। विभेद विघटन पैदा करता है। यदि विभेद नहीं होगा तो यह स्पष्ट है कि सभी के साथ न्याय हो रहा है और जब न्याय हो तो शांति होती है।

भारतीय संविधान के अन्य भाग जो न्याय और शांति का पोषण करते हैं उनमें मौलिक अधिकार, नीति निर्देशक तत्व और मौलिक अधिकार आते हैं। भारतीय संविधान में भाग 3 जो मौलिक अधिकारों से सम्बंधित है और भाग 4 जो नीति निर्देशक तत्व हैं ये मिलकर भारतीय संविधान को संघर्ष समाधान की कुंजी के रूप में तैयार करते हैं। यही कारण है कि ये क्रमशः संविधान की आत्मा और संविधान की चेतना के रूप में जाने जाते हैं। इन तत्वों में संविधान तथा सामाजिक न्याय के दर्शन का वास्तविक तत्व निहित हैं। इनमें सबसे पहले मौलिक अधिकारों का वर्णन यहाँ किया जाएगा।

भारतीय संविधान में कुल 6 मौलिक अधिकार दिए गए हैं जो भारत का नागरिक होने के साथ ही प्राप्त हो जाते हैं और इसे किसी भी भारतीय नागरिक से छीना नहीं जा सकता है पर कुछ ऐसी दशाएं हैं जिनके अंतर्गत इन्हें अविधिमान्य करार किया गया है। यह मौलिक अधिकार नागरिक हितों कि रक्षा करते हैं और भारत में न्याय और शांति के लिए प्रमुख भूमिका निभाते हैं। अनुच्छेद -13 मूल अधिकारों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। इस अनुच्छेद के अनुसार वे सभी विधियाँ जो किसी मूल अधिकार से असंगत है या उसके प्रतिकूल हैं, उस सीमा तक अविधिमान्य होगी जहाँ तक वे मौलिक अधिकारों का हनन करते हैं। अतः न्यायपालिका को यह अधिकार है कि वह ऐसी विधि को जो संविधान के उपबंधों से असंगत है, असंवैधानिक घोषित करे। ये 6 अधिकार निम्नवत हैं।

- समानता का अधिकार (अनुच्छेद 12 से अनुच्छेद 18)
- स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 से अनुच्छेद 22)
- शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 से अनुच्छेद 24)
- धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25 से अनुच्छेद 28)
- शिक्षा और संस्कृति का अधिकार (अनुच्छेद 29 से अनुच्छेद 30)
- संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

संविधान में मूल अधिकारों से सम्बंधित उपबंधों में 'राज्य' शब्द का प्रयोग किया गया है. यहाँ राज्य शब्द का अर्थ स्पष्ट कर देना आवश्यक है। सर्वोच्य न्यायालय के अनुसार, किसी भी उस निजी इकाई या एजेंसी को, जो बतौर राज्य की संस्था काम कर रही हो, वह अनुच्छेद-12 के तहत 'राज्य' के अर्थ में आती है।

समानता का अधिकार: इसमें पहला समानता का अधिकार है जो भारतीय संविधान में अनुच्छेद 12 से अनुच्छेद 18 तक वर्णित है। हमारा भारतीय समाज बहुत ही विविध है जिसमें विविधता हर क्षेत्र में पायी जाती है चाहे यह धर्म हो, संप्रदाय हो, जाति हो या फिर भाषा हो। इस आधार पर पहले हमारा समाज सोपानीकृत भी रहा है और इसे ही लोकतान्त्रिक बनाने केलिए विधि के समक्ष समानता को स्वीकार किया गया। अतः लोकतान्त्रिक भारत मेंयहाँ के समाज को ज्यादा समावेशी और समानता पर आधारित करने के लिए संविधानके अनुच्छेद 14 से 18 के मध्य समानता के अधिकारों की बात की गई है। संविधानके अनुच्छेद 14 के तहतविधि के समक्ष समानता औरविधियों के समान संरक्षणकी बात की गई है। अनुच्छेद 14 के अनुसार राज्य भारत के राज्य क्षेत्र मेंकिसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण सेवंचित नही कर सकता है। पर हमारे यहाँ समानता के साथ समता की भी बात की गयी है जो कि परिस्थितियों की भिन्नता के आधार पर अलग –अलग विधि लागु करने से सम्बंधित हैं। जैसे- समाज के वंचित वर्गों और महिलाओं के लिए कोई विशेष उपाय किए गए हैं ताकि

वह समाज के अन्य वर्गों के समान स्तर पर आ सकें। समानता का आशय, विभेदों या विशेषाधिकारों का अंत भी होता है। अनुच्छेद 15 में सार्वजानिक जीवन में किसी भी प्रकार से भेदभाव का प्रतिषेध किया गया है। विशेषकर राज्य द्वारा वित्त पोषित कुँओं, तालाबों और सार्वजानिक स्थानों पर व्यक्ति के द्वारा लिंग, जन्म, जाति , वंश,धर्म आदि के आधार पर भेदभाव नही किया जा सकता। अनुच्छेद 16 के में जाति, धर्म, आदि आधारों पर राजकीय सेवा में बिना किसी भेदभाव के सभी के लिए समान अवसर प्रदान किया गया है। लेकिन भारत के ऐतिहासिक असमानता और भेदभाव के कारण उत्पन्न व्यापक क्षेत्रीय व सामाजिक असमानता को देखते हुए संविधान निर्माताओं ने संसद को यह अधिकार दिया कि, किसी राज्य की सेवा में उस राज्य विशेष के लोगों कोप्राथमिकता दी जा सकती है। अनुच्छेद 17,18 समानता हेतु विशेषाधिकारों औरविषमताओं के अंत से सम्बंधित हैं।

स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 से अनुच्छेद 22):स्वतंत्रता मानव जीवन के लिए आवश्यक है। मनुष्य को एक सृजनशील प्राणी माना जाता है जिसका सम्पूर्ण विकास स्वतंत्र वातावरण में ही संभव है। और यह सिर्फ व्यक्ति के लिए ही नहीं बल्कि राज्य के लिए भी आवश्यक है क्योंकि कोई भी राज्य विकास की प्रक्रिया में अपने मानवीय संसाधन पर अत्यधिक निर्भर करता है, और मानवीय संसाधन की उत्कृष्टता इस बात पर निर्भर करती है कि वहां के मानव को कितनी व्यापक और युक्तियुक्त स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। संविधान में अनुच्छेद 19 से लेकर 22 तक में स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार वर्णित हैं। इनमें से अनुच्छेद-19 में दिए गये छह प्रकार की स्वतंत्रताएं केवल नागरिकों को प्रदान की गयी हैं। इन अधिकारों में वाक- अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्वक निरायुध सम्मलेन की स्वतंत्रता, संगम या संघ बनाने की स्वतंत्रता, भारत के राज्य-क्षेत्र में अबाध संचरण की स्वतंत्रता और देश के किसी भाग में निवास करने, बस जाने एवं वृति, आजीविका एवं व्यापर की स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। पर इसके साथ ही देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता, देश की सुरक्षा, लोक व्यवस्था, न्यायालय की अवमानना और अनुसूचित जनजातियों के हितों के आधार पर इन अधिकारों पर तार्किक प्रतिबन्ध आरोपित किये जा सकते हैं। अनुच्छेद-20 के अनुसार भारतीय संविधान में मूल अधिकारों में किसी अपराध में बंदी व्यक्ति के लिए भी मूल अधिकारों का प्रावधान है। इसलिए किसी व्यक्ति को घटना के पश्चात विधि बनाकर दण्डित नही किया जा सकता, और नही एक ही अपराध के लिए एक से अधिक बार किसीव्यक्ति को दण्डित किया जा सकता है। अनुच्छेद-21 में प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता की घोषणा की गई है कि व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से*विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया*के अनुसार ही वंचित किया जायेगा अन्यथा नही। न्यायपालिका के अनुसार न्यूनतम आजीविका का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार, निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का अधिकार, स्वच्छ पर्यावरण (जल,हवा आदि) का अधिकार, त्वरित सुनवाई का अधिकार जीवन के अधिकार में अन्तर्निहित हैं। अनुच्छेद 22 किसी व्यक्ति को गिरफ्तारी एवं निरोध से संरक्षण देता है. अनुच्छेद के अनुसार किसी भी व्यक्ति को मनमानी रूपसे गिरफ्तार नही किया जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया गया है तो उसे अपने रूचि के विधि व्यवसायी से

परामर्श करने का अधिकार होगा, तथा उसे अधिकतम 24 घंटे तक ही हिरासत में रखा जा सकता है। इसके पश्चात हिरासत मेंरखने के लिए उसे न्यायिक मजिस्ट्रेट के सामने प्रस्तुत करना होगा।

शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 से अनुच्छेद 24): शोषण के विरुद्ध अधिकार अनुच्छेद-23-24 हैं जो गरिमामय जीवन से सम्बंधित है। इसलिए शोषण के विरुद्ध और मानव के दुर्व्यापार और बलात श्रम का भी मूल अधिकारों में प्रतिबन्ध है. अनुच्छेद 23 मानव दुर्व्यापार, बेगार और इसी प्रकार के अन्य बलात श्रम के प्रकारोंपर भी प्रतिबन्ध लगता है. इस व्यवस्था के अंतर्गत कोई भी उल्लंघन कानून के अनुसार दंडनीय होगा. यह अधिकार नागरिक एवं गैर-नागरिक दोनों के लिए उपलब्ध होगा. यह किसी व्यक्ति को न केवल राज्य के खिलाफ बल्कि व्यक्तियों के खिलाफ भी सुरक्षा प्रदान करता है. मानव दुर्व्यापार का अभिप्राय, महिलाओं, बच्चों और अपंग व्यक्तियों के अनैतिक दुर्व्यापार पर प्रतिबन्ध लगानाहै।

धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25 से अनुच्छेद 28):धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार संविधान में अनुच्छेद-25 से 28 तक वर्णित हैं। भारतमें अनेक धर्मों के लोग निवास करते हैं जिनकी जनसँख्या असमान है। चूँकि भारतीय समाज अभी भी धर्म पर आधारित है, औरव्यक्ति समाज में ही विकास की प्रक्रिया से जुड़ता है, अतः व्यक्ति के व्यक्तित्व पर धर्म का प्रभाव निर्णायक होता है, इसलिए धार्मिक स्वतंत्रताका अधिकार व्यक्ति के विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है, अतः इसे मौलिक अधिकारके रूप में संविधान में शामिल किया गया है।

शिक्षा और संस्कृति का अधिकार (अनुच्छेद 29 से अनुच्छेद 30):अनुच्छेद-29-30 शिक्षा और संस्कृति के अधिकार से सम्बंधित है। शिक्षामनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण करती है। यह व्यक्ति की तर्कशील बनाते हुए उसे सृजनशील और क्षमतावान बनाती है। इसी प्रकार संस्कृति मनुष्य के व्यवहार व प्रकृति को गढ़ने का कार्य करती है। यह मनुष्य के व्यक्तित्व को निर्धारित करती है। अनुच्छेद-29 यह घोषित करता है कि भारत के किसी भी भाग में रहने वाले नागरिकों को जिसकी अपनी अलग बोली, भाषा, लिपि और संस्कृति हो, संरक्षित करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त, किसी भी नागरिक को राज्य के अंतर्गत आनेवाले संस्थानों या उससे सहायता प्राप्त संसथान में धर्म, जाति या भाषा केआधार पर प्रवेश से रोका नही जा सकता। इसमें से पहली व्यवस्था एक समूह के अधिकारों कीर क्षा स्व सम्बंधित है और दूसरी व्यवस्था नागरिक के व्यक्तिगत सम्मान की रक्षा करती है। अनुच्छेद-30 में स्पष्ट रूप में अल्पसंख्यकों को अपनी शैक्षिक संस्थाओं कीस्थापना एवं उनके प्रबंध का अधिकार प्राप्त है। इसके साथ ही यह भी इसमें शामिल है किराज्य द्वारा संस्थाओं को दिए गये अनुदान में इस आधार पर भेदभाव नही कियाजायेगा कि, वे अल्पसंख्यकों के प्रबंध हेतु हैं।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32):संवैधानिक उपचारों का अधिकार से सम्बंधित है। सभी मौलिक अधिकारों में संवैधानिक उपचारों का अधिकार अत्यंत महत्वपूर्ण अधिकार है। इसके बगैर

अन्य मौलिक अधिकारों की उपादेयता संदिग्ध हो जाती है, क्योकि यह मौलिक अधिकार ही नागरिकों को अन्य मौलिक अधिकारों की उल्लंघन की दशा में विधिक कारवाई करने का अधिकार प्रदान करता है, और विधायिका या कार्यपालिका द्वारा किसी भी मौलिक अधिकारों के उल्लंघन करने वाली विधि को शून्य घोषित करता है। यह मौलिक अधिकार भारत में न्यायपलिका को न्यायिक समीक्षा का अधिकार प्रदान करता है। इस मौलिक अधिकार के महत्व को देखते हुए ही शायद बी. आर. अम्बेडकर ने इसे भारतीय "संविधान की आत्मा" शब्दावली से संबोधित किया था। (बसु 2008 : 132)

अभ्यास प्रश्न

5. भारत का संविधान कब लागू हुआ था?
6. शोषण के विरुद्ध अधिकार किन अनुच्छेदों में वर्णित है?
7. संविधान के किस भाग को डॉ. आंबेडकर ने संविधान की आत्मा कह कर संबोधित किया है ?

भारत की विशालता, विविधता और यहाँ फैले सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक असमानता को ध्यान में रखते हुए लोकतान्त्रिक और कल्याणकारी दृष्टिकोण अपनाते हुए स्वतंत्रता की सकारात्मक अवधारणा में विश्वास किया और नागरिकों के लिए कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक अधिकारों की मांग उठाई। संविधान सभा ने तत्कालीन भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप दोनों प्रकार के मांगों के बीच संतुलन स्थापित करनेका प्रयास किया औरकुछ प्रमुख सामाजिक-आर्थिक अधिकारों को भी नीति-निर्देशक तत्व के रूप में संविधान का भाग बनाया

राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों का उद्देश्य सामूहिक रूप से भारत मेंआर्थिक एवं सामाजिक लोकतन्त्र की रचना करना तथा कल्याणकारी राज्य कीस्थापना करना हैं। भारतीय संविधान के भाग 4 के अनुच्छेद 36 से लेकर अनुच्छेद 51 तक राज्य के नीति निर्देशक तत्व शामिल किए गये हैं। अनु 37 के अनुसार ये तत्व किसी न्यायालय मे लागू नही करवाये जा सकते यहतत्व वैधानिक न होकर राजनैतिक स्वरूप रखते है तथा मात्र नैतिक अधिकार रखतेहै। वे न तो कोई वैधानिक बाध्यता ही राज्य पे लागू करते है न जनता हेतुअधिकार कर्तव्य वे मात्र राज्य के लिये ऐसे सामान्य निर्देश है कि राज्यकुछ ऐसे कार्य करे जो राज्य की जनता के लिये लाभदायक हो। इन निर्देशों कापालन कार्यपालिका की नीति तथा विधायिका की विधियाँ से हो सकता है।

यदि नीति निर्देशक तत्वों का विशद विवरण दे तो नीति निर्देशक तत्वों में अनुच्छेद 36 नीति निर्देशक तत्वों की परिभाषा से सम्बंधित है। अनुच्छेद 37 में अंतर्विष्ट तत्वों का लागू करने से सम्बंधित है। अनुच्छेद 38 में राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था, अनुच्छेद 39 राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व, 39कसमान न्याय और नि:शुल्क विधिक सहायता, अनुच्छेद 40 में ग्राम पंचायतों का संगठन, अनुच्छेद 41 काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार, अनुच्छेद 42 काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध, अनुच्छेद 43 में कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी, अनुच्छेद 43क उद्योगों के प्रबंध में कार्मकारों का भाग लेने, अनुच्छेद

44 नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता, अनुच्छेद 45 में 0-6 वर्ष बच्चों के लिए शिक्षा और उनकी देखभाल, अनुच्छेद 46 अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि, अनुच्छेद 47 पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा करने तथा लोक स्वास्थ्य को सुधार करने का राज्य का कर्तव्य, अनुच्छेद 48 कृषि और पशुपालन का संगठन, , अनुच्छेद 48क पर्यावरण का संरक्षण और संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा, अनुच्छेद 49 राष्ट्रीय महत्व के संस्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण देने,अनुच्छेद 50 कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण और अनुच्छेद 51 अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धिसे सम्बंधित है।

राष्ट्र में शांति और न्याय हेतु मात्र अधिकारों और नीति निर्देशक तत्व ही काफी नहीं हैं इस हेतु सभी को कुछ कर्तव्य भी पालन करने होंगे। इस बात को ध्यान में रखते हुए 1976 में सरकार द्वारा गठित स्वर्णसिंह समिति की सिफारिशों पर, 42वें संशोधन द्वारा संविधान में मूल कर्तव्य जोड़े गए थे। हमारे संविधान में कुल 11 मूल कर्तव्य हैं ।ये मूल कर्तव्य जिन बिन्दुओं से सम्बंधित हैं; वे हैं- संविधान सहित भारत के राष्ट्रीय प्रतीकों का सम्मान करें,, इसकी विरासत को संजोएं, इसकी मिश्रित संस्कृति का संरक्षण करें तथा इसकी सुरक्षा में सहायता दें। सभी भारतीयों को सामान्य भाईचारे की भावना को बढ़ावा देने, पर्यावरण और सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करने, वैज्ञानिक सोच का विकास करने, हिंसा को त्यागने और जीवन के सभी क्षेत्रों में उत्कृष्टता की दिशा में प्रयास करें, प्रत्येक माता-पिता या अभिभावक को यह सुनिश्चित करने कि उनके छः से चौदह वर्ष तक के बच्चे या पाल्य को शिक्षा का अवसर प्राप्त कर रहे हैं।

भारतीय संविधान का विश्लेषण करते हुए आस्टिन कहते हैं कि "भारतीय संविधान सामजिक क्रांति या सामजिक न्याय का दस्तावेज है।" भारत में न्याय की प्राप्ति हेतु समय-समय पर संशोधन किए गए हैं। यह सामजिक न्याय लोगों के अधिकारों की रक्षा करते हुए वैमनस्यता को कम करते हुए समाज में शांति लाता है। आस्टिन (2003) ने इसे सामजिक क्रांति के दस्तावेज का नाम दिया है जो शासन को चलने का यंत्र मात्र नहीं है। इसप्रकार भारतीय संविधान मात्र कुछ नियमों का संग्रह नहीं है बल्कि शांति और न्याय की अवस्थापना का माध्यम है।

अभ्यास प्रश्न

8. नीति निर्देशक तत्वों में 39क किससे सम्बंधित है?
9. संविधान में मूल कर्तव्य कब जोड़े गए ?
10. आस्टिन ने भारतीय संविधान को क्या नाम दिया है ?

1.6 सारांश

संविधान में न्याय और शांति की स्थापना के लिए भले ही हर संभव प्रयास किया गया हो पर आज़ादी के इतने वर्षों के बाद या संविधान लागू किए जाने के इतने वर्षों के बाद भी यह विषमता और वैमनष्य स्पष्ट करता है कि भारतीय नागरिक के रूप में हम इन नियमों को पूरी तरह नहीं मान रहे और स्वहित के लिए इसमें जोड़-तोड़ कर रहे हैं। एक समर्थ, सबल और सक्षम राष्ट्र के निर्माण के लिए आवश्यक है कि हम मात्र शब्दों में ही नहीं बल्कि अपने कृत्यों में भी संविधान का पालन करें।

1.7 शब्दावली

1. न्याय: एक विचार के रूप में न्याय की संकल्पना किसी स्थान विशेष या देश विशेष में रहने वाले सभी लोगों को को समान मानने से है
2. शांति: शांति को एक ऐसे मूल्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जोलोगों के बीच और उनके भीतर स्वतंत्रता और खुशी का एक परिचायक है। शांति का उद्देश्य पूरी दुनिया में अहिंसा, प्रेम और भाई-चारा स्थापित करना है।
3. संविधान: संविधान का तात्पर्य "नियमों व कानूनों के उस दस्तावेज से है जिनकें आधार पर किसी देश की शासन प्रणाली चलाई जाती है।"

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 एक विचार के रूप में न्याय की संकल्पना किसी स्थान विशेष या देश विशेष में रहने वाले सभी लोगों को को समान मानने से है।

2 बी. आर. आंबेडकर, राम मनोहर लोहिया, कांशीराम, अरुणा रॉय, मेधा पाटेकर, इरोम शर्मिला इत्यादि सामाजिक न्याय के लिए प्रयासरत अग्रणी नेता रहे हैं।

3 लोकतान्त्रिक शांति सिद्धांत के अनुसार वह देश जो लोकतान्त्रिक हैं वह अन्य देशों के विरुद्ध कभी युद्ध नहीं छेड़ते हैं सभी देश धीरे धीरे लोकतान्त्रिक हो रहे हैं जो युद्ध की संभावना को कम करता है।

4 द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् शांति की स्थापना हेतु सम्पूर्ण विश्व ने मिलकर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की।

5 भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ था।

6 शोषण के विरुद्ध अधिकार अनुच्छेद 23 और 24 में वर्णित हैं।

7 संविधान के मौलिक अधिकारों में संवैधानिक उपचारों के अधिकार को डॉ. आंबेडकर ने संविधान की आत्मा कह कर संबोधित किया है।

8 नीति निर्देशक तत्वों में अनुच्छेद 39क समान न्याय और नि:शुल्क विधिक सहायता से सम्बंधित है

9 संविधान में मूल कर्तव्य 1976 में सरकार द्वारा गठित स्वर्णसिंह समिति की सिफारिशों पर, 42वें संशोधन द्वारा जोड़े गए थे।

10 आस्टिन ने भारतीय संविधान को सामजिक क्रांति के दस्तावेज का नाम दिया है।

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Austin, G. (2003). *Working a democratic constitution: a history of the Indian experience*. USA: Oxford University Press.
2. Sharma, B.K. (2007). *Introduction to the Constitution of India*. New Delhi:PHI Learning Pvt. Ltd.
3. Wikipedia, (n.d.). Constitution of India. Retrieved from https://en.wikipedia.org/wiki/Constitution_of_India
4. Wikipedia, (n.d.). Social Justice. Retrieved from https://en.wikipedia.org/wiki/Social_justice

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. न्याय को परिभाषित करते हुए स्पष्ट करें कि यह देश के विकास के लिए क्यों आवश्यक है ?
2. शांति से क्या आशय है? सम्पूर्ण विश्व हेतु यह क्यों आवश्यक है?
3. न्याय एवं शांति हेतु भारतीय संविधान एक माध्यम के रूप में कार्य करता है। इस कथन को अपने तर्क के माध्यम से सत्यापित करें।
4. भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकार न्याय और शांति की स्थापना किस प्रकार करते हैं ? प्रकाश डालें।

इकाई 2- राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक और पारिस्थितिक क्षेत्रों में चल रहे संघर्ष के अध्ययन, शान्ति के लिए सफल संघर्ष और संवाद की चल रही प्रक्रियाओं का अध्ययन

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 राजनितिक क्षेत्र में संघर्ष
2.4 आर्थिक क्षेत्र में चल रहे संघर्ष
2.4.1 भारत में आर्थिक उदारवाद एवं उसके दुष्प्रभाव
2.4.2 सामाजिक विषमता एवं आर्थिक उदारवाद
2.5 सामाजिक क्षेत्र में चल रहे संघर्ष
2.6 पारिस्थितिक क्षेत्र में चल रहें संघर्ष
2.6.1 पर्यावरण संरक्षण का महत्व
2.6.2 राष्ट्रीय पर्यावरण नीतियां
2.6.3 भारत के कुछ प्रमुख पर्यावरण संस्थान
2.7 शान्ति के लिए सफल संघर्ष और संवाद की चल रही प्रक्रियाएँ
2.7.1 आर्थिक सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा
2.7.2 नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा
2.7.3 मानवाधिकारों से सम्बन्धित अन्य प्रमुख प्रसंविदाएं
2.7.4 शान्ति के लिए सफल संघर्ष और संवाद की चल रही प्रक्रियाओं के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयास
2.7.5 शान्ति के लिए प्रयास हेतु कुछ महत्त्वपूर्ण तिथियाँ
2.7.6 राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शान्ति स्थापित करने हेतु विद्यालयों की भूमिका
2.8 सारांश
2.9 शब्दावली
2.10 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.1 प्रस्तावना

शान्ति शिक्षा के अंतर्गत शान्ति के मुद्दे और चुनौतियों से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाई मे आपने न्याय एवं शान्ति के विषय में अध्ययन किया तथा यह जाना कि संघर्ष निवारण के लिए भारतीय संविधान की क्या भूमिका है, अर्थात शान्ति स्थापित करने एवं संघर्ष विराम में संविधान की भूमिका एवं महत्त्व को समझा। प्रस्तुत इकाई में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक एवं पारिस्थतिक क्षेत्रों में चल रहे संघर्षों के विषय में एवं साथ ही साथ शान्ति के लिए हुए सफल संघर्षों एवं शान्ति के लिए चल रही संवाद प्रक्रियाओं के विषय में विस्तारपूर्वक बताया गया है।

इकाई के अध्ययन के बाद आप विभिन्न क्षेत्रों में चल रहे संघर्षों को जान सकेंगे एवं शान्ति के महत्त्व को समझ कर शान्ति के लिए प्रयासरत होंगे साथ ही साथ अब तक शान्ति के लिए हुए सफल प्रयासों से प्रेरणा लेकर स्वयं भी शान्ति के क्षेत्र में आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रेरित होंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

1. राजनीतिक क्षेत्र में चल रहे संघर्षों के कारण बता सकेंगे।
2. आर्थिक क्षेत्र में चल रहे संघर्षों को समझ सकेंगे।
3. सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में चल रहे संघर्षों का वर्णन कर सकेंगे।
4. पारस्थितिक क्षेत्रों में चल रहे संघर्षों की व्याख्या कर सकेंगे।
5. शान्ति के लिए सफल संघर्षों की सूची बना सकेंगे।
6. शान्ति के लिए संवाद की चल रही प्रक्रियाओं का मूल्यांकन कर सकेंगे।

चेकोस्लोवाकिया के विधि शास्त्री कारेलवासक ने 1979 में मानवाधिकारों के क्रमिक विकास तथा उनकी प्रकृति को ध्यान में रखते हुए मानवाधिकारों की तीन पीढ़ियाँ बतायी हैं। इन तीनों पीढ़ियों के मानवाधिकारों का विकास भी इसी क्रम में हुआ है। प्रथम पीढ़ी में नागरिक व राजनीतिक अधिकार शामिल हैं। दूसरी पीढ़ी में सामाजिक तथा आर्थिक अधिकार शामिल हैं तथा तीसरी पीढ़ी में सामुदायिक अधिकार जैसे विकास का अधिकार, स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार आदि शामिल हैं।

अति प्राचीन काल से ही शान्ति शिक्षा की बात की जाती रही है। संसार के सभी धर्म-दर्शन-मानव जीवन में शान्ति के महत्त्व को बताते रहे हैं। भारतीय धर्म-दर्शनों में विश्वबन्धुत्व मानव कल्याण, प्रेम एवं शान्ति का उपदेश दिया गया है। जहाँ एक ओर महावीर स्वामी जी ने अहिंसा को मानव का परम धर्म स्वीकार

किया है वहीं गौतम बुद्ध जी ने मानव को करूणा और शान्ति का संदेश पहुँचाया है। ईसाई धर्म में प्रभु ईसा मसीह ने संसार को प्रेम, दया, शान्ति एवं सेवा की शिक्षा प्रदान की है। इस्लाम धर्म ने भी संसार के लोगों को समानता व भाई-चारे का संदेश दिया है। 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध हुआ तब ब्रिटेन के बर्ट्रेन्ड रसेल ने ब्रिटेन की युद्ध नीति का विरोध किया और विश्व में युद्ध के स्थान पर शान्ति को महत्त्व दिया, परन्तु ब्रिटेन की साम्राज्यवादी नीति के आगे उनकी आवाज नहीं सुनी गई जिसके परिणामस्वरूप युद्ध हुआ और इस युद्ध में 1,12,000 सैनिक तथा 50,000 नागरिक मारे गए और बहुत नुकसान हुआ। विश्वयुद्ध के दुष्परिणामों को देखकर विश्व के लोग शान्ति की स्थापना पर सोचने-विचारने लगे। तब 1924 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई।

संयुक्त राष्ट्र संघ के पाँच मूलभूत सिद्धान्त हैं-

- शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्त्व
- सहयोग
- आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप
- अनाक्रमण
- शान्तिपूर्ण ढंग से समस्याओं का समाधान

संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ-साथ वैयक्तिक रूप से भी संसार की अनेक संस्थाओं एवं अनेक महापुरुषों ने जनमानस को शान्ति का संदेश दिया परन्तु फिर भी विश्व में 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया। यह विश्वयुद्ध प्रथम विश्वयुद्ध से अधिक भयंकर था। इस युद्ध में परमाणुअस्त्रों के प्रयोग ने जापान के नगर हिरोशिमा और नागासाकी में मानवता की नींव ही झकझोर कर रख दी।

सन् 1939 के विश्वयुद्ध में लगभग 1,70,000 सैनिक एवं 1,90,000 नागरिक मारे गए थे और जान-माल की भारी हानि हुई थी। अब विश्व पुनः युद्ध के स्थान पर शान्ति की बात सोचने-विचारने लगा। परन्तु वास्तविकता आज भी कुछ और ही है। आज विश्व तीसरे विश्वयुद्ध की सम्भावनाओं को नकार नहीं सकता है। आज विश्व का हर देश अपनी सुरक्षा के लिए अपने राष्ट्रीय बजट का 40-50 प्रतिशत व्यय कर रहा है। हम एक ओर शान्ति का नारा दे रहे हैं और दूसरी ओर परमाणु अस्त्र तैयार कर रहे हैं। यदि हम अमेरिका की बात करें तो उसके पास इतने परमाणु अस्त्र हैं कि यह संसार कई बार नष्ट किया जा सकता है। अब एक बात तो निश्चित ही है कि यदि तीसरा विश्वयुद्ध नहीं रोका गया तो मानव अस्तित्त्व ही समाप्त हो जाएगा। इस खतरे से विश्व को बचाने के लिए ही अब युद्ध के बदले पर शान्ति अधिक बल दिया जा रहा है।

2.3 राजनीतिक क्षेत्र में चल रहे संघर्ष

भारत एक महान लोकतांत्रिक देश है लेकिन इसके सामने विभिन्न समस्याएँ एवं चुनौतियाँ उत्पन्न हो गई हैं जिससे भारत की शान्ति भंग होती जा रही है। शान्ति के मार्ग में बाधक मुख्य चुनौतियों में क्षेत्रवाद, साम्प्रदायवाद, क्षेत्रीय विषमताएँ, अपराधीकरण, हिंसा, जनसंख्या विस्फोट, गरीबी, अशिक्षा, जातिवाद, सामाजिक-आर्थिक -असमानता आदि प्रमुख हैं।

क्षेत्रवाद- भारत में राष्ट्रनिर्माण एवं शान्ति के मार्ग में जो बाधाएं दिखाई देती हैं, उनमें क्षेत्रवाद प्रमुख है। क्षेत्रवाद ने शान्ति एवं व्यवस्था को बनाए रखने में तो बाधा उत्पन्न की ही है, साथ ही साथ देश की एकता एवं अखण्डता को भी जबरदस्त चुनौती दी है।

भारत के परिपेक्ष में क्षेत्रीयवाद का अर्थ-राष्ट्र की तुलना में किसी क्षेत्र विशेष अथवा राज्य की अपेक्षा एक छोटे क्षेत्र से लगाव, अपनापन उसके प्रति भक्ति या आकर्षण रखने से है। क्षेत्रवाद राष्ट्रीयता की वृहत् भावना का विरोध है। इसका ध्येय संकुचित क्षेत्रीय स्वार्थों को पूरा करना है। भारत में क्षेत्रवाद क्षेत्र के अलावा भाषा एवं धर्म से भी सम्बन्धित रहा है। क्षेत्रवाद एक देशव्यापी समस्या है, क्षेत्रीय मुद्दों को लेकर भारत के विभिन्न लोगों में बहुधा आंदोलन एवं अभियान होते रहते हैं। भारतीय राजनीति में आज क्षेत्रवाद जिस रूप में है, वह मूलतः स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद की घटना है।

भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद उदय होने के कारण-

i. आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में विकास का असमान रूप तथा इन क्षेत्रों में विकास के अभाव से जनता में भारी निराशा का जन्म हुआ, जिससे क्षेत्रवाद को बढ़ावा मिला।
ii. जीविका के लिए रोजगार को लेकर भूमिपुत्र की अवधारणा का जन्म हुआ महाराष्ट्र में शिवसेना, असम में असमगण परिषद, झारखण्ड में झारखण्ड मुक्ति मोर्चा जैसे राजनीतिक दलों ने भूमिपुत्र की अवधारणा को अपना राजनीतिक उपकरण बनाया है जिससे क्षेत्रवाद को बढ़ावा मिला है।
iii. क्षेत्रीय दलों के निर्माण एवं सशक्तिकरण ने भी क्षेत्रवाद को बढ़ावा दिया है। भाषायी आधार पर जब से राज्यों का निर्माण हुआ तब से क्षेत्रवाद को भाषावाद से बहुत बढ़ावा मिला है।
iv. सन् 1990 के बाद देश में जबरदस्त रूप से गठबंधन की राजनीति का प्रारम्भ हुआ है। जिसके कारण क्षेत्रीय दलों के समर्थन के लिए पैकेज की राजनीति का प्रचलन शुरू हुआ है जिससे राजनीति में क्षेत्रवाद को बढ़ावा मिला और देश में शान्ति प्रयासों को जबरदस्त झटका लगा है।

साम्प्रदायवाद- साधारण शब्दों में साम्प्रदायवाद का अर्थ है-धर्म अथवा सम्प्रदाय के आधार पर एक-दूसरे के विरुद्ध भेदभाव रखना।

डॉ॰ ई. स्मिथ के शब्दों में, ''साम्प्रदायिकता को आमतौर पर किसी धार्मिक समूह के स्वार्थी, विभाजक और आक्रोशपूर्ण दृष्टिकोण से जोड़ा जाता है।

साम्प्रदायिकता के अंतर्गत ने सभी भावनाएँ तथा क्रिया-कलाप आते हैं जिनके आधार पर किसी विशेष समूह के हितों पर बल दिया जाए और उन हितों को राष्ट्रीय हितों से भी ऊपर की प्राथमिकता दी जाए। ऐसी भावनाओं तथा कार्यकलापों के पीछे स्वार्थ-सिद्धि का लक्ष्य होता है। धर्म का प्रयोग राजनीति में तनाव को उत्पन्न करता है जिससे देश में अशान्ति फैलती है। भारत में 'मुस्लिम लीग', म'ुस्लिम मजलिस', 'इस्लामिक स्वयं संघ', 'मजलिसे मुशब्बरात,' 'हिन्दू महासभा', 'अकाली दल', 'बजरंग दल', 'शिवसेना' आदि संगठन साम्प्रदायिक संगठन हैं जो भारतीय राजनीति को प्रभावित कर देश की शान्ति को भंग कर रहे हैं।

भारत में सम्प्रदाय की समस्या के लिए मुख्य कारण सरकार की उदासीनता एवं राजनेताओं की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति है। मुसलमानों का आर्थिक एवं शैक्षिक पिछड़ापन भी साम्प्रदायवाद के लिए जिम्मेदार है। साथ ही भारत में साम्प्रदायिकता का एक कारण संकुचित दलीय, गुटीय तथा चुनावी राजनीति भी है।

भारत में साम्प्रदायवाद के दुष्परिणाम-

i. साम्प्रदायवाद-राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, विकास एवं राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए घातक है।
ii. साम्प्रदायवाद-देश में राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न करता है। साथ ही साम्प्रदायिक दंगों में अनेकों जाने चली जाती हैं एवं राष्ट्रीय सम्पत्ति को भी हानि पहुँचती है।

क्षेत्रीय असंतुलन- भारत की जनसंख्या विश्व में दूसरे स्थान पर है। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का विश्व में सातवाँ स्थान है। इसका क्षेत्रफल 32,87,782 वर्ग किलोमीटर है। भौगोलिक आधार पर भारत में बहुत सी विषमताएँ पाई जाती हैं। पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश सबसे उपजाऊ भूमि वाले क्षेत्र हैं। वहीं राजस्थान जैसे मरुस्थल में अल्पमात्रा में भी कृषि उपज सम्भव नहीं है। इसी प्रकार किसी क्षेत्र में अनाज का, किसी क्षेत्र में कपास, चाय का उत्पादन होता है। किसी क्षेत्र में खनिज सम्पदा का अपार भण्डार है। भारत में जाति, धर्म व सांस्कृतिक विभिन्नताएँ भी पाई जाती हैं। विकास की दृष्टि से भारत में क्षेत्रीय असंतुलन ने भारतीय लोकतंत्र को प्रभावित किया है जिसके कारण क्षेत्रवाद तथा प्रथकतावाद की भावना का जन्म हुआ है।

क्षेत्रीय असंतुलन के कारण ही पृथक राज्यों की माँग प्रबल हुई है जिससे हिंसात्मक राजनीति का जन्म हुआ है तथा विभिन्न राज्यों में आंदोलन, संघर्ष, तनाव आदि की स्थितियाँ पैदा हो रही हैं जो राष्ट्रीय एकता में बाधक हैं।

निरक्षरता- वर्तमान में निरक्षरता भारतीय लोकतंत्र के समक्ष एक गम्भीर चुनौती है क्योंकि भारत की अधिकांश जनसंख्या निरक्षर है। भारत में साक्षरता का राष्ट्रीय प्रतिशत आज 52.21 है। निरक्षरता मानव जाति के लिए अभिशाप है। निरक्षर व्यक्ति को अपने कर्तव्यों एवं अधिकारों का बोध नहीं होता है जिसके कारण न तो वह अपने अधिकारों को प्रयोग कर सकता है और न ही कर्तव्यों का पालन कर सकता है। इसके कारण भारत के विकास की गति बहुत धीमी हो गई है। जीवन के सभी क्षेत्रों में निरक्षर व्यक्ति के

शोषण की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। साथ ही निरक्षरता ने भारतीय समाज में आर्थिक विषमताओं को जन्म दिया है, जिससे अपराधों में वृद्धि हुई है तथा अंधविश्वासों में व्यक्ति आज तक घिरा हुआ है।

हिंसा एवं सम्प्रदायवाद- भारतीय लोकतंत्र तथा राष्ट्रीय एकता अखण्डता एवं शान्ति के लिए हिंसा एक गम्भीर चुनौती है जो देश के आर्थिक व सामाजिक ढाँचे को छिन्न-भिन्न कर देती है। भारतीय समाज में हिंसा कई रूपों में दिखाई देती है जैसे जातिगत हिंसा, चुनावी हिंसा, वर्गीय हिंसा, साम्प्रदायिक हिंसा, उग्रवादी गुटों की हिंसा, राजनीति से प्रेरित हिंसा एवं हित समूहों के द्वारा की जाने वाली हिंसा।

भारत में हिंसा को बढ़ावा देने में अलगाववाद की मुख्य भूमिका रही है। अलगाववाद से हिंसा को जबरदस्त बढ़ावा मिला है। अलगाववादी आंदोलनों में नागा आंदोलन, द्रविडनाड आंदोलन, मिजों मांग, पंजाब में अलगाववाद, उल्फा आंदोलन और जम्मू कश्मीर में अलगाववादी घटनाएं प्रमुख हैं। भारतीय समाज में हिंसा के लिए निम्नलिखित मुख्य कारणों को जिम्मेदार माना गया है-

i. जब शासन लोगों की आवश्यकताएं, आशाएं और अपेक्षाएं पूरी करने में असमर्थ होता है तो जनता में तीव्र असंतोष व निराशा उत्पन्न होती हेजिससे लोग हिंसा की ओर अग्रसर होते हैं।
ii. केन्द्र एवं राज्य स्तर पर अयोग्य नेतृत्व भी हिंसा का आधार बनता है।
iii. आर्थिक क्रियाकलाप जैसे बेरोजगारी, निर्धनता, तस्करी आदि भी हिंसा को बढ़ावा देते हैं।
iv. भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था की त्रूटियाँ जैसेः- प्रशासन द्वारा समस्या समाधान में अनावश्यक देरी होना, भ्रष्टाचार, लालफीता शाही, अकुशलता आदि भी हिंसा को बढ़ावा देते हैं।
v. भारत के राजनीतिक दल और उसके नेतागण सत्ता प्राप्ति की लालसा में देश के लिए जातीय हिंसा को अपना लेते हैं। ऐसे ही भारत के पड़ोसी देश पाकिस्तान तथा चीन भी भारत में हिंसा को बढ़ावा देने में सक्रिय रहते हैं। पंजाब तथा जम्मू-कश्मीर राज्य में पाकिस्तान हिंसक तत्त्वों को प्रोत्साहन देता रहता है। साथ ही चीन तथा पाकिस्तान मिजो तथा नागा विद्रोहियों को सैनिक व अन्य सहायता देकर उकसाते रहते हैं। हिंसा तथा अलगाववाद देश के लोकतांत्रिक को कमजोर कर रहे हैं। हिंसात्मक प्रवृतियों के कारण देश के आर्थिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक एवं शैक्षिक आदि क्षेत्रों का समुचित विकास नहीं हो पा रहा है। वहीं हिंसा ने पृथक स्वायतशासी राज्यों की मांगों को भी बढ़ावा दिया है। ये सब देश की राजनीति में अस्थिरता लाते हैं एवं शान्ति प्रयासों में बाधा उत्पन्न करते हैं।

भारत में स्वतंत्रता के समय सन् 1947 में भारत विभाजन (भारत-पाकिस्तान) के दौरान साम्प्रदायिक दंगों (हिन्दू-मुस्लिम) ने विकराल रूप धारण कर लिया था। वहीं सन् 1961 में मध्य प्रदेश के जबलपुर में भी साम्प्रदायिक दंगे हुए। सन् 1964 में बिहार, बंगाल तथा मध्य प्रदेश में साम्प्रदायिक दंगे व्यापक रूप से फैले। साम्प्रदायिक दंगों का यह चक्र 1970 तक लगातार चलता रहा और यह बिहार के अलावा महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, गुजरात, पश्चिम बंगाल, कश्मीर एवं असम तक फैल गया। इसमें लगभग 1100 हिंसक घटनाएँ घटीं। सन् 1984 की साम्प्रदायिक हिंसा ने आंध्र प्रदेश राज्य के हैदराबाद एवं महाराष्ट्र के

मुम्बई एवं औरंगाबाद शहरों को पूरी तरह अपनी चपेट में ले लिया था। वहीं 1989 में बिहार के भागलपुर के दंगो का रूप भी काफी वीभत्स था। भारत में मुख्यतः दंगे हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच हुए परन्तु 1984 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी की हत्या के बाद हिन्दू सिख दंगे भड़क गये। 06 दिसम्बर 1992 में अयोध्या में विवादित बाबरी मस्जिद गिरा दिए जाने से पूरे देश में साम्प्रदायिक हिंसा फैल गई। 2002 में गोधरा रेलवे स्टेशन पर साबरमती एक्सप्रेस पर हमला कर चार डिब्बों में आग लगा दी गई। गुजरात में भड़की हिंसा 2 माह तक चलती रही जिसके फलस्वरूप वहाँ के विधानसभा चुनावों (दिसम्बर 2002) तक साम्प्रदायिक तनाव की स्थिति बनी रही। इस प्रकार साम्प्रादयिक ताकतें हिंसा को बढ़ावा देती है।

जातिवाद- भारतीय लोकतंत्र को प्रभावित करने में जातिवाद एक महत्त्वपूर्ण एवं निर्णायक तत्त्व है। इसका प्रभाव प्रत्येक स्तर पर व क्षेत्र पर पड़ता है। यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि भारत में राजनीतिक व्यवस्था एवं सामाजिक व्यवस्था एक दूसरे को प्रभावित करती है। सामाजिक व्यवस्था में जातिवाद एक प्रमुख पहलू है जो पूरे भारत राष्ट्र की राजनीति को प्रभावित करता है। डॉ. नर्मदेश्वर प्रसाद के अनुसार, ''जातिवाद, राजनीति में परिणत जाति के प्रति निष्ठा है।''

अतः जातिवाद एक जाति के लोगों की वह भावना है जो उन्हें अपनी जाति विशेष के हितों की रक्षा के लिए प्रेरित करती है, साथ ही अन्य जातियों के हितों की अवहेलना भी करती है। राजनीति एंव प्रशासन में भी जातीय आचरण देखा जाता है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर जाति का प्रभाव निम्नलिखित रूपों में देखा जाता हैः-

भारत में लोकसभा तथा राज्य विधानसभा चुनावों में राजनीतिक दल प्रत्याशियों का चयन प्रायः जाति के आधार पर ही करते हैं। यहाँ तक कि राजनीतिक दलों का गठन भी जातिगत आधार पर होने लगा है। भारत में मतदाताओं का व्यवहार भी जातिवाद से अछूता नहीं है। जातियाँ संगठित होकर राजनीतिक एवं प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं।

भारत में राजनीतिक पुरस्कारों के वितरण में भी जातिवाद की झलक देखी जा सकती है।

जातिवाद के दुष्परिणाम- भारतीय समाज में जातिवाद ने जातीय एवं वर्गीय संघर्षों को बढ़ावा दिया है जो देश व समाज के विकास में बाधक है। जाति के आधार पर चयनित व्यक्ति अपनी जाति को सभी प्रकार की सुविधाएँ देने का प्रयास करता है। इससे राजनीतिक भ्रष्टाचार का जन्म होता है जो राष्ट्रीय एकता-एवं अखण्डता के लिए उचित नहीं है। जातिवाद की भावना से प्रेरित मतदाता अपनी जाति के अयोग्य प्रत्याशियों को ही वोट देते हैं जिससे योग्य व्यक्तियों का चयन ही नहीं हो पाता है।

राजनीति का अपराधीकरण - वर्तमान में भारतीय राजनीति का अपराधीकरण बहुत तेजी से बढ़ रहा है। देश के समस्त नागरिकों को चाहिए कि वह आत्मावलोकन करे और प्रयास करे कि जो नैतिक मूल्य हम खो चुके हैं उन्हें हम सभी पुनः आत्मसात करें। देश में सभी ओर कालाबाजारी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, जातिवाद व सांप्रदायकिता का जहर फैल रहा है। ऐसा देखा गया है कि भारतीय राजनीति में धन व शक्ति का बोल-बाला है। एक आकलन के अनुसार सामान्यतः 90 प्रतिशत से भी

अधिक हमारे नेतागण या तो अत्यधिक धनाढ्य परिवारों से होते हैं अथवा उनका संबंध आपराधिक छवि वाले लोगों से होता है। गुणवत्ता कभी भी हमारी चुनाव प्रक्रिया का आधार नहीं बन पायी है। शायद यही कारण है कि योग्य व्यक्ति आगे नहीं आ पाते हैं और यदि आते भी हैं तो धन शक्ति का अभाव उन्हें पीछे खींच लेता है। इसलिए राजनीति में वे लोग आ जाते हैं जिनमें स्वार्थपरता की भावना देश के प्रति प्रेम की भावना से कहीं अधिक बलवती होती है। यदि किसी कार्यालय अथवा विभाग का शीर्षस्थ अधिकारी ही अयोग्य, भ्रष्ट अथवा अपराधी प्रवृत्ति का होगा, तब इन परिस्थितियों में प्रशासन को स्वच्छ रखना बहुत कठिन हो जाता है। हमारी राजनीति की विडम्बना भी कुछ इसी प्रकार है।

देश के अधिकांश नेता ही जब अपराधी प्रवृत्ति के हैं तब परिणामतः देश की राजनीति का अपराधीकरण स्वाभाविक ही है। यही भ्रष्ट नेता अपने प्रशासन में भ्रष्टाचार व भाई-भतीजावाद को जन्म देते हैं। देश के अनेक महत्त्वपूर्ण पदों को यह सीधे प्रभावित करते हैं तथा पदों पर भर्तियाँ योग्यताओं के आधार पर नहीं अपितु इनकी सिफारिशों व निर्देशों के अनुसार होती हैं।

हमारे देश की कानून-व्यवस्था में भी सुधार की आवश्यकता है। इस व्यवस्था में अनेक कमजोर कड़ियाँ हैं। अनेक भ्रष्ट नेताओं पर आरोप लगते रहे हैं परन्तु आज तक शायद ही किसी बड़े नेता को सजा के दायरे में लाना संभव हुआ हो। वे अपने पद, धन अथवा शक्ति के प्रभाव से स्वयं को आजाद करा लेते हैं तथा स्वयं को स्वच्छ सिद्ध करने में सफल हो जाते हैं।

देश के लिए अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि स्वतंत्रता के छह दशकों के बाद भी हमारी राजनीति का आधार जातिवाद, क्षेत्रीयवाद तथा भाई-भतीजावाद है। आज भी अधिकांश नेता इसी आधार पर चुनाव जीत कर राजनीति में आते है। ये लोग जनमानस की कमजोरी का पूरा लाभ उठाते हैं। कुर्सी पाने की लालसा में यह किसी भी स्तर तक गिर जाते हैं तथा लोगों को जाति, क्षेत्र, भाषा व धर्म के नाम पर आपस में लड़ाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।

"फूट डालो और राज करो" की नीति भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के समय राष्ट्र के तत्कालीन शीर्ष नेताओं की हठधर्मिता और व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण देश का विभाजन हुआ क्योंकि वे जानते थे कि एक साथ रहकर अपना मतलब सिद्ध नहीं कर पाएंगे।
संविधान में अल्पसंख्यकों को विशेषाधिकार तथा जम्मू-कश्मीर के लिए धारा 370 की व्यवस्था करके देश में संप्रदायबाद को बढ़ावा दिया गया। भाषा के आधार पर राज्यों का गठन भी 'फूट डालो और राज करो' की नीति के निर्वाह के लिए किया गया।
सभी दल किसी-न-किसी मुद्दे पर अपनी राजनीति चला रहे है। पिछड़ें वर्गों को आरक्षण, मंदिर-मस्जिद विवाद ओर हिंदुत्व पुनर्जागरण जैसे अनेक मुद्दे प्रमुख हैं। इन मुद्दों पर वे नागरिकों में वर्ग-विभेद, विद्वेष तथा तनाव जैसी स्थितियाँ पैदा कर रहे हैं।

कुछ क्षेत्रीय पार्टियों, तेलगुदेशम् डी.एम.के. नेशनल कॉन्फ्रेंस, बसपा, समता पार्टी, झारखण्ड-मुक्ति मोर्चा, बिहार पीपल्स पार्टी, असम गण परिषद्, सिक्किम संग्राम परिषद् आदि संकुचित विचारधारा पर आधारित विभाजन के ही प्रतिफल हैं।

ये राजनीतिक दल जनता को भड़काकर कभी पूर्वांचल के लिए कभी वनांचल तो कभी-बोडोलेंड जैसे अलग राज्यों की धारणा को लेकर उनसे तरह-तरह के अपराध तथा तोड़-फोड़ करवाते हैं इस प्रकार राजनीतिक दलों ने आम जनता के सहिष्णु स्वभाव को परखकर अपनी दूरी-बढ़ाई है। इसमें अपनी प्रतिष्ठा समझकर 'येन-केन प्रकारेण' 'फूट डालो और राज करो' की नीति के अनुगामी बनकर 'भ्रष्ट करो और राज करो' की नीति अपनाई है।

अपराधियों के राजनीतिक संबंध होने के कारण पुलिस उनसे डरती है तथा उनके खिलाफ दर्ज-मुकदमें पर कोई सुनवाई नहीं होती। फलतः ऐसे असामाजिक तत्त्व और हत्या जैसे अपराधों के अभियुक्त भी बड़ी संख्या में सांसद, विधायक और कई बार तो मंत्री तक बनने में सफल हो जाते हैं।

वैश्विक पटल पर राजनीतिक क्षेत्र में चल रहे संघर्ष

भारत-चीन विवाद- कुछ मुद्दों को लेकर भारत-चीन के सम्बन्धों में खटास उत्पन्न हुई है जैसे-

- तिब्बतियों के धर्मगुरु दलाई लामा 1959 में भारत आकर बस गये थे तथा विदेशी गणमान्य व्यक्तियों के साथ दलाई लामा की मुलाकतों का चीन विरोध करता रहा है। दलाई लामा के साथ अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा की मुलाकात पर चीन को गम्भीर आपत्ति हुई।
- लद्दाख- अरुणाचल सीमा विवाद व पिछले दिनों हुई घुसपैठ की घटनाओं ने भी भारतीय राजनीति के लिए संकट उत्पन्न किया है।
- कश्मीरियों को स्टेपल वीजा की नीति एवं पाक अधिकृत कश्मीर से होते हुए ग्वादर पोर्ट से शिनजियांग तक सड़क निर्माण के कारण भी दोनों देशों में तनाव की स्थिति बनी।
- दक्षिण चीन सागर में भारत की तेल कंपनियों व वियतनाम के साथ चीन के विवाद के साथ ही पिछले सालों के पारस्पारिक व्यापार में भारत को व्यापार घाटा हुआ।
- छुआवई व अन्य चीनी कम्पनियों पर जासूसी के आरोप ने भारतीय राजनीति में तनाव उत्पन्न किया है जिससे शान्ति के प्रयासों को झटका लगा है।

भारत-अफगानिस्तान सम्बन्ध

कन्धार विमान अपहरण एवं 2014 में हेरात में भारतीय दूतावास पर हमला हुआ जिससे भारत अफगानिस्तान सम्बन्धों में तनाव रहा है।

- पाकिस्तान भी भारत के लिए तनाव की स्थिति पैदा करता रहता है जिससे भारतीय राजनीति में आन्तरिक विक्षोभ उत्पन्न होता है तथा ऐसे वैश्विक मुद्दे भी शान्ति के लिए बड़ी चुनौती बनकर सामने खड़े दिखाई देते है जिससे शान्ति भंग होती है।

2.4 आर्थिक क्षेत्र में चल रहे संघर्ष

आर्थिक क्षेत्र में चल रहे संघर्षों के अन्तर्गत आर्थिक शोषण और पक्षपात, असन्तुलित आर्थिक विकास, प्रतिस्पर्धा का बाजार, अप्रसरणशील आर्थिक व्यवस्था, श्रमिकों का विस्थापन और असमावेशन आदि है। आर्थिक कारणों में अल्प वेतन, महँगाई, कालाबाजारी एवं पूंजी संग्रह की प्रवृत्ति का भ्रष्टाचार के साथ गहरा सम्बन्ध है जैसे जिन कर्मचारियों को वेतन कम मिलता है, वे अपनी आवश्यकताओं व दायित्वों का निर्वाह नहीं कर पाते जिससे वे भ्रष्ट आचरण करने लगते हैं। जिस अनुपात में महँगाई बढ़ती है, उस अनुपात में आम आदमी की आय नहीं बढ़ती। व्यक्ति येन-केन प्रकारेण अपनी जरूरतों को पूरा करने में जुट जाता है, जिससे कालाबाजारी, धन संग्रह की प्रवृत्ति एवं अवैध तरीकों से धन संचित करने में ेभी परहेज नहीं करता है।

समाज के अन्दर वस्तुओं को खरीदने की क्षमता के आधार पर ही मनुष्य की स्थिति का निर्धारण होता है। संयुक्त-राष्ट्र ने यह सीमा 1 डॉलर निर्धारित कर रखी है अर्थात् जो व्यक्ति प्रतिदिन 1 डॉलर से कम में जीवन-यापन करते हैं वे निर्धन हैं। हाल में ही में भारत सरकार ने निर्धनता का पैमाना 20 रुपये रोजना तय किया है जिसे निर्धनता रेखा कहा गया है। इस आधार पर भारत में 20 रुपये से कम में गुजारा करने वाले व्यक्ति (निर्धनता रेखा के नीचे) के रूप में जाने जाते हैं। यह निर्धारण नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्र में अलग-अलग है क्योंकि दोनों स्थानों पर वस्तुओं के मूल्य में अन्तर होता है। वर्तमान आर्थिक व्यवस्था में उपभोग की वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है तथा इन उत्पादों को बड़े-बड़े कारखानों में अत्याधुनिक मशीनों द्वारा तैयार किया जाता है जिसमें कम श्रम लगता है। कुछ दशक पूर्व यही उत्पादन परम्परागत मशीनों के द्वारा सम्पन्न होता था जिसमें लाखों श्रमिकों को रोजगार मिला हुआ था।

मशीनों के आधुनिकीरण तथा कम्प्यूटरीकृत तकनीकी के कारण परम्परागत श्रम का महत्त्व कम होता गया तथा कारीगरी के कारण तैयार माल को महत्त्व कम होता गया क्योंकि ग्राहक वही माल खरीदते है जो सस्ता और टिकाऊ होता। इसी का परिणाम यह हुआ कि बाजार सामान से भर गया और प्रतिस्पर्धा के कारण वही ही सामान बिका जो सस्ता एवं सर्वश्रेष्ठ था जब परम्परागत तरीके में बना माल नहीं बिका तो उत्पादक उन मजदूरों को तनख्वाह भी नहीं दे पाए जिससे मालिक मजदूर विवाद उत्पन्न हुआ और पुराने कारखाने बंद हो गए जिससे लाखों की संख्या में मजदूर बेरोजगार हो गए। यह स्थिति बड़ी भयावह होती है जिसमें समाज का ताना-बाना बुरी तरह प्रभावित होता है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आर्थिक विकास एवं समद्धि की दिशा में विश्व का ही नहीं, अपितु भारत का भी ध्यानाकर्षण हुआ। आर्थिक विकास के चलते क्रमशः आर्थिक नीतियाँ भी बनाई गईं। वर्तमान काल में आर्थिक नीतियाँ भी बनाई गईं। वर्तमान काल में आर्थिक कार्यक्रमों के सम्बन्ध में न केवल राजनेताओं की, बल्कि 'जनसाधारण की भी

रुचि रही है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विविध पहलुओं के सम्बन्ध में 1991 में दिए गए अनेक सरकारी नीति विषयक वक्तव्यों ने नई आर्थिक नीति को स्पष्ट तथा ठोस रूप प्रदान किया है। आर्थिक नीति की प्रमुख विशेषता आर्थिक उदारीकरण है। सरकार द्वारा उदारीकरण को जोरदार समर्थन मिल रहा है जिसके कारण अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भारत में व्यापार कर रही हैं।

2.4.1. भारत में आर्थिक उदारवाद एवं उसके दुष्प्रभाव

भारत में पी.वी. नरसिम्हा राव जी की सरकार को इसका श्रेय दिया जाता है कि उन्होंने देश में आर्थिक उदारवाद की राह खोली, जोकि पूर्व सरकारों की नियन्त्रण वादी आर्थिक नीतियों के कारण पूरी तरह बन्द थी और जिसमें देश की अर्थव्यवस्था का दम घुट रहा था, लेकिन यह उदारवाद बुराइयों से मुक्त नही रहा है। यह देखने में आता है कि उदार अर्थव्यवस्था के साथ पूंजीवाद की अनेक बुराइयाँ भी देश में आ गई हैं। हर्षद मेहता के शेयर घोटाले ने देश को हिलाकर रख दिया था।

आर्थिक मामले में कोई भी देश अन्तर्राष्ट्रीय प्रभावों व तकाजों की पूरी तरह अवहेलना नहीं करता, परन्तु जिस प्रकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भारत के आर्थिक क्षेत्र में आने की खुली छूट दी गई है, उसने भारतीय अर्थव्यवस्था के सभी सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों को अत्यन्त प्रभावित किया है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ और विकसित भारत देश के साथ बहलाओ और हड़पों की नीति का पालन करती हैं।

2.4.2. सामाजिक विषमता एवं आर्थिक उदारवाद

सामाजिक विषमता के कारण ही भारत अरबपतियों की संख्या के मामले में प्रगति कर रहा है। भारत रूस और ब्रिटेन को पीछे छोड़ कर अमेरिका और चीन के बाद दुनिया का तीसरा ऐसा देश बन गया है जहाँ सबसे ज्यादा 97 अरबपति हैं, वहीं दूसरी तरफ देश की 30-35 प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा के नीचे गुजर बसर कर रही है। ऑक्सफॉम के एक सर्वे के अनुसार, विश्व की आधी सम्पत्ति पर विश्व के केवल एक प्रतिशत लोगों का ही आधिपत्य है। वर्ष 2016 में विश्व के एक प्रतिशत सबसे अमीर लोगों के पास बाकी 99 प्रतिशत आबादी से भी अधिक की सम्पत्ति होगी। दूसरी तरफ आज विश्व में 9 में से एक व्यक्ति के पास खाने के लिए भी पर्याप्त पैसे नहीं है।

हम कह सकते है कि अमीर और ज्यादा अमीर होते जा रहे हैं। तथा गरीब और ज्यादा गरीब। इस आर्थिक केन्द्रीयकरण ने लोगों के मन में लोकतंत्र को लेकर भी शंका उत्पन्न कर दी है, क्योंकि यह धारणा बनती जा रही है कि सारे नियम-कानून अमीरों के लाभ के लिए ही बनाए जा रहे है। गरीबों को ध्यान में ही न रखा जाता। विचारकों का मानना है कि आर्थिक उदारवाद से समृद्धि भले ही आए, मगर असमानता भी आती है।

सन् 1991 में सरकार ने नई आर्थिक नीति की औपचारिक घोषणा की परन्तु देखा जाए तो गरीब किसानों का सामन्ती लोगों ने बहुत शोषण किया। अगर 70 साल के लोकतंत्र और स्वशासन में एक प्रतिशत बनाम 90 प्रतिशत का अनुपात देखा जा रहा है तो फिर क्या परिवर्तन हुआ है। सामाजिक असमानता,

आर्थिक असमानता, शैक्षिक असमानता, क्षेत्रीय असमानता और औद्योगिक असमानता ही देश को विकसित होने से रोकती है। यदि देखा जाए तो आर्थिक न्याय ही सामाजिक न्याय की नींव है। आर्थिक न्याय के बिना हम सामाजिक न्याय के विषय में सोच भी नहीं सकते।

एक रिपोर्ट सचेत करती है कि ''किसी भी माप से हम सुपर-धनवानों के काल में रह रहें हैं यह मुलम्में का दूसरा काल है जिसमें चमक-दमक वाले मुखौटे ने सामाजिक समस्याओं एवं भ्रष्टाचार को ढ़क लिया है।''

नागरिकों की सामूहिक आवश्यकताओं को पूरा करना, वर्तमान एवं भविष्य के लिए संसाधनों के वितरण को अनुकूलतम-स्तर पर बनाए रखना सरकारों का कर्तव्य है। साथ ही सभी के लिए बाजारी स्वतंत्रताओं के लाभों को अधिकतम करने एवं बाजारी शक्तियों के द्वारा उठने वाली असुरक्षा और आशंका को न्यूनतम करने के लिए अर्थव्यवस्था के अभिकल्याण की दक्षता लोकतांत्रिक सरकारों में होनी चाहिए।

2.5 सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में चल रहे संघर्ष

प्रत्येक राज्य की भाषा और उसकी विरासत की समृद्धि के साथ-साथ उसकी सांस्कृतिक विविधता का सम्मान करते हुए, सरकार ने ''एक भारत श्रेष्ठ भारत'' कार्यक्रम आरम्भ किया है। यह कार्यक्रम अलग-अलग राज्यों को एक वर्ष तक विभिन्न संस्कृतियों से जोड़ता है, ताकि प्रत्येक राज्य एक-दूसरे की सांस्कृतिक भावनाओं को समझकर आत्मसात कर सके।

व्यक्ति जिस समाज में रहता है उसका समुचित प्रभाव उसके व्यक्तित्त्व पर स्पष्ट रूप से पड़ता है। व्यक्ति के व्यक्तित्त्व विकास के निर्धारण में उसके समाज द्वारा प्राप्त सामाजिक अनुभूतियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं क्योंकि व्यक्ति का व्यक्तित्त्व उसके समाज तथा संस्कृति के अनुरूप होता है। प्रत्येक संस्कृति में शिशु के समाजीकरण की एक विधि होती है। इसी विधि के आधार पर ही किसी समाज की संस्कृति सुरक्षित एवं संरक्षित रहती है। व्यक्तित्त्व विकास में अनेक सामाजिक कारकोें का प्रभाव पड़ता है जिनमें से कुछ प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं-

i. माता-पिता का प्रभाव- शिशु के जन्मोपरान्त उसके ऊपर सबसे पहला प्रभाव उसकी माता का पड़ता है फिर उसके पिता का। माता-पिता द्वारा प्राप्त स्नेह शिशु के व्यक्तित्त्व को स्वस्थ एवं स्नेहपूर्ण बनाता है परन्तु आज के सामाजिक वातावरण में देखा जा रहा है कि माता-पिता अपने बच्चे को पर्याप्त समय नहीं दे पा रहे हैं। अतः ऐसे शिशु जिन्हें पर्याप्त स्नेह और सुरक्षा प्राप्त नहीं होती है, कालान्तर में उनमें असामाजिक व्यवहार दिखायी देने लगते है। जैसे बालकों का अपराधी व्यवहार करना तथा हीन भावना, आत्म-केन्द्रित हो जाना तथा उनका अनेक असामाजिक कार्यों में भागीदार बनना।

ii. परिवार के सदस्यों के परस्पर सम्बन्धों का प्रभाव- शिशु के प्रारम्भिक वर्षो के अनुभव उसके भावी व्यक्तित्त्व का निर्धारण करते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने अपने शोधों के माध्यम से इस बात की पुष्टि की है कि जिन परिवारों में लड़ाई-झगड़ा एवं कलह का माहौल होता है, ऐसे परिवारों के

बच्चों में हीन भावना, एवं सांवेगिक अस्थिरता आदि शीलगुण विकसित हो जाते हैं, जिससे उनमें सामाजिक समायोजन करने की क्षमता का विकास नहीं हो पाता है

iii. विद्यालय का प्रभाव- विद्यालय में शिक्षक, सहपाठी, विषय तथा विद्यालय के वातावरण का बालक के व्यक्तित्त्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है। कोर्ट्ज, कोल तथा बेरोन (1976) ने अपने अध्ययन के फलस्वरूप यह पाया कि शिक्षक यदि कुसमायोजित व्यक्तित्त्व का है तो उनके शिष्यों में हीनता तथा असुरक्षा आदि शीलगुणों का विकास होगा और जब शिक्षक समायोजित व्यक्तित्त्व का होता है तो उनके शिष्यों में भी सामाजिक शीलगुणों का विकास होता है।

फ्रैन्सवर्थ, 1975 ने अपने अध्ययनों में बताया कि जब शिक्षक और छात्र के सम्बन्ध बैरपूर्ण होते हैं तो छात्र की शैक्षिक उपलब्धि न्यूनतम हो जाती है।

अतः शिक्षक का व्यवहार भी बालक के विकास को प्रभावित करता है। यदि शिक्षक का व्यवहार बालक के साथ अच्छा होगा तो बालकों में आत्मविश्वास, उत्तरदायित्व की भावना तथा स्वस्थ सामाजिक गुणों का विकास होगा। बालकों पर अपने सहपाठियों के व्यवहार एवं विद्यालय के वातावरण का प्रभाव भी पड़ता है।

iv. सामाजिक स्वीकृति का प्रभाव-सामाजिक स्वीकृति से तात्पर्य समाज में रहने वाले ऐसे व्यक्ति जिसे बालक महत्त्वपूर्ण समझता है उनके द्वारा प्राप्त अनुमोदन तथा स्नेह से है। इसे ही सामाजिक स्वीकृति कहते हैं। यदि बालक को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है तो उसमें प्रसन्नता, आत्मसम्मान, उत्तरदायित्व आदि गुणों का विकास होता है। इसके विपरीत जब बालकों को सामाजिक स्वीकृति नहीं मिलती है तो वे सामाजिक विलगाव की दशा में चले जाते हैं। जिससे उनमें आत्महीनता, अन्तर्मुखता, अप्रसन्नता, आक्रामकता जैसे व्यवहार की अभिव्यक्ति होने लगती है। वह समाज विरोधी कार्य की तरफ उन्मुख हो जाता है और असामाजिक व्यवहार में लिप्त होने के कारण उसका व्यक्तित्त्व विघटित हो जाता है।

v. सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव-संस्कृति एवं व्यक्तित्त्व एक-दूसरे के पूरक हैं। अपने आरम्भिक जीवन काल में बच्चे उन्हीं कार्यों को करते हैं जिन्हें उनके माता-पिता उन्हें सिखाते हैं बच्चे शुरू में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपने माता-पिता द्वारा किए गए कार्यों को सीखता है। किसी व्यक्ति के व्यवहार या आदतों की अभिव्यक्ति द्वारा उसकी संस्कृति को हम सरलता से जान सकते हैं। देश या समाज में विभिन्न प्रकार की संस्कृतियाँ पाई जाती हैं जिनका व्यक्ति के व्यक्तित्त्व पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। जैसे भारत में रहने वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्त्व में भारतीय संस्कृति की झलक पाई जाती है चाहे वह हिन्दू हो, मुस्लिम हो, सिख हो या ईसाई किसी भी जाति, धर्म या वर्ण का हो, सभी में भारतीय संस्कृति की ही झलक मिलती है।

वेलश (1974) ने अपने शोध में पाया कि जिस संस्कृति के बच्चों को शारीरिक दण्ड ज्यादा दिया जाता है, ऐसे बच्चों में आक्रामकता, हीनता, घृणा तथा विद्वेष की भावना विकसित होती है, अर्थात् व्यक्तित्त्व विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

गार्डिनर (1969) ने अपने अध्ययन में विद्वेश के शीलगुण का तुलनात्मक अध्ययन किया, जिसमें उन्होंने चार अलग-अलग देशों (अमेरिका, जर्मनी, ताइवान तथा थाईलैण्ड) के बच्चों में विद्वेश की भावना का तुलनात्मक अध्ययन किया और पाया कि अलग-अलग देशों में पले-बढ़े बच्चों की संस्कृतियाँ भिन्न-भिन्न थीं, इसलिए उनमें विद्वेश के गुण भी कम तथा ज्यादा के रूप में ही पाये गये, जैसे-थाईलैण्ड के बच्चों में विद्वेश की भावना अत्यधिक थी, जबकि अमेरिकन बच्चों में सबसे कम विद्वेश की भावना थी। अतः बालकों का जिस संस्कृति के परिवेश में विकास होता है, उस संस्कृति के खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, धर्म, परम्परा, विवाह, सामाजिक समारोह और सामाजिक संस्थाओं आदि का उन पर प्रभाव पड़ता है।

आक्रामकता- आक्रामकता एक ऐसा व्यवहार है जो किसी व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को नुकसान पहुँचाने, उसे ठेस पहुँचाने या उसकी सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाने के उद्देश्य से किया जाता है। अर्थात् दूसरों के लिए कष्टकर या पीड़ादायक परिस्थितियाँ उत्पन्न करना आक्रामकता का द्योतक है (बुश, 1961)यह एक अवांछित एवं असामाजिक व्यवहार है। समाज इसे अनुचित मानता है। आक्रामकता का प्रदर्शन शारीरिक रूप में (जैसे, मारपीट, लूटपाट एवं अन्य प्रकार की हिंसा) या मौखिक रूप में भी होता है जैसे- बातों के माध्यम से किसी को कष्ट पहुँचाना। आजकल समाज में आक्रामकता की प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है। लोगों में एक-दूसरे को सहने की शक्ति ही खत्म सी हो गई है। जरा-जरा सी बातों में बच्चों को, बड़ों को आक्रामक होते हुए देखा जा सकता है। जिससे सामाजिक सौहार्द्र को नुकसान पहुँचता है। आजकल बालकों के जीवन में नियमितता, समय की पाबन्दी, बुजुर्गों का आदर करना, जीवों पर दया, शिष्टाचार, ईमानदारी, सेवाभाव, श्रम-निष्ठा, संवेदनशीलता, भ्रातृत्व-भाव, राष्ट्रीय-प्रेम, राष्ट्रीय धरोहर की रक्षा आदि गुणों का दिखना दुर्लभ-सा हो गया है।

वर्तमान में केवल भारत ने ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी ने अत्याधिक उन्नति की है तथा अभी कर रही है। इसने मानव जीवन को प्रभावित किया है। इससे एक ओर जहाँ मानव को सुख-सुविधाएँ मिली हैं वहीं इससे मानव जीवन में कई प्रकार के मानसिक संघर्ष एवं चिंताएं बढ़ी हैं तथा जीवन जीने की शैली भी बदल गई है।

आज हम तेज रफ्तार जिन्दगी की सवारी चाहते हैं, तो दुर्घटनाएं न हों यह भी चाहते हैं। हम शारीरिक श्रम न करें, किन्तु स्वस्थ रहें यह भी चाहते हैं। इस सबके पीछे कुछ प्रमुख कारण सामने आए हैं-

- द्वन्द्वात्मक जीवन शैली।
- अर्थोपार्जन के प्रति बढ़ती ललक।
- खण्डित होती सामाजिक की मान्यताएँ।
- संकीर्णता पर आधारित राजनीतिक विचारधाराएँ।
- धार्मिक संस्थाओं का स्वार्थी व लालची हो जाना।
- चल चित्र एवं दूरदर्शन व इन्टरनेट का दुष्प्रभाव ।

- मूल्य रहित शिक्षा-पद्वति।
- रोजगारोन्मुखी शिक्षा जो जीवन मूल्यों की अवहेलना करती हो।
- आर्थिक तंगी, बढ़ती जनसंख्या।
- पुरातनता एवं आधुनिकता में विरोधाभास।
- उपभोगवादी संस्कृति का विकास।
- टूटते परिवार, परिवारों का अपने दायित्वों से दूर होना तथा संयुक्त परिवारों का टूटना आदि।

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति (1986) तथा मूल्य-

गिरते हुए जीवन मूल्यां पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में काफी चिन्ता जताई गई है। शिक्षा नीति में स्पष्ट कहा गया है कि मूल्यों के गिरने के कारण आज मानव का मूल्यों में विश्वास ही उठता चला जा रहा है। इसलिए इस शिक्षा नीति में जीवन मूल्यों के विकास पर काफी महत्त्व दिया गया है। इस नीति में प्रमुख रूप से 5 जीवन मूल्यों को अति महत्त्व दिया गया है। ये मूल्य हैं-

(1) सफाई (2) सच्चाई (3) परिश्रम (4) क्षमता एवं (5) सहयोग। इन पाँचों जीवन मूल्यों को राष्ट्रीय पंचशील का नाम दिया गया है।

साम्प्रदायिकता एवं हिंसा- औद्योगीकरण, पश्चिमीकरण एवं आधुनिकीकरण के कारण लोगों के सामाजिक जीवन में कई प्रकार के परिवर्तन देखे जा रहे है। जैसे अलगाव, आक्रोश, हिंसा, हत्या, आतंकवाद तथा हिंसा सम्बन्धी व्यवहार आधुनिक जीवन में आम बात है।

साम्प्रदायिकता एक अन्तः धार्मिक द्वान्द्वात्मक स्थिति है जिसके अन्तर्गत घृणा, पूर्वाग्रह एवं संदेह का बाहुल्य होता है जो हिंसा की ओर अग्रसर होता है।

साम्प्रदायिकता को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है, "साम्प्रदायिकता अपने ही जातीय समूह के प्रति, न कि समग्र समाज के प्रति, तीव्र निष्ठा की भावना है।"

श्री कृष्ण दत्त भट्ट ने लिखा है, "अपने धार्मिक सम्प्रदाय से भिन्न अन्य सम्प्रदाय तथा सम्प्रदायों के प्रति उदासीनता, उपेक्षा, हेय दृष्टि, घृणा, विरोध और आक्रमण की वह भावना साम्प्रदायिकता है, जिसका आधार वह वास्तविक या काल्पनिक भय या आशंका है कि उक्त सम्प्रदाय हमारे अपने सम्प्रदाय और संस्कृति को नष्ट कर देने या हमें जान-माल के क्षति पहुँचाने के लिए कटिबद्ध है।"

साम्प्रदायिकता के छह आयाम बताए गए हैं-(1) आत्मसात-करण वादी, (2) कल्याणकारी, (3) पलायनवादी, (4) प्रतिशोधपूर्ण, (5) अलगाववादी और (6) प्रथावादी। इसमें चौथा, पाँचवां और छठा रूप समस्याएँ खड़ी करता है और जिनके कारण आन्दोलन, झगड़े, आतंकवाद व बगावत उत्पन्न होते हैं।

साम्प्रदायिकता के कारक

शंकर सरोलिया ने साम्प्रदायिकता के सन्दर्भ में बहुकारक उपागम की व्याख्या दी जिसमें दस प्रमुख कारणों का उल्लेख किया है ये निम्नलिखित हैं-

- सामाजिक कारक-सामाजिक कारकों में सामाजिक परम्पराएँ जाति एवं वर्ग अहम्, असमानता और धर्म पर आधारित सामाजिक स्तरीकरण सम्मिलित हैं।
- भारत में हिन्दू एवं मुसलमान दोनों की सामाजिक सांस्कृतिक परम्पराएँ, सामाजिक प्रथाएँ, सामाजिक रूढ़ियाँ, रीति-रिवाज व जीवन शैली, खान-पान, रहन-सहन, पहनावा नामकरण, अभिवादन आदि में इतना अन्तर पाया जाता है कि साम्प्रदायिक तनाव बढ़ता है।
- धार्मिक कारक- धार्मिक कारकों के अन्तर्गत धार्मिक नियम और धर्मनिरपेक्ष मूल्यों में गिरावट, संकीर्ण और मतान्ध धार्मिक मूल्य, राजनीतिक लाभों के लिए धर्म का उपयोग और धार्मिक नेताओं की साम्प्रदायिक विचारधारा सम्मिलित है। इसी के परिणामस्वरूप भारत में जहाँ एक ओर हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ व शिव सेना आदि राजनीतिक दल बन गए वहीं दूसरी ओर ज़मात-ए-इस्लामी, मुस्लिम मजलिस व अल्पसंख्यकों का संघ आदि बन गए।
- राजनीतिक कारक- इसके अन्तर्गत धर्म पर आधारित राजनीतिक हस्तक्षेप, साम्प्रदायिक हिंसा का राजनीतिक औचित्य और राजनीतिक नेतृत्व की असफलता सम्मिलित हैं। राजनेता धर्म को सत्ता हथियाने के उपकरण के रूप में प्रयोग करते हैं।
- आर्थिक कारक- साम्प्रदायिकता के आर्थिक कारकों में आर्थिक शोषण और पक्षपात, असन्तुलित आर्थिक विकास, प्रतिस्पर्धा का बाजार, अप्रसरणशील आर्थिक व्यवस्था श्रमिकों का विस्थापन एवं असमावेशन और गल्फ से लाए हुए धन का प्रभाव सम्मिलित है। अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि आर्थिक कारकों का साम्प्रदायिकता से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। 'कार्यरत वर्ग' को साम्प्रदायिक आधार पर विभाजित किया जा सकता है।
- कानूनी कारक- कानूनी कारकों में समान कानून संहिता, संविधान में कुछ समुदायों के लिए विशेष प्रावधान और रियायतें, कुछ राज्यों को विशेष दर्जा, आरक्षण की नीति और विभिन्न समुदायों के लिए विशेष कानून सम्मिलित हैं। अतः जब कुछ विशिष्ट समुदायों के विकास के लिए विशेष कानूनी प्रावधान व रियायतें दी जाएंगी, उनके हितार्थ कुछ विशेष कानून बनाए जाएंगे तो ऐसे कानून साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देते हैं।
- मनोवैज्ञानिक कारक- साम्प्रदायिकता के मनोवैज्ञानिक कारकों में सामाजिक पूर्वाग्रह, रूढ़िवाद अभिवृत्तियाँ, अविश्वास, दूसरे समुदाय के प्रति विद्वेष और भावशून्यता, अफवाहें, भय का मानस व जनसम्पर्क के साधनों द्वारा गलत जानकारियाँ देना सम्मिलित है। उदाहरण स्वरूप -भारतीय मुसलमान अकारण ही हिन्दुओं की प्रगति को अपने शोषण का कारण मानकर असन्तुष्ट रहते हैं।

दूसरी ओर हिन्दुओं द्वारा अकारण ही मुसलमानों की राष्ट्रीय निष्ठा में अविश्वास किया जाता है। यह स्थिति साम्प्रदायिकता को बढ़ाती है।

- प्रशासनिक कारक- प्रशासनिक कारकों में पुलिस व दूसरी प्रशासनिक इकाईयों में समन्वय का अभाव, गुप्तचर विभागों की अकुशल कार्यप्रणाली, पुलिस का पक्षपाती रवैया आदि भी साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देता हैं।
- ऐतिहासिक कारक- इसमें विदेशी आक्रमण, धार्मिक संस्थाओं को क्षति, धर्म परिवर्तन के लिए प्रयत्न, उपनिवेशीय शासकों की फूट डालो और राज करो की नीति, विभाजन का मानसिक आघात, पिछले साम्प्रदायिक दंगे, जमीन, मंदिर-मस्ज़िद के पुराने झगड़े शामिल हैं। जब भारत में मुसलमान आए तो उन्होंने तलवार के बल पर लोगों को इस्लाम-धर्म में बदलना प्रारम्भ किया। इससे हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच में एक गहरी खाई खिंच गई। फिर अंग्रेजों की कूटनीति (फूट डालो और राज करो) ने भी साम्प्रदायिकता की भावना को बढ़ाया।
- स्थानीय कारक- स्थानीय कारकों में धार्मिक जुलूस, नारेबाजी, अफवाहें, जमीन के झगड़े, स्थानीय असामाजिक तत्त्व और गुटों में प्रतिद्वन्द्विता शामिल हैं।
- अन्तर्राष्ट्रीय कारक- पड़ोसी देशों द्वारा दिए जा रहे प्रशिक्षण व वित्तीय सहायता, भारत की एकता को भंग करने और कमजोर बनाने के लिए दूसरे देशों द्वारा षडयंत्र रचना और फिर साम्प्रदायिक संगठनों को समर्थन देना शामिल है।

साम्प्रदायिकता एवं सामाजिक-सांस्कृतिक संघर्ष -साम्प्रदायिकता अनेक दुष्परिणामों को जन्म देती है। भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष जनतांत्रिक व्यवस्था का यह एक बड़ा शत्रु है। इससे राष्ट्रीय एकता-अखण्डता की भी हानि होती है। आगजनी, लूटपाट, मारपीट, तोड़फोड़ एवं हिंसा आदि इसके परिणाम हैं। इसके दुष्परिणामों को निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है-

- साम्प्रदायिकता राष्ट्रीय एकता में बाधक है।
- राष्ट्रीय सुरक्षा में बाधक है।
- राष्ट्रीय प्रगति में बाधक है।
- साम्प्रदायिकता से पारस्परिक अविश्वास एवं तनाव उत्पन्न होता है।
- सार्वजनिक धन व जीवन की हानि होती है।
- अराजकता फैलती है।
- राजनीतिक अस्थिरता होती है।
- साम्प्रदायिक हिसाब देने होते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सम्प्रदायवाद किसी देश व समाज के लिए तथा उसकी सांस्कृतिक विरासत के लिए बहुत ही हानिकारक है। इसे मानव विरोधी व राष्ट्र विरोधी कहा जा सकता है।

लैंगिक असमानता एवं सामाजिक उत्पीड़न - समाज के सदस्यों के बीच लिंग पर आधारित अन्तर प्रकट करना लैंगिक असमानता है जिसमें महिला एवं पुरुष दोनों को अलग-अलग देखा व समझा जाता है।

भारतीय समाज में लैंगिक असमानता का विकृत रूप सामन्ती व्यवस्था से ही चला आ रहा है। उस समय सामाजिक व्यवस्था हिन्दू धर्म शास्त्रों के अनुसार थी तथा स्त्री को पुरुषों के समान कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं थे। यह व्यवस्था मनुस्मृति के अनुसार चल रही थी। इसमें महिलाओं को पुरुषों की सेविका के अतिरिक्त कुछ नहीं समझा जाता था जिससे स्त्री की पहचान इंसान के रूप में पराश्रित, अबला सेविका के रूप में बन गई। भारत की 2011 की जनगणना के अनुसार पुरुष तथा महिला की साक्षरता में 10 प्रतिशत का अन्तर है।

भारत में महिला साक्षरता का प्रतिशत निम्न प्रकार है-

वर्ष	महिला साक्षरता
1971	18.4%
1981	25%
1991	39.0%
2001	54.0%

(स्रोतः भारत की जनगणना)

भारत में पुरुषों की तुलना में महिलाओं का अनुपात सदैव कम रहा है। जनगणना 2011 के अनुसार देश का लिंग अनुपात 1991 के 927 के मुकाबले 2011 में बढ़कर 994 हो गया है। किन्तु चिन्ता का विषय यह है कि 0-6 वर्ष के शिशुओं का लिंग अनुपात 1991 के 945 के मुकाबले घटकर 911 हो गया है।

समाज में नारी को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होने से वह पुरुषों के ऊपर निर्भर होती है जिसके कारण वह कोई भी निर्णय स्वयं नहीं ले पाती है तथा मानसिक कुंठा तथा घुटन भरी जिन्दगी व्यतीत करती हुई जीवन-यापन करने को विवश है। इसी आर्थिक असमानता के कारण पढ़ी-लिखी, सुशिक्षित तथा कामकाजी महिलाओं को भी अपने जीवन में अनेक सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है क्योंकि सामाजिक तथा आर्थिक ढाँचा महिलाओं का आधिपत्य स्वीकार करने की स्थिति में नहीं है। ये सब कारण समाज में संघर्ष उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त हैं।

भ्रष्टाचार- शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से भ्रष्ट आचार को भ्रष्टाचार कहते हैं। इस अर्थ में किसी समाज की आचार संहिता के विरुद्ध आचरण भ्रष्टाचार है। इस प्रकार भ्रष्टाचार प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप में अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि के लिए जान-बूझकर विशेष रुप से उल्लेखित कर्तव्य जो समाज में अस्तित्त्व के लिए प्राथमिक शर्त है-का उल्लंघन है।

भ्रष्टाचार वर्तमान भारत की एक गम्भीर समस्या बन चुका है। आज सार्वजनिक जीवन का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहाँ भ्रष्टाचार व्याप्त न हो। सामाजिक जीवन का क्षेत्र हो या राजनीतिक; आर्थिक क्षेत्र हो या शैक्षणिक, धार्मिक क्षेत्र हो या चिकित्सीय; पुलिस तंत्र्ाीय क्षेत्र हो या न्याय तंत्रीय; -यह सर्वत्र मौजूद है। व्यक्ति और समाज एक-दूसरे के पूरक हैं। जब व्यक्ति भ्रष्ट है, तो समाज भ्रष्ट होगा।

आज समाज में विलासी जीवन की ओर लोगों का आकर्षण बढ़ रहा है। फलस्वरुप येन-केन-प्रकारेण अर्थोपार्जन करना, विश्वासघात, चोरी एवं हिंसात्मक व्यवहार आदि समाज का आधार बन गया है। जिसके कारण सामाजिक चरित्र का पतन, समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास, समाज की भौतिकवादी दृष्टि और सामाजिक नियंत्रण का अभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। व्यक्ति के समान समाज का चरित्र निर्धारित होता है जिस समाज का चरित्र गिरा हुआ होगा, वहाँ के लोग भ्रष्टाचारिक मूल्यों में सदैव लिप्त रहेंगे।

सामाजिक नियंत्रण के अभाव में भ्रष्टाचार का विस्तार होता है। जब नियंत्रण की संस्थाएँ व अभिकरण कमजोर हो जाते हैं तो व्यक्ति स्वेच्छाचारी व विचलनकारी व्यवहार करते हैं। इससे भ्रष्टाचार बढ़ता है।

निर्धनता- मानव समाज में अनेक समस्याएँ हैं, जिनमें निर्धनता भी एक है। यह एक ऐसी समस्या है जो समाज के प्रत्येक वर्ग में सर्वत्र व्याप्त रही है। तीसरी दुनिया के देशों, अफ्रीका, भारत, बांग्लादेश तथा पाकिस्तान आदि में निर्धनता एक अत्यन्त ही ज्वलन्त एवं गम्भीर समस्या के रूप में सदियों से विद्यमान रही है। निर्धनता का तात्पर्य मनुष्य की उस आर्थिक स्थिति से लिया जाता है जब वह स्वयं की या अपने आश्रितों की मूलभूत तथा प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अक्षम होता है।

वीवर के अनुसार, "निर्धनता एक ऐसी स्थिति है जिसमें मनुष्य अपनी शारीरिक तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अक्षम होता है।"

वैसे तो समस्त मानव इतिहास में ही वर्गों पर आधारित समाज रहा है, जिनमें एक शोषित वर्ग सदैव ही विद्यमान रहा है जो अभावों में जीवन-यापन करता आया है।

कार्ल मार्क्स के सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक समाज में एक शोषित वर्ग रहा है जो अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को सिर्फ जीवित रहने के लिए तथा समाज के लिए पुनरुत्पादन करने भर के लिए कर पाता है। यह वर्ग गरीब तथा अभावों में जीवन जीने वाला श्रमिक वर्ग है। भारतीय समाज भी इसी प्रकार के समाज का अंग है।

भारतीय समाज लम्बे समय तक सामन्ती तथा धार्मिक परिवेश में रहा है जिसमें एक ऐसा शासक वर्ग तथा जो शासित वर्ग को अशिक्षित तथा धार्मिक अन्धता में रखकर अपनी सत्ता कायम रख सके तथा भारतीय समाज में ऐसी अवधारणा स्थापित कर दी गई थी कि सामन्ती तथा उसके द्वारा धार्मिक आधार पर चलने वाला समाज ही सर्वोत्तम है। भले ही उसमें गरीब वर्ग का व्यक्ति एक मामूली वस्त्र पहनकर तथा रूखी-सूखी खाकर गुजारा कर लें, वहीं पर शासक वर्ग ऐशो-आराम से महलों में तथा महँगे से महँगे वस्त्र, नगीने आभूषण आदि धारण करता रहा हो, छप्पन भोग का आनन्द लेता रहा हो तथा जिसे सही ठहराया जाता रहा है।

अनेक विद्वानों ने अपना मत दिया है कि निर्धनता के लिए कुछ सामाजिक कारण जिम्मेदार रहे हैं। जैसे- धर्म, अन्धविश्वास, कुरीतियाँ, जाति व्यवस्था, परिवार या दोषयुक्त शिक्षा-व्यवस्था तथा तकनीकी शिक्षा की कमी आदि। भारत का बहुत बड़ा हिस्सा शिक्षा से वंचित रहा है। भारतीय समाज में श्रम विभाजन का मुख्य आधार जजमानी व्यवस्था थी जहाँ पर भारतीय ग्रामीण समाज में एक जाति विशेष का नियंत्रण कृषि पर होता था यही जाति 'प्रभुत्वशाली जाति' होती थी। जिसे सब प्रकार के आर्थिक तथा सामाजिक अधिकार तथा नियंत्रण प्राप्त थे। यह व्यवस्था लम्बे समय तक चली जिससे एक वर्ग निर्धन बना रहा। औद्योगिक क्रान्ति के बाद यही वर्ग श्रमिक वर्ग में परिवर्तित हो गया। निर्धनता एक स्थितिजन्य समस्या है तथा समाज के अन्दर व्याप्त एक अभिशाप है जिसके कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं तथा समाज के ताने-बाने तथा व्यवस्था को प्रभावित करती हैं। जिसके दुष्परिणाम समाज के सामने आते हैं। जैसे-

अपराध, शिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति तथा व्यभिचार, सामाजिक असन्तुलन तथा युद्ध।

अशिक्षा- संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में सबसे ज्यादा 287 लाख अशिक्षित वयस्कों की संख्या है। ये आँकड़े देश में शिक्षा के क्षेत्र में चौंका देने वाली असमानता की ओर इशारा करते हैं। कोई भी राष्ट्र स्थिर आर्थिक दर किन्तु नीची साक्षरता दर के साथ होनहार राष्ट्र नहीं माना जा सकता है। भारत वो देश है जहाँ असमानता इस हद तक है कि एक राज्य ने पूर्ण साक्षरता प्राप्त कर ली है और वहीं दूसरी तरफ, ऐसे राज्य भी हैं जहाँ साक्षरता दर बहुत निराशाजनक है।

भारत में अशिक्षा एक गम्भीर समस्या है जो इसके जटिल आयामों के साथ जुड़ी हुई है। यहाँ लिंग असमानता, आय असमानता, राज्य असंतुलन, जाति असंतुलन और तकनीकी बाधाएँ हैं जो देश में साक्षरता की दर को निर्धारित करती हैं। 2011 जनगणना के अनुसार पुरुषों की साक्षरता 82.14 और महिलाओं की साक्षरता 65.46 है। शिक्षा के स्तर पर राष्ट्रीय स्तर को उठाने के लिए कई योजनाएँ जैसे 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति फिर 2001 में सर्व शिक्षा अभियान चलाया गया उसके बाद शिक्षा को अनिवार्य करने के लिए शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 ;त्ज्म् 2009द्ध लागू किया गया। परन्तु आज भी शिक्षा का स्तर सोचनीय है।

बालश्रम- बालश्रम आमतौर पर मजदूरी के भुगतान के बिना या भुगतान के साथ बच्चों से शारीरिक कार्य कराना है। बालश्रम केवल भारत तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह एक वैश्विक समस्या है। यूनीसेफ ने बाल मजदूरी को 3 श्रेणी में विभाजित किया है-

- परिवार के साथ बच्चे घर के कार्यों में बिना किसी वेतन के लगे होते हैं।
- परिवार के साथ पर घर के बाहर-उदाहरण के लिए कृषि मजदूर, घरेलू मजदूर, सीमान्त मजदूर आदि।
- परिवार से बाहर-उदाहरण के रूप में, व्यावसायिक दुकानों जैसे: होटलों में बच्चों से कार्य कराना, चाय बेचने का कार्य कराना, वेश्यावृति आदि।
- अत्यधिक जनसंख्या, अशिक्षा, गरीबी, ऋण जाल आदि बालश्रम के सामान्य कारण हैं।

संविधान के तहत बच्चों की बालश्रम से सुरक्षा का नियमन करने के वाले कानूनों का एक समूह मौजूद है। कारखाना अधिनियम 1948, 14 साल तक की आयु वाले बच्चों को कारखाने में काम करने से रोकता है। खदान अधिनियम 1986, 18 साल से कम आयु वाले बच्चों को खदानों में काम करना निषेध करता है। इतने प्रावधान होने के बावजूद आज भी बाल मजदूर जगह-जगह देखें जा सकते हैं।

2.6 पारिस्थितिक क्षेत्र में चल रहे संषर्घ

विज्ञान के क्षेत्र में असीमित प्रगति तथा नये आविष्कारों की स्पर्धा के कारण आज का मानव प्रकृति पर पूर्णतया विजय प्राप्त करना चाहता है। इस कारण प्रकृति का संतुलन बिगड़ गया है। वैज्ञानिक उपलब्धियों से मानव प्राकृतिक संतुलन को उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा है। दूसरी ओर धरती पर जनसंख्या की निरंतर वृद्धि, औद्योगिकीरण एवं शहरीकरण की तीव्र गति से जहाँ प्रकृति में हरे-भरे क्षेत्रों को समाप्त किया जा रहा है।

2.6.1. पर्यावरण संरक्षण का महत्त्व- पर्यावरण संरक्षण का समस्त प्राणियों के जीवन तथा इस धरती के समस्त प्राकृतिक परिवेश से घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रदूषण के कारण सारी पृथ्वी दूषित हो रही है और निकट भविष्य मे मानव सभ्यता का अंत दिखाई दे रहा है। इस स्थिति को ध्यान में रखकर सन् 1992 में ब्राजील में विश्व के 174 देशों का पृथ्वी सम्मेलन आयोजित किया गया।

इसके पश्चात् सन् 2002 में जोहानिसवर्ग में पृथ्वी सम्मेलन आयोजित कर विश्व के सभी देशों को पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान देने के लिए अनेक उपाय सुझाए गए।

पर्यावरण प्रदूषण के कुछ दूरगामी दुष्प्रभाव बहुत घातक हैं, जैसे- आणविक विस्फोटों में रेडियोधर्मिता का आनुवांशिक प्रभाव वायुमण्डल का तापमान बढ़ना, ओजोन परत को हानि, भूक्षरण आदि। प्रत्यक्ष दुष्प्रभाव के रूप में जल, वायु तथा परिवेश का दूषित होना एवं वनस्पतियों का विनष्ट होना, मानव का

अनेक नए रोगों से आक्रान्त होना आदि देखे जा रहे हैं। बड़े कारखानों से विषैला अपशिष्ट बाहर निकलने से तथा प्लास्टिक आदि के कचरे से प्रदूषण की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ रही है।

20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या ने एक गम्भीर रूप ले लिया है। भोपाल गैस दुर्घटना (1984), चेरनोबिल दुर्घटना (1986) और विश्व के अनेक देशों में अकाल की विभीषिका इस प्रवृत्ति के नमूने के रूप में लिए जा सकते हैं। अमरीकी प्रतिष्ठान यूनियन कार्बाइड के भोपाल स्थित कारखाने में रिसाव के कारण हजारों लोगों की जानें गईं और अनेक लोग विकलांग हो गए थे। सोवियत संघ के चेरनोबिल परमाणु बिजलीघर में दुर्घटना के कारण उत्पन्न विषाक्त विकिरण ने न केवल वायुमण्डल को बड़े पैमाने पर प्रदूषित किया वरन् आस-पास के क्षेत्रों को भी विषाक्त कर दिया जिसके चलते यूरोप के अनेक देशों स्वीडन, फिनलैण्ड, इंग्लैण्ड जर्मनी आदि में रेडियो धर्मिता के प्रसार के कारण खेत, बाग एवं चारागाह विषैले हो गए। सन् 1990 में कुवैत संकट के दौरान इराक ने कुवैत के 600 से अधिक तेल कुओं को आग लगा दी जो लगभग 1 वर्ष तक जलते रहे। जिसके कारण पर्यावरण जिस प्रकार प्रदूषित हो रहा है उससे मानव जाति को व्यापक एवं स्थायी क्षति होना तय है।

फैलिन तूफान से ओडिशा व आन्ध्र प्रदेश के तटवर्ती क्षेत्रों में तबाही फैली-

भारत के पूर्वी तट पर अक्टूबर, 2013 में चक्रवती तूफान फैलिन ने भारी तबाही मचाई। बंगाल की खाड़ी से उठा यह तूफान 12 अक्टूबर, 2013 की रात्रि में ओडिशा व उत्तरी आन्ध्र प्रदेश के तट पर जा पहुँचा था। ओडिशा के तट पर कलिंगा पट्टनमव पाराद्वीप के बीच इस की गति 200 किमी. प्रति घण्टा तक थी। लगभग 90 लाख लोग इस तूफान से प्रभावित हुए, 2.34 लाख मकान क्षतिग्रस्त हुए धान की फसलें बर्बाद हो गई।

उत्तराखण्ड में पहाड़ों पर प्रलय से तबाही-

जून, 2013 में समय से पूर्व आए मानसून ने उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में तबाही मचाई थी। भारी वर्षा के कारण उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा एवं उत्तरप्रदेश के कुछ क्षेत्रों में बाढ़ की स्थिति बन गई थी। लगातार तीन दिनों तक हुई वर्षा व भूस्खलन ने केदारनाथ, उत्तरकाशी, चमोली, पिथौरागढ़ व रूद्रप्रयाग आदि क्षेत्रों का सम्पर्क शेष देश से काट दिया था इसमें लगभग 70 हजार लोग विभिन्न भागों में फंस गए थे।

18 जून, 2013 को केदारनाथ में बादल फटने से भीषण भूस्खलन में सैकड़ों जिंदा लोग पानी में बह गए थे। भूमण्डलीयकरण बनाम आर्थिक उदारवाद की धारणा ने प्रकृति का व्यावसायिक-दोहन किया है। जिससे इसने इंसान को सहूलियत की जिन्दगी देने से कहीं अधिक, प्राकृतिक आपदाओं को बढ़ावा दिया है। इसके दुष्परिणाम भारत और चीन जैसे देशों में मानसूनी- प्राकृतिक आपदा के रूप में स्पष्ट दिखाई दे रहे है। भारत में जहाँ औसत बारिश से ही नगर शहर बेहाल है वही चीन में पिछले दिनों हुई भीषण बारिश, भूस्खलन, आँधी ने तबाही मचा दी है। चीन के 9 प्रांतों की दशा दुर्दशा में तब्दील हो गई है। 2 करोड़ लोग

विस्थापित हो गए। लाखों एकड़ भूमि की फसल चौपट हो गई। लगभग 3 अरब डॉलर से भी ज्यादा के हुए नुकसान से चीन की अर्थव्यवस्था चरमरा गई।

ये त्रासदियाँ प्रत्यक्ष रूप में प्राकृतिक आपदाएं प्रतीत होती हैं परन्तु वास्तव में ये मानव उत्सर्जित हैं। इनकी संख्या पूरी दुनिया में दूरदृष्टि की कमी की वजह से बढ़ रही है। इसलिए न केवल औद्योगिक तथा प्रौद्योगिक विकास को नियंत्रण के रखने की जरूरत है बल्कि औसत बारिश से ही मानव आपदा में बदल जाने वाले ऐसे निर्माणों को नियंत्रित करने की भी जरूरत है जो आपदाओं को निमन्त्रण दे रहे हैं औद्योगीकरण की वजह से कार्बनडाई ऑक्साइड के उत्सर्जन में लगातार वृद्धि हो रही है। जो तापमान में वृद्धि करके जलवायु परिवर्तन का कारण बन रही है। ऊर्जा-उत्पादन के कारण दुनिया में प्रतिवर्ष कार्बनडाइ ऑक्साइड का उत्सर्जन 11.4 अरब टन के करीब हो रहा है। चीन के वायुमण्डल में कार्बन के इसी अधिकतम उत्सर्जन की प्रक्रिया ने तापमान में बेतहाशा वृद्धि कर दी है। इससे जलवायु में बदलाव एवं वर्षा का चक्र भी गड़बड़ा गया है। यही स्थिति भारत की भी है। यदि हम आस्टेªलिया को देखंे तो एक समय में आस्ट्रेलिया गेहूँ का सबसे बड़ा उत्पादक और निर्यातक देश था परन्तु आज स्थिति यह है कि अपनी आबादी के लायक अनाज पैदा करने की आत्मनिर्भरता भी आस्टेªलिया में नहीं रही है। इस भयावह त्रासदी के पीछे जलवायु परिवर्तन और उपभोक्ता वादी जीवन शैली है। यदि प्रकृति का संतुलन बनाए रखना है तो सबको मिलकर पर्यावरण संरक्षण पर सोचना-विचारना होगा।

2.6.2. राष्ट्रीय पर्यावरण नीतियाँ

भारत की राष्ट्रीय पर्यावरण नीति विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों केन्द्रीय मंत्रालयों, संसद सदस्यों, राज्य सरकारों, औद्योगिक संघों शैक्षणिक एवं अनुसंधान संस्थाओं गैर सरकारी संस्थाओं और जनता के साथ हुए व्यापक विचार-विमर्श एवं परामर्शों का परिणाम है।

पर्यावरण नीति की प्रस्तावना- पर्यावरण प्रबन्धन सम्बन्धी वर्तमान राष्ट्रीय नीतियाँ, राष्ट्रीय वन नीति 1988, राष्ट्रीय संरक्षण कार्य नीति तथा पर्यावरण एवं विकास वक्तव्य 1992 और प्रदूषण उपशमन नीति सम्बन्धी वक्तव्य 1992 में निहित है जिसमें कहा गया है-

”राष्ट्रीय पर्यावरण नीति का उद्देश्य मौजूदा जानकारी और संचित अनुभवों के आधार पर इसके कार्य क्षेत्र में वृद्धि करना तथा वर्तमान में, जो कमियाँ हैं उन्हें दूर करना है।“

वर्तमान समय में तीन मुख्य आकांक्षाओं पर ध्यान दिया जा रहा है-

- सभी मानव उत्तम कोटि का जीवन जीने के लिए योग्य बनें।
- सभी लोग जैवमण्डल की परिमितता का सम्मान करने में सक्षम हो सके।
- देश की आर्थिक सामाजिक एवं पर्यावरणीय आवश्यकताओं के मध्य संतुलन में सामंजस्य हो सके।

राष्ट्रीय पर्यावरण नीति की संविधान के अनुच्छेद 48(क) और 51(ख) में अधिदेशित तथा अनुच्छेद 21 की न्यायिक विवेचना द्वारा पुष्टि की गई है। स्वच्छ पर्यावरण के प्रति हमारी राष्ट्रीय वचनबद्धता सम्बन्धी प्रतिक्रिया है। यह स्वीकार किया गया है कि स्वच्छ पर्यावरण बनाए रखना केवल सरकार का ही दायित्व नहीं बल्कि प्रत्येक नागरिक की जिम्मेदारी है। अतएव देशभर में पर्यावरण के प्रबन्धन क्षेत्र में एक सहभागिता की भावना महसूस की जानी चाहिए।

इसके लिए सरकार तथा प्रत्येक नागरिक को प्राकृतिक तथा संस्थानिक पर्यावरणीय गुणवत्ता को बनाए रखने तथा उनमें बढ़ोत्तरी के लिए अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार करना चाहिए।

राष्ट्रीय पर्यावरण नीति के उद्देश्य

राष्ट्रीय पर्यावरण नीति के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

i. पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण करना- उन सभी महत्त्वपूर्ण पारिस्थितिकीय प्रणालियों, संसाधनों तथा प्राकृतिक एवं मानव निर्मित मूल्यवान धरोहरों की सुरक्षा एवं संरक्षण करना, जो मानव कल्याण के लिए विशेष रूप से आवश्यक है।
ii. समाज के सभी वर्गों के लिए पर्यावरणीय संसाधनों तक पहुँच- वर्तमान पीढ़ी में समता और गरीबी के लिए आजीविका तथा गुणवत्ता की समानता सुनिश्चित करना ताकि निर्धन समुदाय जो आजीविका के लिए सर्वाधिक रूप से पर्यावरणीय संसाधनों पर निर्भर है, उन्हें ये संसाधन अवश्य ही मिल सकें।
iii. वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं तथा अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए- वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं तथा अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए अर्थात् पीढ़ियों में समता के लिए पर्यावरणीय संसाधनों का न्यायोचित प्रयोग होना आवश्यक है।
iv. सामाजिक एवं आर्थिक विकास में पर्यावरण सरोकारों का एकीकरण करना- सामाजिक एवं आर्थिक विकास के उद्देश्य से पर्यावरणीय सरोकारों की योजनाओं, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं के रूप में एकीकरण की आवश्यकता है।
v. पर्यावरणीय संसाधनों के प्रयोग में दक्षता होने के लिए- पर्यावरणीय संसाधन सीमित होने के कारण एवं प्रतिकूल पर्यावरण प्रभावों के न्यूनीकरण के लिए पर्यावरणीय संसाधनों के प्रयोग में लोगों को दक्ष होने की आवश्यकता है।
vi. पर्यावरणीय संचालन के लिए- पर्यावरणीय संसाधनों के प्रयोग के प्रबन्ध तथा विनियमन के सम्बन्धों में बेहतर संचालन जैसे पारदर्शिता, जवाबदेही, न्यायोचितता समय और लागतों की कमी, सहभागिता और नियंत्रण की स्वतंत्रता आदि के सिद्धान्त को लागू करने की आवश्यकता है।
vii. पर्यावरणीय संरक्षण के लिए संसाधनों की बढ़ोत्तरी के लिए- स्थानीय समुदायों, सार्वजनिक संस्थाओं, शैक्षणिक एवं अनुसंधान समुदाय, निदेशकां और बहुपक्षीय तथा द्विपक्षीय विकास

पार्टनरों के मध्य परस्पर लाभकारी, बहुजनहिताय सहभागिताओं के माध्यम से पर्यावरणीय संरक्षण हेतु वित्त, प्रौद्योगिकी, प्रबन्धन, कौशल आदि को शामिल करते हुए अधिक-से-अधिक संसाधन प्राप्ति सुनिश्चित करना।

उपर्युक्त उद्देश्यों को केन्द्रीय, राज्य एवं स्थानीय अधिकरणों के विभिन्न कुशल कार्य नीति हस्तक्षेपों द्वारा प्राप्त किया जाता है तथा यह सुनिश्चित किया जाता है कि लोग उन संसाधनों के अवक्रमण के बजाय उनमें संस्करण द्वारा अपनी बेहतर आजीविका प्राप्त कर सकें।

2.6.3 भारत के कुछ प्रमुख पर्यावरण संस्थान

- वन अनुसंधान संस्थान - देहरादून
- हिमालय वन अनुसंधान - शिमला
- भारतीय वन प्रबन्धन संस्थान -भोपाल
- शुष्क भूमि अनुसंधान संस्थान -जोधपुर
- केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड -नई दिल्ली
- भारतीय वन अनुसंधान एवं शिक्षण परिषद् -देहरादून
- भारतीय वानस्पतिक सर्वेक्षण -कोलकाता
- भारतीय वन सर्वेक्षण - जोरहाट

2.7 शान्ति के लिए सफल संघर्ष और संवाद की चल रही प्रक्रियाएँ

विश्व शान्ति की स्थापना करने, व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा करने और युद्धों को समाप्त करने के लिए 24 अक्टूबर, 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई।

संयुक्त राष्ट्र संघ के जो उद्देश्य निर्धारित किए गए, वे निम्नलिखित हैं-

i. अंतर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को कायम रखना और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन सभी सामूहिक और शक्तिशाली प्रयासों को सम्पादित करना जो इस शान्ति की चुनौतियों को दूर करने के लिए आवश्यक हों तथा शान्तिपूर्ण साधनों द्वारा उन अंतर्राष्ट्रीय विवादों और परिस्थितियों को सुलझाने में सहायक हों, जिनसे शान्ति भंग होने की आशंका हो।

ii. दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य राष्ट्रों के बीच उन मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास करना, जो समानता और आत्मनिर्णय का सम्मान करने वाले सिद्धान्तों पर आधारित हों तथा उन कदमों को उठाना जो विश्व शान्ति को सुदृढ़ बनाने के लिए आवश्यक हां।

संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माण का मूल उद्देश्य ही अंतर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की गारण्टी है। अपनी स्थापना के समय से ही संयुक्त राष्ट्र संघ ने युद्धों को रोकने में, विश्व शान्ति स्थापित करने में, निरस्त्रीकरण की समस्या को हल करने में, मानव अधिकारों के संरक्षण में, आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किए हैं।

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को 10 दिसम्बर, 1948 को अंगीकार किया। वर्ष 1966 में दो अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं को अंगीकार किया गया जिसमें आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा तथा नागरिक व राजनीतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा शामिल है जो वर्ष 1976 से लागू है। बाद में महासभा ने नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों पर पर दो वैकल्पिक प्रोटोकॉल अंगीकार किए। एक को वर्ष 1966 में अंगीकार किया, जो 1976 को लागू हुआ। मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा को दोनों अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं तथा दोनों वैकल्पिक प्रोटोकोल को मिलाकर 'अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार बिल' कहा जाता है।

2.7.1. आर्थिक सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा

आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों की अंतराष्ट्रीय प्रसंविदा को 16 दिसम्बर, 1966 को यूएन महासभा ने अंगीकार किया था। 3 जनवरी, 1976 को यह प्रसंविदा लागू हुई तथा 164 राष्ट्रों ने वर्ष 2015 तक इस प्रसंविदा का अनुसमर्थन किया।

इस प्रसंविदा में कुल 31 अनुच्छेद हैं, जो पाँच भागों में विभाजित हैं। आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों का उल्लेख प्रसंविदा के भाग 3 में (अनुच्छेद 6 से 15 तक) किया गया है-

- कार्य करने का अधिकार (अनुच्छेद 6)
- श्रम संघ निर्मित करने का अधिकार (अनुच्छेद 8)
- सामाजिक सुरक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 9)
- जीवन के लिए पर्याप्त साधनों का अधिकार (अनुच्छेद 11)
- शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 13)
- विज्ञान एवं संस्कृति से सम्बन्धित अधिकार (अनुच्छेद 15)

भारतीय संविधान और आर्थिक, सामजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा

आर्थिक, सामजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों का प्रसंविदा को दिसंबर, 1966 में यूएन महासभा ने अंगीकार किया तथा यह प्रसंविदा जनवरी 1976 में लागू की गई। इस प्रसंविदा का समर्थन भारत ने 1 अप्रैल, 1979 को किया। इस प्रसंविदा में वर्णित बहुत से अधिकारों को भारतीय संविधान के भाग-4 (अनुच्छेद 37 से 51 तक) के नीति निर्देशक तत्त्वों में शामिल किया गया है, जो इस प्रकार हैं-

अधिकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद

- समान कार्य के लिए समान वेतन
- काम का अधिकार
- प्रसूति सहायता
- कर्मकारों हेतु निर्वाह मजदूरी
- बालकों हेतु अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा
- पोषाहार-स्तर एवं जीवन स्तर ऊँचा करना

अनुच्छेद- 39 (घ)

अनुच्छेद-41

अनुच्छेद-42

अनुच्छेद-43

अनुच्छेद-45, अनुच्छेद-21 (क)

अनुच्छेद-41

आर्थिक एवं सामाजिक परिदृश्य बदलने के साथ मानवाधिकारों के संदर्भ में भी अनेक बदलाव आए हैं। जैसे-जैसे विकास की गति-बढ़ती है, मानवाधिकारों की सूची में भी समय-समय पर नए-नए अधिकार जुड़ते रहे हैं। जैसे-

- आर्थिक सुरक्षा का अधिकार
- रोजगार पाने का अधिकार
- गरीबी से मुक्ति का अधिकार
- भोजन का अधिकारी क्षतिपूर्ति का अधिकार
- स्वच्छ पर्यावरण में जीने का अधिकार
- शान्ति का अधिकार
- विकास का अधिकार

यू एन ओ की महासभा ने 28 जुलाई, 2010 में एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें 'स्वच्छ जल' और स्वच्छता/सफाई को दो-नए मानवाधिकारों के रूप में मान्यता प्रदान की गई है।

2.7.2. नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा

नागरिक व राजनीतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा को यूएन महासभा ने 16 दिसम्बर, 1966 को अंगीकार किया। यह प्रसंविदा 23 मार्च, 1976 को लागू हुई। सन् 2015 तक 168 देशों ने इसका अनुसमर्थन किया है। यह प्रसंविदा 6 भागों में विभाजित है जिसमें कुल 53 अनुच्छेद हैं। इस प्रसंविदा के भाग-3 में (अनुच्छेद 6 से 27 तक) निम्नलिखित नागरिक व राजनीतिक अधिकारों का उल्लेख किया गया है-

- जीने का अधिकार (अनुच्छेद 6)
- दासता व बलात् श्रम से स्वतंत्रता (अनुच्छेद 8)
- स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 9)
- निवास के चयन का अधिकार (अनुच्छेद 12)
- समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14)
- विचार व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19)
- शान्तिपूर्वक सम्मेलन का अधिकार (अनुच्छेद 21)
- राजनीतिक मामलों में भाग लेने का अधिकार (अनुच्छेद 25)
- अल्पसंख्यकों के अधिकार (अनुच्छेद 27)

भारतीय संविधान और नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा

नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों की प्रसंविदा को यून महासभा के द्वारा दिसम्बर, 1966 में अंगीकार किया गया। इस प्रसंविदा का भारत ने 1979 में समर्थन किया। भारतीय संविधान के भाग-3 (अनुच्छेद 12 से 35 तक) में नागरिकों को दिए गए बहुत से अधिकार नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों की प्रसंविदा में दिए गए वर्णित अधिकारों के समान हैं, जो इस प्रकार हैं-

अधिकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद

- विधि के समक्ष समानता
- भेदभाव का प्रतिषेध
- लोक सेवा में अवसर की समानता
- भाषण व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

- अपराधों में दोष-सिद्धि दिए जाने से संरक्षण
- प्राण व दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार
- बलात् श्रम का प्रतिषेध
- आस्था एवं धर्म की स्वतंत्रता

अनुच्छेद-14

अनुच्छेद-15

अनुच्छेद-16 (1)

अनुच्छेद-19 (1) क

अनुच्छेद- 20 (2)

अनुच्छेद-21

अनुच्छेद-23

अनुच्छेद-25

2.7.3. मानवाधिकारों से सम्बन्धित अन्य प्रमुख प्रसंविदाएं

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकारों से सम्बन्धित विभिन्न विषयांे पर लगभग-85 प्रसंविदाएं और घोषणाएं की गई हैं। कुछ प्रमुख प्रसंविदाएं निम्नलिखित हैं-

- नरसंहार की रोकथाम और सजा के बारे में प्रसंविदा (1948)-इस प्रसंविदा में नरसंहार को एक ऐसा गम्भीर अपराध बताया गया है कि जिसका इरादा किसी राष्ट्रवादी, जातीय, नस्लवादी या धार्मिक समूह को नष्ट करना और देशों के दोषी व्यक्तियों को कानून के समक्ष लाने के लिए वचनबद्ध करना। इस प्रसंविदा में वर्ष 2015 तक 143 देश सम्मिलित हुए थे।
- शरणार्थियों की प्रस्थिति के बारे में प्रसंविदा (1951)-इसमें शरणार्थियों के अधिकारों को परिभाषित किया गया है। विशेषरूप से उनको ऐसे देशों में न लौटाए जाने का उल्लेख है, जहाँ जोखिम और खतरा होने के कारण वे लौटना नहीं चाहते हैं। इस प्रसंविदा में 145 देश सम्मिलित हुए हैं।

- सभी प्रकार का रंगभेद (नस्लभेद) समाप्त करने के बारे में प्रसंविदा (1965)- सभी प्रकार का रंगभेद (नस्लभेद) समाप्त करने के उद्देश्य से सदस्य देशों से वचन लिया गया है कि वे कानून और व्यवहार दोनों स्तरों पर इसे समाप्त करेंगे। इसके तहत एक निगरानी-व्यवस्था 'रंग-भेद समाप्त करने सम्बन्धी समिति भी गठित की गई, जो सम्मिलित देशों की रिपोर्टों और संधि के उल्लंघन के बारे में व्यक्तिगत शिकायतों पर विचार करती है। इस प्रसंविदा पर वर्तमान में 177 देशों ने हस्ताक्षर किए हैं।
- महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव समाप्त करने सम्बन्धी प्रसंविदा (1979)- इस प्रसंविदा के तहत महिलाओं के प्रति 'भेदभाव समाप्त करने सम्बन्धी समिति' का गठन भी किया गया है, जो यह निगरानी करती है कि सदस्यों देशों में महिलाओं के प्रति कोई भेदभाव तो नहीं हो रहा है और यदि कोई शिकायत मिलती है तो समिति रिपोर्टो पर विचार करती है। इसमें 189 देश सम्मिलित हो चुके हैं।
- उत्पीड़न और अन्य अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार रोकने सम्बन्धी प्रसंविदा (1984)- इसके अतंर्गत 'अत्याचार (उत्पीड़न) निवारण समिति गठित की गई है जो सम्मिलित देशों की रिपोर्टों पर विचार कर उन देशों के विरुद्ध कार्यवाही शुरू करती है। इसमें 160 देश सम्मिलित हो चुके हैं।
- बाल अधिकारों के विषय में प्रसंविदा (1989)-बाल अधिकारों के विषय में प्रसंविदा ने बच्चों को भेदभाव से बचाने की गारण्टी देते हुए स्वीकार किया गया है कि जो भी कार्य किए जाए, उनमें बच्चों के हितों को सुरक्षित रखा जाए। इसमें सबसे ज्यादा 196 देश सम्मिलित है।
- विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर प्रसंविदा (2006) विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर प्रसंविदा यूएन महासभा द्वारा 13 दिसम्बर, 2006 को पारित की गई। इसमें 172 देश सम्मिलित हो चुके है।

2.7.4 शान्ति के लिए सफल संघर्ष और संवाद की चल रही प्रक्रियाओं के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयास

हार्ट ऑफ एशिया सम्मेलन और भारत-

हार्ट ऑफ एशिया सम्मेलन आतंकवाद, जातीय हिंसा, युद्ध तथा राजनीतिक अस्थिरता से प्रभावित अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण का एक क्षेत्रीय प्रयास है। इस सम्मेलन की शुरूआत 2011 में तुर्की के शहर इस्तांबुल में हुई थी। यह सम्मेलन प्रतिवर्ष आयोजित किया जाता है। इसमें अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण के विषय में सहयोग कार्यक्रमों पर विचार किया जाता है। अफगानिस्तान के विकास तथा पुनः निर्माण से सम्बन्धित छठा हार्ट ऑफ एशिया सम्मेलन 3-4 दिसम्बर, 2016 को भारत के शहर अमृतसर में आयोजित किया गया था।

द्विपक्षीय सम्बन्धों के विस्तार एवं पंचशील संधि की 60वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में भारत के उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी का चीन दौरा-

5 दिन की उनकी इस मात्रा का मुख्य उद्देश्य द्विपक्षीय सम्बन्धों का विस्तार एवं 1954 में सम्पन्न पंचशील संधि की 60वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में 28-29 जून, 2014 बीजिंग में आयोजित समारोह में भागीदार होना था। 28 जून, 2014 के समारोह में, वर्तमान गुटनिरपेक्ष माहौल में शान्तिपूर्ण आपसी अस्तित्त्व के विचार को नए रूप में अपनाने तथा सम्पूर्ण विश्व को इसके अनुरूप ढालने का संकल्प भारत, चीन व म्यामार ने लिया। पंचशील के महत्त्व पर जोर देते हुए उपराष्ट्रपति ने कहा कि यह सभी देशों के अधिकारों की सुरक्षा करने के साथ-साथ परस्पर सम्मान व समानता को बढ़ावा देता है। इसी दौरे के दौरान भारतीय उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी के समकक्ष चीनी राष्ट्रपति ली पुआन चाओ के साथ द्विपक्षीय सम्बन्धों पर वार्ता, 29 जून, 2014 को हुई। वार्ताओं से निकले निष्कर्ष में, द्विपक्षीय सहयोग के तीन समझौता ज्ञापनों पर दोनों राष्ट्रपतियों की उपस्थिति मेंहस्ताक्षर हुए।

ये समझौता भारत में औद्योगिक पार्कों में चीनी निवेश, ब्रह्मपुत्र में पानी के बहाव के सम्बन्ध में भारतीय विशेषज्ञों द्वारा आंकड़ों को एकत्रित कर अपना-अपना अनुभव साझा करने के सम्बन्ध में है। अंत में आखिरी दिन 30 जून, 2014 को भारतीय उपराष्ट्रपति ने एकेडमी ऑफ सोशल साइंसिज में ''कैलिबेरेटेड फ्यूरोलॉजीः इण्डिया'', चाइना एण्ड द वर्ल्ड विषय पर व्याख्यान दिया।

इजराइली सैन्य बल के द्वारा फिलिस्तीन के कब्जे वाले क्षेत्र में हमास पर जुलाई, 2014 में की गई सैन्य कार्यवाही के विरुद्ध भारत सहित अधिकांश देश एकजुट-

इस सम्बन्ध में संयुक्त, राष्ट्र मानवाधिकार परिषद् ;न्दपजमक छंजपवदे भ्नउंद त्पहीजे ब्वनदबपस.न्छभ्त्ब्द्ध में भारत सहित अधिकांश देशों ने इजराइल के विरुद्ध प्रस्ताव का समर्थन किया। 23 जुलाई, 2014 को 46 सदस्यीय परिषद् में 29 सदस्यों ने प्रस्ताव के पक्ष में, जबकि 17 देशों मुख्यतः यूरोपीय देशों ने अपनी अनुपस्थिति दर्ज की एवं प्रस्ताव के विरोध में मत देने वाला ''अमेरिका'' एकमात्र देश था। स्थायी प्रतिनिधि अशोक मुखर्जी ने अपने दृष्टिकोण से स्पष्ट कर दिया कि भारत संयुक्त राष्ट्र प्रस्ताव व अरब शान्ति योजना के आधार पर स्वतंत्र और सम्प्रभता सम्पन्न फिलिस्तीन के विचार का समर्थन करेगा। इसकी सीमा तय की जाए, इजरायल के साथ शान्ति से रहे तथा राजधानी पूर्वी येरुशलम हो।

स्वच्छता एवं साफ-सफाई के प्रति जागरूकता- भारत को साफ सुथरा एवं गंदगी व रोगमुक्त बनाने के लिए राष्ट्रहित में 'स्वच्छ भारत अभियान' का शुभारम्भ हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने गांधी जयंती के अवसर पर 2 अक्टूबर सन्, 2014 को नरेन्द्र मोदी जी (प्रधानमंत्री) ने अपने शुभ हाथों से किया। इसकी कार्यक्रम की घोषणा नरेन्द्र मोदी जी ने 15 अगस्त सन् 2014 को ही लाल किले पर अपने ही

सम्बोधन में कर दी थी। उन्होंने कहा कि 2019 में महात्मा गांधी की 150वीं जयंती तक देश को स्वच्छ भारत के रूप में प्रस्तुत करना है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने इसे आर्थिक स्थिति से जोड़ते हुए कहा कि भारत में, विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार प्रत्येक भारतीय को गंदगी के कारण हर साल 6500 रुपए का नुकसान होता है। जिनका सीधा कारण बीमारियाँ हैं। यदि आर्थिक स्थिति से सम्पन्न लोगों को छोड़ दं तो गरीबों पर हर साल 12-13 हजार का बोझ केवल प्रदूषण में अधिकता से ही होता है।

गाँवों के समुचित विकास हेतु एक नई योजना "सांसद आदर्श गाँव योजना"का गठनः

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने 15 अगस्त, 2014 को लालकिले की प्राचीर से देश को सम्बोधित करते हुए गाँवों के समुचित विकास के लिए एक नई सांसद आदर्श गाँव योजना का उल्लेख किया।

प्रधानमंत्री जी के अनुसार इस योजना का उद्देश्य गाँव में रहने वाले लोगों को अच्छी बुनियादी सेवाएं और अधिक-से-अधिक अवसर प्रदान कराना है।

केन्द्र सरकार द्वारा मानव संसाधन विकास मंत्रालय के तत्त्वाधान में गाँवों का अधिकाधिक विकास करने हेतु एवं गाँवों के प्रौद्योगिकियों के विकास के लिए एक नई योजना शुरू की गयी जिसे 'उन्नत भारत अभियान' नाम दिया गया। राष्ट्रीय शिक्षा दिवस 11 नवम्बर, 2014, पर इसकी बेवसाइट राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी ने जारी की। यह अभियान आईआईटी, दिल्ली की निगरानी में चलेगा।

भारत में खाद्य सुरक्षा की ओर उठाए गए कदमों का सकारात्मक परिणाम

जर्मनी के इंटरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट ;प्थ्च्त्प्द्ध व आयरलैण्ड के कन्सर्न वर्ल्डवाइड की इस संयुक्त वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देशों में भूख की 0-100 स्केल वाले इस इण्डेक्स का मान जितना अधिक होता है सम्बन्धित देश में भूख की स्थिति उतनी ही अधिक विकराल होती है। इस प्रकार (0) भूखरहित एवं 100 भूख की अधिकता को दर्शाता है। वर्ष 2012 की ग्लोबल हंगर रिपोर्ट में भारत के लिए सूचकांक 22.9 था। जो 2013 में 21.3 एवं यही 2014 में घटकर 17.8 आंकलित किया गया है।

☐ आतंकी गतिविधियों व मानव तस्करी पर रोक लगाने हेतु भारत व म्यामार द्वारा एक द्विपक्षीय सीमा सहयोग समझौते पर मई, 2014 में हस्ताक्षर किए गए।

इस समझौते का उद्देश्य सीमावर्ती क्षेत्रों में, सुरक्षा, सूचनाओं के आदान-प्रदान को बढ़ावा देना है। इस समझौते में सेनाओं की गश्तों के समन्वय के लिए भी सहमति की बात है जिससे सीमापार की अवैध आवाजाही पर रोक लगायी जाएगी। और सीमावर्ती क्षेत्रों में शान्ति एवं स्थिरता को बढ़ावा मिलेगा।

19 नवम्बर, 2014 को शान्ति, निःशस्त्रीकरण एवं विकास के लिए 2014 का इंदिरा गांधी पुरस्कार इसरों को प्रदान करने की घोषणा की गयी।

12 दिसम्बर, 2014 से सामाजिक न्यायपीठ द्वारा कार्य शुरू हुआ जोकि सामाजिक मुद्दों से सम्बन्धित मामलों की सुनवाई के लिए सर्वोच्च न्यायालय में नवगठित किया गया था।

☐ भारत में भ्रष्टाचार को रोकने के लिए उठाया गया एक महत्त्वपूर्ण कदम

भ्रष्टाचार को रोकने के लिए भारतीय राष्ट्रपति द्वारा पारित बिलः

भारतीय राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी द्वारा भ्रष्टाचार को रोकने के लिए उस बिल को मंजूरी दे दी जिसे व्हिसिल ब्लोअर प्रोटेक्शन बिल कहते हैं।

भ्रष्ट अधिकारियों के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लिया गया महत्त्वपूर्ण फैसला-

सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति आर.एस. लोढ़ा की अध्यक्षता वाली पांच सदस्यीय संवैधानिक पीठ ने 6 मई, 2014 को एक अहम फैसला लेते हुए (सी.बी.आई. ब्ण्ठण्ण्) केन्द्रीय जाँच ब्यूरो की शक्तियों में वृद्धि कर दी जिसमें कानूनी धारा 6। को गैर संवैधानिक करार दिया गया। धारा 6। के तहत किसी भी वरिष्ठ अधिकारी के विरुद्ध केन्द्रीय जाँच ब्यूरो द्वारा जांच नहीं की जा सकती थी।

☐ किन्नरों के लिए आरक्षण

सर्वोच्य न्यायालय के न्यायमूर्ति के.एस. राधाकृष्णन एवं न्यायमूर्ति ए.के. सीकरी द्वारा महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया गया जिसके तहत किन्नर समाज को तीसरे लिंग के रूप में 15 अप्रैल सन्, 2014 को कानूनी मान्यता प्रदान कर दी गयी।

इस कानून के तहत इस वर्ग को शिक्षण संस्थानों और सरकारी नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान है।

☐ वर्ष 2003 की राष्ट्रीय युवा नीति का स्थान नई राष्ट्रीय युवा नीति "राष्ट्रीय युवा नीति 2014" ने लिया

तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह जी की अध्यक्षता में 9 जनवरी, सन् 2014 को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की बैठक में राष्ट्रीय युवा नीति-2014 को मंजूरी दी गयी जिसका उद्देश्य देश निर्माण में युवाओं को आगे लाने, एवं उन्हें अवसर प्रदान करना है जिसके अन्तर्गत 15 से 29 साल उम्र के सभी नागरिक आएगें। इसके अन्तर्गत शिक्षा ;म्कनबंजपवदद्ध दक्षता एवं रोजगार ;ैापसस क्मअमसवचउमदज ंदक मउचसवलउमदजद्ध उद्यमशीलता ;म्दजतमचतमदमनतेीपचद्ध सामाजिक मूल्यों को बढ़ावा देना, सामुदायिक भागीदारी, राजनीति व शासन में भागीदारी तथा सामाजिक न्याय आदि शामिल हैं।

☐ महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम देश में प्रथम महिला बैंक की स्थापना

इसकी स्थापना नवम्बर, 2013 में की गयी। "महिला सशक्तिकरण-भारत का सशक्तिकरण" ही इस बैंक की पंचलाइन है। भारतीय महिला बैंक ;ठडठद्ध का उद्घाटन 19 नवम्बर, 2013 को स्व. श्रीमती इंदिरा गांधी के 96वें जन्मदिवस के अवसर पर मुम्बई में तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ॰ मनमोहन सिंह द्वारा किया गया। कोलकाता, गुवाहाटी, लखनऊ, चेन्नई, अहमदाबाद तथा बैंगलूरू में इसके उद्घाटन के साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र में कामकाज शुरू कर दिया गया था। इस बैंक का मुख्यालय नई दिल्ली में स्थापित किया गया तथा वरिष्ठ बैंकर उषा अनंत सुब्रमण्यम को इस बैंक का अध्यक्ष बनाया गया है।

इस बैंक को 1000 करोड़ की पूँजी से शुरु किया गया। सरकार का इरादा था कि मार्च, 2014 के अन्त तक इसकी कुल 25 शाखाएं हो जाएं। इस बैंक के कर्मचारियों में भी 70ः महिलाएं हो रखी जाएंगी, यह बात तत्कालीन वित्त मंत्री पी. चिदम्बरम् ने कही थी। इस बैंक की 55-60 शाखाएं देश के विभिन्न भागों में 2014-15 में स्थापित की जाएंगी, ऐसा चैयरपर्सन सह प्रबन्ध निदेशक उषा अनंत सुब्रमण्यम ने कहा।

□शास्त्री भवन (नई दिल्ली) में मार्च, 2013 में देश में पहला महिला डाकघर स्थापित किया गया

5 मार्च, 2013 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर, संचार व सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री कपिल सिब्बल ने इसका उद्घाटन किया। आने वाले दिनों में ऐसे और भी महिला डाकघरों की स्थापना की जाएगी ऐसी घोषणा भी की गयी। इसका संचालन पूरी तरह से महिलाएं करेंगी एवं इस प्रकार का यह देश का पहला ऐसा डाकघर होगा।

□ नई दिल्ली में विज्ञान भवन में औद्योगिक विकास तेज करने तथा देश को "मैन्यूफैक्चरिंग हब" बनाने के लिए 'मेक इन इण्डिया' अभियान को लांच किया

भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने 25 सितम्बर, 2014 को इसक अभियान का शुभारंभ किया। इस अवसर पर प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने मिशन का प्रतीक चिन्ह ;स्वहवद्ध जारी किया। इसमें एक सिंह की दर्शाया गया है जो कि साहस, बुद्धिमत्ता व शक्ति को प्रदर्शित करता है और देश के राष्ट्रीय प्रतीक चिन्ह अशोक चक्र का हिस्सा भी है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने विशाल सभा को सम्बोधित करते हुए 'एफ डी आई' के लिए नया नजरिया 'फर्स्ट डेवलप इंडिया' के रूप में भारतीय नागरिकों के सम्मुख परिभाषित किया। इस दौरान देश के अग्रणी उद्यमियों से यह हॉल पूरी तरह से भरा हुआ था। मुख्य कार्यक्रम के अलावा अन्य राज्यों में भी इसके लिए कार्यक्रम आयोजित किए गए, विदेश में भारतीय दूतावासों में इसका सीधा प्रसारण भी किया गया।

विमुद्रीकरण ;क्मउवदमजपेंजपवदद्ध से 2016-17 में ग्रोथ रेट पर 0ण्25 . 0ण्50ः का प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ऐसा अनुमान आर्थिक समीक्षा में लगाया गया था लेकिन दीर्घकाल में इससे लाभ होंगे।

ऐसे नोट जो चाल-चलन में नहीं थे (संचित मुद्रा) के परिमाण के आंकलन के लिए 'सॉइल रेट ;ैवपस त्ंजमद्ध' का आर्थिक समीक्षा में उल्लेख है। सॉइल रेट □ वो दर है जिस पर नोट इतने खराब हो जाते हैं

कि रिजर्व बैंक के पास उन्हें वापस भेजा जाता है। विमुद्रीकरण का उद्देश्य- ;पद्ध भ्रष्टाचार पर अंकुश, ;पपद्ध जाली नोटों पर अंकुश, ;पपपद्ध आतंकवादी गतिविधियों के लिए उच्च मूल्य वर्ग के नोटों के प्रयोग पर अंकुश लगाना तथा ;पअद्ध काले धन पर अंकुश लगाना है।

यह विमुद्रीकरण अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक इतिहास में इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण घटना थी कि यह सामान्य आर्थिक व राजनीतिक परिस्थितियों में गोपनीयता एवं शीघ्रता से उठाया गया कदम था।

- साफ-सफाई न होने के कारण अर्थिक स्थिति और भी कमजोर होती है। विशेष रूप से गरीबों की स्वास्थ्य और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए 'स्वच्छ भारत अभियान' चलाया गया है। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना के तहत स्वच्छ ऊर्जा प्रदान की जाएगी जिससे महिलाओं को धंुआभरी रसोई से होने वाले दुष्परिणामों से बचाया जा सकेगा।
- प्रधानमंत्री युवा योजना शिक्षण और प्रशिक्षण को बढ़ावा देने के लिए सात लाख विद्यार्थियों के लिए आरम्भ की गई है। आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के विद्यार्थियों के लिए नए रास्ते खोलकर शिक्षा को अधिक सुगम बनाया है।
- अक्टूबर, 2016 को भारत ने पैरिस समझौते का अनुसमर्थन किया और जलवायु न्याय तथा बहुत पहले से चली आ रही जीवन शैली पर ध्यान देते हुए जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को रोकने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता का संकेत भी दिया।
- एक नई ट्रिनिटी ''जनधन-आधार-मोबाईल' के माध्यम से सब्सिडी के प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण से भ्रष्टाचार पर अंकुश लगा है। 36000 करोड़ रुपए की बचत हुई है। विश्व की सबसे बड़ी स्कीम पहल है जिससे दो वर्षों में 21000 करोड़ रुपए की बचत हुई है। 5 लाख से अधिक लोगों को रोजगार मिला है और डिजिटल साक्षरता बढ़ी है।
- Give it up अभियान के अन्तर्गत लगभग 1.2 करोड़ से अधिक भारतीयों ने रसोई गैस सब्सिडी छोड़ी है, जिससे वंचित लोगों को रसोई गैस कनैक्शन दिया जा सके। इसी प्रकार स्वच्छ भारत अभियान के अन्तर्गत 1.4 लाख गाँवों, 450 से ज्यादा शहरों, 77 जिलों तथा 3 राज्यों ने अपने क्षेत्र को खुले में शौच से मुक्त घोषित कर दिया है।
- 26 करोड़ से अधिक जन-धन खाते खोलकर लोगों को बैंकिंग व्यवस्था से पहली बार जोड़ा गया है। 'जनधन' से जनसुरक्षा की दिशा में तेजी से आगे बढ़ते हुए लगभग 13 करोड़ गरीबों की विभिन्न सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में शामिल किया गया है।
- लोगों तक बैंकिंग सुविधाएं पहुँचाने के लिए 'भारतीय डाक भुगतान बैंक' प्रारम्भ किए गए है।
- प्रधानमंत्री मुद्रा योजना के अन्तर्गत रुपये दो लाख करोड़ के 5.6 करोड़ ऋण उपलब्ध कराए गए है जिससे छोटे व्यवसायों को प्रोत्साहन मिलेगा इस योजना के अन्तर्गत 70 ऋण का लाभ महिला उद्यमियों को मिलेगा।

- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना में जोखिम कवरेज को विस्तृत किया गया है, बीमा राशि दोगुनी की गई है।
- वन अधिकार अधिनियम के तहत् 55.4 लाख एकड़ वन भूमि के क्षेत्रफल में 16.5 लाख व्यक्तिगत वन अधिकार स्वामित्व प्रदान किए गए है।

कैलाश सत्यार्थी (भारत) व मलाला यूसुफजई (पाकिस्तान) को 2014 में नोबेल शान्ति पुरस्कार संयुक्त रूप से मिला है। भारत में बाल-अधिकारों के लिए संघर्षरत रहे कैलाश सत्यार्थी मूलतः मध्य प्रदेश के विदिशा जिले के रहने वाले हैं। 'बचपन बचाओ आन्दोलन' नाम का एक गैर-सरकारी संगठन चलाते हैं जो बालश्रम व बाल तस्करी में फंसे बच्चों को मुक्त कराने की दिशा में कार्य करता है। सत्यार्थी जी ने गांधी जी की परम्परा को कायम रखा है तथा आर्थिक लाभ के लिए बच्चों के शोषण के विरुद्ध कई शान्तिपूर्ण विरोध प्रदर्शनों की अगुवाई की है।

पाकिस्तान में लड़कियों की शिक्षा के लिए संघर्ष करने वाली मलाला यूसुफजई ने तालिबान के हमले में जीवन को दाँव पर लगाने के बाद भी पाकिस्तान में बाल अधिकारों और बालिकाओं की शिक्षा के लिए अपना संघर्ष जारी रखा है। 17 वर्षीय मलाला को 2012 में पाकिस्तान में महिलाओं के लिए शिक्षा अनिवार्य करने की मांग के बाद तालिबान की गोली का शिकार होना पड़ा था। नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाली वह सबसे कम उम्र की विजेता हैं।

बाल श्रम के नियम में संशोधन

26 जुलाई, 2016 को बाल श्रम संशोधन विधेयक, 2016 लाया गया। राज्यसभा में यह विधेयक पहले ही 19 जुलाई, 2016 को पारित किया जा चुका था किन्तु राष्ट्रपति की अनुमति के बाद यह अधिनियम बन गया। जिसमें 14 वर्ष तक के बालक को रोजगार तो दिया जा सकता है, परन्तु वह अपने परिवार की सहायता कर रहा है। इसी शर्त पर ऐसा किया जाएगा।

यदि ऐसा नहीं होता है तो 14 वर्ष की आयु के बालक से काम कराने पर दो वर्ष की सजा का प्रावधान है।

2.7.5. शान्ति के लिए प्रयास हेतु कुछ महत्त्वपूर्ण तिथियाँ

24 जनवरी - राष्ट्रीय बालिका दिवस

(कन्या भ्रूण हत्या जैसी सामाजिक कुरीतियों के बारे में लोगों को जागरूक करने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार ने 24 जनवरी, को राष्ट्रीय बालिका दिवस के रूप में मनाने का फैसला वर्ष 2009 में किया था।)

25 जनवरी - राष्ट्रीय मतदाता दिवस-

चुनाव आयोग ने 25 जनवरी को राष्ट्रीय मतदाता दिवस 2011 में घोषित किया था। यह मतदाताओं में जागरूकता लाने का प्रयास था।

26 जनवरी - भारत का गणतंत्र दिवस।

27 जनवरी - विध्वंस के शिकार लोगों की स्मृति में संयुक्त राष्ट्र दिवस।

20 फरवरी - संयुक्त राष्ट्र सामाजिक न्याय दिवस।

21 फरवरी - अन्तर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस।

28 फरवरी - राष्ट्रीय विज्ञान दिवस।

3 मार्च - विश्व वन्य जीव दिवस।

4 मार्च - राष्ट्रीय सुरक्षा दिवस।

8 मार्च - अन्तर्राष्ट्रीय दिवस।

21 मार्च - सामाजिक अधिकारिता स्मृति दिवस।

21 मार्च - विश्व बालिका दिवस।

22 मार्च - विश्व जल दिवस।

23 मार्च - विश्व मौसम दिवस।

27 मार्च - विश्व रंगमंच दिवस।

5 अप्रैल - समता दिवस।

7 अप्रैल - विश्व स्वास्थ्य दिवस।

18 अप्रैल -विश्व विरासत दिवस।

22 अप्रैल -पृथ्वी दिवस।

1 मई - अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दिवस।

21 मई - संवाद एवं विकास हेतु सांस्कृतिक विविधता दिवस।

22 मई - अन्तर्राष्ट्रीय जैव विविधता दिवस।

29 मई - संयुक्त राष्ट्र शान्ति सैनिकों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय दिवस।

5 जून - विश्व पर्यावरण दिवस।

10 जून - विश्व भूगर्भ जल दिवस।

12 जून - बालश्रम निषेध दिवस।

20 जून - विश्व शरणार्थी दिवस।

11 जुला- विश्व जनसंख्या दिवस।

6 अगस्त - हिरोशिमा दिवस।

9 अगस्त - नागासाकी दिवस।

15 अगस्त - भारत का स्वतन्त्रता दिवस।

5 सितम्बर - शिक्षक दिवस।

8 सितम्बर - अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस।

16 सितम्बर - ओजोन परत संरक्षण दिवस।

21 सितम्बर - अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति दिवस।

2-8 अक्टूबर - वन्य प्राणी सप्ताह।

2 अक्टूबर - गाँधी जयन्ती (अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस)

8 अक्टूबर - अन्तर्राष्ट्रीय प्राकृतिक आपदा निवारण दिवस।

11 अक्टूबर - अन्तर्राष्ट्रीय बालिका-दिवस।

24 अक्टूबर - संयुक्त राष्ट्र संघ स्थापना दिवस।

31 अक्टूबर - राष्ट्रीय एकता दिवस।

11 नवम्बर - राष्ट्रीय शिक्षा दिवस एवं प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति का स्मरण दिवस।

14 नवम्बर - बाल दिवस।

19 नवम्बर	-	विश्व शौचालय दिवस।
19-15 नवम्बर	-	राष्ट्रीय एकता दिवस।
25 नवम्बर	-	महिलाओं के विरूद्ध हिंसा उन्मूलन हेतु अन्तर्राष्ट्रीय दिवस।
3 दिसम्बर	-	विश्व विकलांग दिवस।
6 दिसम्बर	-	नागरिक सुरक्षा दिवस।
10 दिसम्बर	-	अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस।

इस प्रकार इन राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की तिथियों एवं सप्ताहों में विशेष आयोजनों को किया जाता है ताकि उस क्षेत्र में हो रही प्रगति एवं अवनति का आंकलन किया जा सके, एवं सुधार हेतु सदैव प्रयासरत रहा जा सके।

2.7.6. राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शान्ति स्थापित करने हेतु विद्यालयों की भूमिका-

आज के परिप्रेक्ष्य में विद्यालयों से निम्नलिखित कार्यों को करने की अपेक्षा की जाती है-

i. अपने समाज की संस्कृति का हस्तान्तरण करना और उसका संरक्षण करना।
ii. छात्रों को दिन-प्रतिदिन के नवीन ज्ञान को प्रदान करना।
iii. नवीन ज्ञान के माध्यम से छात्रों में सृजनात्मक शक्ति का विकास करना।
iv. बच्चों में सामाजिक आदतों का निर्माण करना।
v. समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा वैज्ञानिक एवं प्रोद्योगिक वातावरण में प्रति छात्रों को सजग एवं सचेत बनाना।
vi. सामाजिक समस्याओं की समझ उत्पन्न कराकर उन्हें संवेदनशील बनाना।
vii. सामाजिक कार्यों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना।
viii. लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुसार एक उत्तरदायी नागरिक के रूप में निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना।
ix. सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों के प्रति निष्ठावान् तथा उसमें संवाहक के रूप में छात्रों का तैयार करना।
x. संस्कृति का नवीनीकरण करना एवं समाज में फैली-कुरीतियों का विरोध करने की क्षमता उत्पन्न करना।
xi. समाज में आने वाले परिवर्तनों के लिए छात्रों को तैयार करना।
xii. सामाजिक विघटन की प्रक्रिया एवं उसके रूप को समझने के योग्य बनाना।
xiii. अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक बनाना।

xiv. कल्पनाशक्ति, सौन्दर्यानुभूति तथा सामूहिक भावना का विकास करने के लिए पाठ्यसह सङ्गामी क्रियाओं का आयोजन करना चाहिए।

xv. वैज्ञानिक एवं लोकतांत्रिक-मनोवृत्ति का विकास करना चाहिए।

xvi. शारीरिक श्रम के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित करना।

xvii. धर्म निरपेक्षता तथा सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों को बतलाना।

xviii. देश की एकता व अखण्ड़ता के लिए प्रेरित करना

xix. अन्तर्राष्ट्रीय समझ को बढ़ावा देना।

xx. विश्व शान्ति की ओर अग्रसर करना।

2.8 सारांश

इस इकाई में आपने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक एवं पारिस्थितिक क्षेत्रों में चल रहे संघर्षों के विषय में एवं साथ-ही-साथ शान्ति के लिए सफल संघर्षों एवं शान्ति के लिए चल रही संवाद प्रक्रियाओं के विषय में अध्ययन किया। इकाई के आरम्भ में आपने शान्ति की स्थापना के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना एवं कार्य के विषय में पढ़ा राजनीतिक क्षेत्र में चल रहे संघर्षों के अन्तर्गत क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रीय असन्तुलन निरक्षरता, हिंसा, जातिवाद एवं इनके दुष्परिणामों की चर्चा के साथ ही आपने शोषण और पक्षपात, असन्तुलित आर्थिक विकास, प्रतिस्पर्धा का बाजार, एवं उदारवादी अर्थव्यवस्था तथा उसके दुष्प्रभाव का अध्ययन किया सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में चल रहे संघर्षों में बालक के व्यक्तित्त्व के विकास एवं उसके समाजीकरण में सहयोग देने वाली संस्थाओं के विषय में चर्चा की गई, साथ-ही-साथ कुछ असामाजिक तथ्यों के विषय में जैसे आक्रामकता, साम्प्रदायिकता एवं हिंसा, लैंगिक असमानता एवं सामाजिक उत्पीड़न, भ्रष्टाचार निर्धनता, अशिक्षा, बालश्रम आदि मुद्दों पर भी चर्चा की गई है। पारिस्थितिक क्षेत्रों में चल रहे संघर्षों के अन्तर्गत पर्यावरण संरक्षण का महत्त्व, एवं राष्ट्रीय पर्यावरण की नीतियां तथा भारत के कुछ प्रमुख पर्यावरण संस्थानां को भी बताया गया है। शान्ति के लिए सफल संघर्ष और संवाद की चल रही प्रक्रियाओं के अध्ययन के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र संघ एवं मानवाधिकार से सम्बन्धित प्रमुख (अन्तर्राष्ट्रीय) प्रसंविदाएं बतलाई गई हैं। साथ-ही-साथ भारतीय संविधान में उल्लेखित मानवाधिकारों की भी चर्चा की गई है। शान्ति के लिए जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से कुछ महत्त्वपूर्ण तिथियाँ एवं सप्ताह दिए गए हैं। साथ ही आपने विद्यालयों की भूमिका के विषय में भी अध्ययन किया।

2.9 शब्दावली

1. पारिस्थितिकी- जीव विज्ञान की वह शाखा है जिसमें जीव समुदायों के पारस्परिक सम्बन्धों का उसके वातावरण के साथ अध्ययन करते हैं। पारिस्थितिज्ञ इस बात का पता लगाते हैं कि जीव

आपस में और पर्यावरण के साथ किस तरह क्रिया करते हैं और वे पृथ्वी पर जीवन की जटिल संरचना का भी पता लगाते हैं।

2. मानवाधिकार- मानवाधिकार से अभिप्राय मौलिक अधिकारों एवं स्वतंत्रता से है जिसके सभी मानव प्राणी हकदार है। उनमें नागरिक और राजनीतिक अधिकार सम्मिलित हैं जैसे कि जीवन और आजाद रहने का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और कानून के सामने समानता एवं आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के साथ सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार, भोजन का अधिकार, काम करने का अधिकार एवं शिक्षा लेने का अधिकार।
3. संयुक्त राष्ट्र- संयुक्त राष्ट्र एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है, जिसका उद्देश्य, अन्तर्राष्ट्रीय कानून को सुविधाजनक बनाने में सहयोग, अन्तराष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति, मानवाधिकार और विश्वशान्ति के लिए कार्य करना है। इसकी स्थापना 24 अक्टूबर, 1945 को संयुक्त राष्ट्र अधिकार पत्र पर 50 देशों के हस्ताक्षर होने के साथ हुई।
4. व्यक्तित्त्व- व्यक्तित्त्व-व्यक्ति की उन मनोशारीरिक पद्धतियों का वह आन्तरिक गत्यात्मक संगठन है जोकि पर्यावरण में उसके अनन्य समायोजनों को निर्धारित करता है।
5. बालश्रम- बालश्रम से तात्पर्य ऐसे कार्य से है जिसमें कि कार्य करने वाला व्यक्ति कानून द्वारा निर्धारित आयु सीमा से छोटा होता है।
6. समाजीकरण- समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से बालक समाज के विभिन्न व्यवहार, रीति-रिवाज, गतिविधियाँ इत्यादि सीखता है। इसी के माध्यम से संस्कृति के अनुरूप आचरण करने का विवेक विकसित होता है। इसके लिए व्यक्ति द्वारा सांस्कृतिक मूल्यों का जो अभ्यंतरीकरण किया जाता है वह समाजीकरण का ही रूप है।
7. साम्प्रदायिकता- साम्प्रदायिकता एक अंतः धार्मिक द्वन्द्वात्मक स्थिति है जिसके अन्तर्गत घृणा, पूर्वाग्रह एवं संदेह का बाहुल्य होता है जो हिंसा की ओर अग्रसर होता है।

2.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रो॰ पचौरी, (2016), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय परिदृश्य, आर॰ लाल बुक डिपो, मेरठ
2. शर्मा, गिरधारी लाल, (2015), शान्ति शिक्षा एवं सतत विकास, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. प्रतियोगिता दर्पण, मासिक पत्रिका (2017), केन्द्रीय बजट 2017-18 एवं आर्थिक समीक्षा 2016-17, प्रतियोगिता दर्पण, आगरा
4. प्रतियोगिता दर्पण, मासिक पत्रिका (2017), केन्द्रीय बजट 2017-18 एवं आर्थिक समीक्षा 2016-17, प्रतियोगिता दर्पण, आगरा

5. माइकल, मोसे, (2009), "द सोशल मार्केट्स ऑफ डेमोक्रेटिक पीस" इंटरनेशनल सिक्योरिटी, खण्ड 33, संख्या 4, 52-86
6. विश्व शान्ति-विकिपीडिया
7. पर्यावरण संरक्षण-विकिपीडिया
8. शान्ति शिक्षा-एन.सी.ई.आर.टी. दिल्ली।

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में शान्ति के लिए राजनीतिक क्षेत्र की भूमिका का वर्णन कीजिए।
2. शान्ति को बनाए रखने में सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों की क्या भूमिका होनी चाहिए, विवेचना कीजिए।
3. विश्व शान्ति एवं पारिस्थितिकी में क्या सम्बन्ध है? सविस्तार बताइए।
4. शान्ति स्थापित करने के लिए किए गए कुछ सफल प्रयासों की चर्चा कीजिए।
5. वर्तमान में शान्ति मूल्यों को स्थापित करने के लिए विद्यालयों की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

इकाई 3 - राष्ट्रवाद और इसकी आलोचना; युद्ध और बाज़ार; वैश्वीकरण का अर्थ और इसका अर्थव्यवस्था, राजनीतिक, तकनीकी निहितार्थ

Nationalism and its Critics; War and Markets; Globalization: Economy, Politics, Technology; Meaning and Implications

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 राष्ट्रवाद और इसकी आलोचना
3.3.1 राष्ट्रवाद
3.3.2 राष्ट्रवाद और इसकी आलोचना
3.4 युद्ध और बाज़ार
3.5 वैश्वीकरण
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

राष्ट्रवाद की संकल्पना काफी प्राचीन है। भारत में यदि राष्ट्रवाद का प्रारंभ माना जाए तो यह 3857 में हुई थी। किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए वहां के नागरिकों में राष्ट्रवाद की भावना होनी चाहिए। पर उसी समय राष्ट्रवाद का अतिरेक देश में गृहयुद्ध और विनाश को ला सकता है। आज जब उदारीकरण के फलस्वरूप पूरे विश्व को एक गाँव में बदल दिया है जब स्थानीय सार्वभौमिक है और सार्वभौमिक स्थानीय है ऐसे में संकीर्ण राष्ट्रवाद की भावना सम्पूर्ण विश्व के लिए नुकसानदायक है। वैश्वीकरण ने सिर्फ बाज़ार को ही नहीं प्रभावित किया है बल्कि इसने आर्थिकी, राजनीति और तकनीकी क्षेत्रो को भी

प्रभावित किया है। इस अध्याय में हम राष्ट्रवाद, इसकी आलोचना, युद्ध और बाज़ार पर इसके प्रभाव, वैश्वीकरण और इससे सम्बंधित पक्षों का अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी

1. राष्ट्रवाद को परिभाषित कर सकेंगे।
2. राष्ट्रवाद की समालोचना कर सकेंगे।
3. युद्ध और बाज़ार के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. वैश्वीकरण को परिभाषित कर सकेंगे।
5. आर्थिकी को परिभाषित कर सकेंगे और वैश्वीकरण का इसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।
6. राजनीति को परिभाषित कर सकेंगे और वैश्वीकरण का इसके प्रभाव को विश्लेषित कर सकेंगे।
7. तकनीकी को परिभाषित कर सकेंगे और वैश्वीकरण का इसके प्रभाव की विवेचना कर सकेंगे।

3.3 राष्ट्रवाद और इसकी आलोचना

"राष्ट्रवाद" राजनीतिक चिंतन तथा विचारों में एक उभयभावी अवधारणा रही वह चाहे साम्राज्यवाद से धर्मनिरपेक्षवाद, उदारवाद से समुदायवाद, क्षेत्रवाद से अंतर्राष्ट्रीयवाद हो, राष्ट्रवाद की अवधारणा इनमें सबसे अधिक विमर्शित तथा प्रतिस्पर्धात्मक रही है। राष्ट्रवाद की आलोचना से पहले यह जानना आवश्यक है कि राष्ट्रवाद क्या है ?

3.3.1 राष्ट्रवाद

राष्ट्रवाद एक जटिल और बहुआयामी अवधारणा है जो किसी देश के साथ साझा सांप्रदायिक पहचान को शामिल करती है। राष्ट्रवाद एक राजनीतिक विचारधारा है जो समूह (उदाहरणस्वरुप- देश या मातृभूमि) के ऐतिहासिक महत्व के क्षेत्र में स्वाभिमान या पूर्ण संप्रभुता को प्राप्त करने और बनाए रखने के लिए उन्मुख रहती है। अतः एक राष्ट्रवादी संकल्पना इस विचार से चलती है कि राष्ट्र को बिना अवांछित बाहरी हस्तक्षेप के अपने आप शासन करना चाहिए। यह आत्मनिर्णय की अवधारणा से जुड़ी होती है। राष्ट्रवाद राष्ट्र और वाद के मिलने से बना है। राष्ट्र की परिभाषा एक ऐसे जन समूह के रूप में दी जा सकती है जो कि एक भौगोलिक सीमाओं में एक निश्चित देश में रहता हो, समान परम्परा, समान हितों तथा समान भावनाओं से बँधा हो और जिसमें एकता के सूत्र में बाँधने की उत्सुकता तथा समान राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाएँ पाई जाती हों। इस परिभाषा के आधार पर राष्ट्रवाद को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि 'राष्ट्रवाद, साझा संस्कृतियों, संस्कृति, भाषा, जाति, धर्म, राजनीतिक लक्ष्यों या एक समान

वंश में एक विश्वास के आधार पर एक राष्ट्रीय पहचान को विकसित करने और बनाए रखने की ओर उन्मुख होने की अवधारणा है।'

राष्ट्रवाद में यह प्रयास किया जाता है कि राष्ट्र की संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखा जाए। यह राष्ट्र की उपलब्धियों में गर्व की भावना को शामिल करती है । राष्ट्रवाद की अवधारणा और देशभक्ति की अवधारणा से काफी मिलती-जुलती है।

राष्ट्रवाद को समझने कि लिए कई प्रतिमान हैं । एक राजनीतिक या सामाजिक दृष्टिकोण से, राष्ट्रवाद के मूल और आधार को समझने के लिए तीन मुख्य प्रतिमान हैं। पहले प्रतिमान को Primordialism या Perennialism के नाम से जानते हैं जो राष्ट्रवाद को एक प्राकृतिक घटना के रूप में देखता है। यह मानता है कि राष्ट्रवाद की अवधारणा भले ही नयी हो परन्तु राष्ट्र हमेशा से अस्तित्व में है। दूसरे प्रतिमान को Ethnosymbolism कहा जाता है जो एक जटिल संकल्पना है जो राष्ट्रवाद को एक गतिशील, विकासवादी घटना के रूप में इतिहास के संदर्भ में समझने का प्रयास करती है । तीसरा प्रतिमान Modernism आधुनिकतावाद है जो राष्ट्रवाद को एक हालिया घटना के रूप में देखता है, जिसे अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आधुनिक समाज की संरचनात्मक स्थितियों की आवश्यकता होती है ।

अगला प्रश्न यह है कि किसी भी राष्ट्र को राष्ट्रवाद की आवश्यकता क्यों होती है । तो यह इस कारण से कि राष्ट्रवाद की सहायता से हम बिना किसी बाह्य हस्तक्षेप के स्वतंत्रता पूर्वक जी सकते हैं, अपने विचार, संस्कृति और सभ्यता के लिए स्वतंत्र रहेंगे, जब राष्ट्र के भौगोलिक क्षेत्र के स्वतंत्रता के ऊपर अगर हमला होता है तो सब एकजुट होगें जिससे हमारी स्वतंत्रता बरक़रार रहेगी और हम स्वतंत्र रह सकेगें।

3.3.2 राष्ट्रवाद और इसकी आलोचना

राष्ट्रवाद सकारात्मक या नकारात्मक हो सकता है। राष्ट्रवाद की समय-समय पर आलोचना भी होती रही है । कुछ विद्वानों का मानना है कि अपने सभी स्वरूपों में राष्ट्रवाद किसी भी परिवर्तन या समस्या से राष्ट्र को मुक्त करने की मांग करते समय बल और हिंसा को जायज बताने का प्रयास करता है। रविन्द्र नाथ टैगोर भी उपरोक्त विचार से सहमत हैं । राष्ट्रवाद की आलोचना के तीन प्रमुख आधार जो रविंद्रनाथ टैगोर ने प्रस्तुत किए, वे थे- राष्ट्रीय राज्य की आक्रमक नीति, प्रतियोगी वाणिज्य-वाद की विचारधारा, और प्रजातिवाद **। रविंद्रनाथ टैगोर ने उस राष्ट्रवाद की आलोचना की, जिसमें नृशंसता, रुग्णता तथा पृथकता दिखाई देती है. वे राष्ट्रवाद को शक्ति का संगठित समष्टिगत रूप मानते हुए राज्य के शोषणकारी पक्ष को दर्शाते हैं.** उनके अनुसार पश्चिममें वाणिज्य तथा राजनीति की राष्ट्रीय मशीन द्वारा मानवता की साफ-सुथरी दबाई हुई गाठें तैयार कीं है। अल्बेयर कामू भी लिखते हैं कि , "मैं अपने देश को इतना प्यार करता हूँ कि मैं राष्ट्रवादी नहीं हो सकता" ।समस्या यह है कि यह सिर्फ राष्ट्र हित की बात नहीं होती बल्कि कुछ लोगों का स्वहित भी होता है । यह संकल्पना पूरी तरह कल्पना पर ही आधारित है जो राष्ट्रीयता के नाम पर सम्पूर्ण राष्ट्र की बात करती है । सम्पूर्ण राष्ट्र की बात करने के साथ ही इसमें पूरी जनसंख्या को ले आना अनिवार्य हो जाता है क्योंकि देश की प्रत्येक इकाई इसका भाग है । शाब्दिक रूपों

में यह इसकी बात भी करती है तथा यह प्रयास करती है कि लोग इससे प्रेरणा लें पर इसके साथ ही उनलोगों को समूह से बाहर भी कर देता है जो अपने किसी एक विचार से भी इससे सहमत नहीं हैं। इतिहास गवाह रहा है कि जब भी राष्ट्रवाद की बात हुई है या राष्ट्रीयता के लिए व्यापक प्रयास किया गया है यह अपने मार्ग से भटक गयी है और परिणाम अच्छे नहीं रहे हैं। यदि राष्ट्रवाद की संकल्पना के उदय की बात को ही देखें तो इसकी नेपोलियन बोनापार्ट ने इसकी शुरुआत जहाँ स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व से की थी वह अपना मार्ग भटक गयी और स्वलाभ के मार्ग पर आ गयी। राष्ट्रीयता की उग्र भावना सदैव हिंसात्मक रही है और जहाँ भी यह हुई है वहाँ उसने तानाशाहों को जन्म दिया है और फलतः उस देश की भूमि रक्त से रंजित हुई है।

महान अर्थशास्त्री एडम स्मिथ कहते हैं कि 'राष्ट्र के धन से' 'राष्ट्र की महानता', और समृद्धि लाने के लिए यह तीव्र इच्छा इसके साथ निश्चित ही एक अभिशाप लाता है। बात जब राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद की होती है तो अंतर्रात्मा की आवाज़ को कहीं दबा दिया जाता है और उससे जुडी सारी चीजों को निषिद्ध करार दे दिया जाता है जो कि गलत है। यहाँ बस यह आवश्यकता है कि व्यक्ति कहीं बहार से निर्देशित ना हो और अपनी आवाज़ को सुन सके और उससे निर्देशित हो सके कि उसे इन परिस्थितियों में क्या करना चाहिए। राष्ट्र और धर्मनिरपेक्षीकरण के नाम पर व्यक्ति के अंतर्द्वंदों को दबा देना और उसकी भावनाओं को निषेधित करना बिलकुल ही गलत हैं। स्वविवेक से कार्य करना तभी संभव होता है जब व्यक्ति निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र होता है। इसका आशय यह है कि संस्थागत आदेशों में अन्य बातों के अलावा धर्म और राजनीति के बीच मुक्त स्थान छोड़ दिया जाता है और यह सुनिश्चित किया जाता है कि व्यक्ति अपने मुक्त अंतरात्मा के अनुसार निर्णय कर सके और कार्य कर सके। मुक्त चेतना या अंतर्रात्मा का अर्थ है कि व्यक्ति अपने अनुसार निर्णय ले सके।

यहाँ यह यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आलोचना राष्ट्रवाद की नहीं बल्कि छद्म राष्ट्रवाद की है क्योंकि सही राष्ट्रवाद सभी नागरिकों को साथ लेकर चलने में है। विनाश हमेशा छद्म राष्ट्रीयता से ही होता है। विकास में राष्ट्रवाद की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। उदारतावादी और लोकतांत्रिक राज्य से गठजोड़ करके ग़रीबी और पिछड़ेपन के शिकार समाजों को आगे ले जाने में राष्ट्रवाद ने ऐतिहासिक भूमिका निभाया है। सभी उत्तर-औपनिवेशिक समाजों ने अपने वैकासिक लक्ष्यों को पाने के लिए राष्ट्रवाद का सहारा लिया है। ख़ास तौर से भारत जैसे बहुलतामूलक समाजों को एक राजनीतिक समुदाय में विकसित करने में राष्ट्रवाद एक प्रमुख कारक रहा है।

वैसे भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने राष्ट्रवाद को चुनौती दी है। वर्तमान समय में विश्व का एक बड़ा वर्ग एक सी भाषा बोलता है, एक सी पुस्तकें पढता है, एक सा ख़ाना खाता है और कई मुद्दों पर एक सा सोचता है।

अभ्यास प्रश्न

1. Primordialism अवधारणा के अनुसार राष्ट्रवाद क्या है ?
2. Modernism के अनुसार राष्ट्रवाद को परिभाषित करें।
3. राष्ट्रवाद की आलोचना रविंद्रनाथ टैगोर ने किन आधारों पर किए थे ?

3.4 युद्ध और बाज़ार

युद्ध का इतिहास मानव सभ्यता के उदय के साथ ही प्रारंभ हो गया। युद्ध पहले भी होते थे और आज भी हो रहे हैं। यह सत्य है कि समय-समय पर कारक परिवर्तित होते रहे हैं। क्विंसी राइस ने युद्ध को परिभाषित करते हुए कहा है कि "युद्ध दो भिन्न परन्तु दो समान इकाईयों के मध्य हिंसात्मक संघर्ष है।" वहीँ क्लाजविट्ज़ युद्ध के लिए कहते हैं कि "युद्ध राजनीति को क्रियान्वित करने का माध्यम है।"
युद्ध और बाज़ार एक दुसरे को सीधे तौर पर प्रभावित करते हैं। वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण ने बाजारीकरण को बढ़ावा दिया है और दुनिया के हर क्षेत्र में बाज़ार का विस्तार किया है। इस तरह देश की अर्थव्यवस्था भी प्रभावित होती है। सन् 2003 में अमेरिका पर हुआ जबरदस्त हमला इसका ज्वलंत उदाहरण है जिसमें पल भर मैं हजारों लोग असमय काल के शिकार हो गए और सारे विश्व की अर्थव्यवस्था की नींव हिल गई थी।

एडुआर्डो गलियानो का कथन है कि 'युद्ध वैसे ही बेचे जाते हैं जैसे कारें, झूठ बोल कर' । एडुआर्डो गलियानो ने यह बात साम्राज्यवादी शक्तियों की साजिशों के खिलाफ कही थी. ऐसी साम्राज्यवादी शक्तियां, जिनका पूरे मीडिया पर कब्जा है, जो बाजार को अपने हितों के अनुकूल संचालित करती हैं। क्राउथर का मानना है कि "आज-कल युद्ध स्त्रातेजी व समरतंत्र की अपेक्षा अर्थशास्त्र से अधिक प्रभावित होते हैं।" जहाँ एक ओर एक ऐसा बाज़ार है जिसे युद्ध का फायदा होता है क्योंकि वह ऐसा बाज़ार है जो युद्ध बेचता है और अतः युद्ध को प्रायोजित करता है। युद्ध न होने पर युद्ध का भय दिखाकर युद्ध के बाज़ार सामग्रियों में तेज़ी बनाए रखता है। पर दूसरी ओर उदारीकरण और वैश्वीकरण के फलस्वरूप जब पूरा विश्व एक बाज़ार बन गया है तो युद्ध का प्रभाव एक देश की अर्थव्यवस्था पर नहीं पड़ता बल्कि पूरा विश्व इससे प्रभावित होता है। इतिहास की सबसे बड़ी महामंदी ने इस प्रकार विश्व को प्रभावित किया कि फासीवाद का प्रारंभ हुआ और पूरी दुनिया द्वितीय महायुद्ध के चपेटे में आ गयी पर इसके पश्चात् युद्ध के फलस्वरूप दुनिया महामंदी से बाहर भी निकली। जब भी युद्ध होता है अर्थव्यवस्था धाह जाति है और बाज़ार नीचे गिर जाता है। कई बार माँग तो होती है पर पूर्ति नहीं हो पाती जिससे स्थिति भयावह हो जाती है । जिन देशों के मध्य युद्ध होता है या जिस देश में युद्ध होता है उसके निवेशों को झटका लगता है और उस मुद्रा की कीमत गिर जाती है जो उसकी अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुंचता है। युद्ध के परिणाम स्वरुप निर्माण उद्देश्यों को भी नुक्सान पंहुचता है जो बाज़ार को प्रभावित करता है।

अंत में लेनिन की उक्ति को युद्ध और बाज़ार के संबंधों के सन्दर्भ में दी जा सकती है कि "युद्ध पूंजीवादी विस्तार का ही उत्पाद है। पूँजीवाद से साम्राज्यवाद बनता है और साम्राज्यवाद से युद्ध होता है।"

अभ्यास प्रश्न

4. युद्ध का किसी देश की अर्थव्यवस्था पर क्या असर होता है?

3.5 वैश्वीकरण

वैश्विकरण या ग्लोबलाइजेशन वह प्रक्रिया है, जिसमें व्यापार, सेवाओं या तकनीकियों का पूरे संसार में वृद्धि, विकास और विस्तार किया जाता है। यह विभिन्न व्यापारों या व्यवसायों का पूरे संसार के विश्व बाजार में विस्तार करना है।

"अविश्वं विश्वं यथा स्यात् तथा इति वैश्वीकरणं ।" अर्थात जो विश्व नहीं है वह जैसे विश्व बन जाए , वैसा करना वैश्वीकरण है ।

अंग्रेजी शब्द ग्लोबलाइजेशन को हिंदी में वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण के नाम से जानते है का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया है। *"वैश्वीकरण"* शब्द का उपयोग अर्थशास्त्रियों के द्वारा 3980 से किया जाता रहा है, हालाँकि 3960 के दशक में इसका उपयोग सामाजिक विज्ञान में किया जाता था । इसे एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। वैश्वीकरण का मुख्य बल संयोजन पर है । यह आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है। वैश्वीकरण का उपयोग अक्सर आर्थिक वैश्वीकरण के सन्दर्भ में किया जाता है, अर्थात, व्यापार, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, पूंजी प्रवाह, प्रवास और प्रौद्योगिकी के प्रसार के माध्यम से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में एकीकरण होना ही वैश्वीकरण है । इस प्रकार " वैश्वीकरण " का अर्थ आर्थिक प्रयोजनों के लिए राष्ट्रीय सीमाओं का विलोपन, है । वैश्वीकरण में जो स्थानीय है वह सार्वभौम है और जो सार्वभौम है वह स्थानीय है ।

प्रो. एन्थोनी गिन्डिस के कहा है कि "भूमंडलीकरण विश्वव्यापी सामाजिक संबंधों का गहनीकरण है जो दूर-दूर स्थित आबादियों को एक दुसरे से इस तरह जोड़ता है कि बहुत दूर पर होने वाली घटनाओं का स्थानीय घटनाओं और स्थानीय घटनाओं का मीलों दूर होने वाली घटनाओं पर प्रभाव पड़ता है ।

i. **अर्थव्यवस्था-** अर्थव्यवस्था को परिभाषित करते हुए यह कहा जा सकता है कि यह उत्पादन, वितरण तथा खपत की एक सामाजिक व्यवस्था है। यह किसी देश या क्षेत्र विशेष में अर्थशास्त्र का गतित चित्र है जो किसी विशेष समय काल से सम्बंधित होता है । यदि इसके अर्थ को देखा जाए तो अर्थव्यवस्था दो शब्दो से बना है; पहला अर्थ और दूसरा व्यवस्था। अर्थ का तात्पर्य है मुद्रा या धन और व्यवस्था का मतलब है एक स्थापित कार्यप्रणाली। इसप्रकार अर्थव्यवस्था धन से सम्बंधित कार्य प्रणाली है जो किसी देश से सम्बंधित होती है । इस शब्द का सबसे प्राचीन उल्लेख कौटिल्य द्वारा लिखित ग्रन्थ अर्थशास्त्र मे मिलता है।
ii. **वैश्वीकरण और आर्थिकी निहितार्थ:** वैश्वीकरण का अर्थव्यवस्था से सीधा सम्बन्ध है । वैश्वीकरण के युग में जब पूरा विश्व एक गाँव बन चुका है जिसका एक ही बाज़ार है तब अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक बाज़ारों में चलने वाले आन्दोलनों द्वारा किसी देश की राष्ट्रीय सरकार की

आर्थिक नीतियों का निर्धारण होता है। लगभग सम्पूर्ण विश्व का आर्थिक वैश्वीकरण हो चुका है। सम्पूर्ण विश्व को एक समग्र इकाई के रूप में तथा बाज़ार को इसके एक उपकरण के रूप में स्वीकार किया जाता है। एक वैश्वीकृत दुनिया में खुला, उदार एवं मुक्त बाज़ार तथा मुक्त व्यापार अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं हैं। जिसे अंतर्राष्ट्रीय निवेश और तात्कालिक पूँजी के प्रवाहों द्वारा चिन्हित किया जाता है ।राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थायें श्रेष्ठ आर्थिक परिधियों में आ रही हैं और इनका अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय तथा वित्तीय बाज़ारों की दुनिया से एकीकरण हो रहा है। और इसे कंप्यूटर के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व में तत्काल सम्पन्न किया जाता है।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (F.D.I.) की गति तथा इसके विस्तार और दुनिया के विभिन्न हिस्सों में तात्कालिक पूँजी के प्रवाह को आर्थिक वैश्वीकरण के रूप में देखा जाता है । इसके परिणामस्वरूप अन्तर्राज्यीय तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ इस देश और क्षेत्र में पंहुंचने के लिए प्रयासरत हैं जहाँ सस्ता श्रम उपलब्ध है। इससे राष्ट्र-राज्य की आर्थिक स्वायत्तता प्रभावित हो रही है। भारत में पेप्सी, कोकाकोला जैसी कंपनियों की स्थापना और टाटा ग्रुप्स द्वारा नैनो के लिए गुजरात में प्लांट की स्थापना इसका उदाहरण हैं । बाज़ारों, व्यापारिक वस्तुओं तथा विनियोगों के क्षेत्र में वैश्वीकरण का स्पष्ट प्रभाव है जो अर्थव्यवस्था के भाग हैं। वैश्वीकरण का उदारीकरण से स्वाभाविक मेल है क्योंकि पूँजी का बहाव हो रहा है। तथा दुनिया के देश में बहुराष्ट्रीय कंपनी और निगम अपना जाल फैला रहे हैं। आज विदेशी पूँजी का निवेश विश्व-व्यापी है। हर देश में मैकडोनाल्डस, डोमिनोज और के.एफ.सी. खुल गए हैं। आर. गिल्पिन के अनुसार वैश्वीकरण विश्व की अर्थव्यवस्था का एकीकरण है।

वैश्वीकरण का जन्म उदारीकरण के फलस्वरूप हुआ है। उदारीकरण जब बड़े स्तर पर फ़ैल जाता है यानि विश्व स्तर पर फ़ैल जाता है तब विश्व एक बाज़ार बन जाता है ।एक देश की अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन विश्व अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन विश्व अर्थव्यवस्था से किया जाने लगता है और ऐसा इसलिए किया जाता है कि अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में आये उछाल या मंदी पूरे विश्व की आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करने लगती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वर्तमान समय में पूरा विश्व एक ही अर्थव्यस्था से बंधा है और जो वैश्वीकरण का परिणाम है।

अभ्यास प्रश्न

5. वैश्वीकरण मुख्य रूप से किस पर बल देता है?
6. अर्थव्यवस्था शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसके द्वारा किया गया था?

iii. **राजनीति:** राजनीति का अंग्रेजी शब्द Politics का जन्म मूल रूप से यूनानी भाषाके पोलिस शब्द से हुई है। पोलिस का अर्थ समुदाय या जनता या समाज है। यूनानी दार्शनिकों प्लेटो और

अरस्तु ने ऐसी हर चीज़ को राजनीति माना है जिसका सम्बन्ध पूरे समुदाय को प्रभावित करने वाले प्रश्नों से है। राजनीति को नागरिक स्तर पर या व्यक्तिगत स्तर पर कोई विशेष प्रकार का सिद्धान्त एवं व्यवहार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यदि राजनीति को संकीर्ण रूप से परिभाषित करने का प्रयास किया जाए तो कहा जा सकता है कि यह शासन में पद प्राप्त करना तथा सरकारी पद का उपयोग करना है। राजनीति के कई स्तर होते हैं- गाँव की परम्परागत राजनीति से लेकर, स्थानीय सरकार, सम्प्रभुत्वपूर्ण राज्य या अन्तराष्ट्रीय स्तर पर।

iv. **वैश्वीकरण और राजनीतिक निहितार्थ:** वर्तमान समय में विश्व में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का राजनीतिक अर्थशास्त्र वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण से प्रभावित है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर भूमंडलीकरण का प्रभाव स्पष्ट है। आधुनिकता के आरंभिक दौर में समाज और राष्ट्र-राज्य के विषयों के ऐतिहासिक सन्दर्भ में विद्वानों ने भविष्यवाणी की थी कि अधिराष्ट्रीय राजनीतिक संरचना के द्वारा एक विश्व समाज प्रस्तुत किया जाएगा। विद्वानों का तर्क रहा है कि तुलनात्मक दृष्टि से अंतर्राष्ट्रीय संगठनों आर शासन की निर्भरता बढ़ेगी, द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय समझौतों द्वारा इसमें वृद्धि होगी; इस प्रकार से स्वतंत्रता घटेगी। वैश्वीकरण ने राज्य की प्रभुसत्ता के बाहरी पक्ष को अंकुश में लिया है तथा लोक कल्याणकारी राज्य के अंत की ओर संकेत किया है। यह राज्य का नया प्रतिमान स्थापित कर रहा है जो गैर-राज्य अभिकर्ताओं के सहयोग पर कार्य कर रहा है । सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने राष्ट्र-राज्य के सीमाओं को तोड़ दिया है। यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक वैश्वीकरण अधिक शांतिपूर्ण विश्व व्यवस्था और समाज की रचना कर रहा है।

उदारीकरण जब बड़े स्तर पर फ़ैल जाता है यानि विश्व स्तर पर फ़ैल जाता है तब विश्व एक बाज़ार बन जाता है। एक देश की अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन विश्व अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन विश्व अर्थव्यवस्था से किया जाने लगता है और ऐसा इसलिए किया जाता है कि अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में आये उछाल या मंदी पूरे विश्व की आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करने लगती है तो इसे भूमंडलीकरण का नाम दे दिया जाता है। जैसा पहले लिखा गया है कि वैश्वीकरण का जन्म उदारीकरण के ही फलस्वरूप हुआ है। यह व्यापक स्तर पर तमाम उदारवादी विशेषताओं को स्वीकार करता है और उसे लागू करता है।

समकालीन विश्व में अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध आर्थिक तत्वों पर आधारित हैं। आज विश्व के सभी देश अपने राष्ट्रीय हित की पूर्ति के रूप में अर्थव्यवस्था पर ध्यान दे रहे हैं। सामरिक असुरक्षा भावना राष्ट्रों के बीच अब नहीं रही है । ऐसी स्थिति में भूमंडलीकरण ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का राजनीतिक अर्थशास्त्र बदल कर रख दिया है। कल तक जो राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भूमिका निभाते थे उनका उद्देश्य शक्ति प्राप्त करना था लेकिन अब वैश्वीकरण के युग में अपने राष्ट्रीय हित को किसी-न-किसी रूप में सही ढंग से पूरा करना चाहते हैं। आज राष्ट्रों के बीच के सम्बन्ध इस बात पर निर्धारित हो रहे हैं कि वह वैश्वीकरण में कितने भागीदार हैं और उसकी बाज़ार व्यवस्था क्या है। जहाँ इस बात का ध्यान नहीं रखा जा रहा वहाँ इसका प्रभाव देखने को मिल रहा है।

एक ताज़ा उदाहरण चीन और भारत का है जिसमें परमाणु आपूर्ति संधि या पाकिस्तान के मसले पर सही रुख ना दिखने के लिए चीन को बड़े बाज़ार से हाथ धोना पड़ा।

वैश्वीकरण ने पूंजीवाद को बढ़ावा देते हुए अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा के महत्व को लगभग समाप्त कर दिया है या समाप्त करने पर तुले हैं। कल तक जो देश आपस में विचारधारा के आधार पर जुड़े थे आज वह अपने आर्थिक हित के लिए विचारधारा पर ध्यान देना छोड़ दिया है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में वैश्वीकरण के कारण अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष IMF, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन (WTO) और विश्व बैंक जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठन प्रभावकारी हुए हैं और संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) के सुरक्षा परिषद् की भूमिका में थोड़ी कमी आई है

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में वैश्वीकरण का जहाँ भारत पर प्रभाव का सवाल है वह काफी महत्वपूर्ण है। वैश्वीकरण ने भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ दिया है। यही नीति के कारण अमेरिका और इजरायल के करीब हो रहा है। राजनैतिक वैश्वीकरण विश्व सरकार का एक गठन है जो राष्ट्रों के बीच सबंध का नियमन करता है तथा सामाजिक और आर्थिक वैश्वीकरण से उत्पन्न होने वाले अधिकारों की गारंटी देता है।राजनीतिक रूप से, संयुक्त राज्य अमेरिका ने विश्व शक्तियों के बीच एक शक्ति के पद का आनंद उठाया है; ऐसा इसकी प्रबल और संपन्न अर्थव्यवस्था के कारण है।

हेवुड अपनी पुस्तक कॉन्सेप्ट्स इन पॉलिटिक्स में कहते हैं कि वैश्वीकरण ने भौगोलिक दूरी को कम कर दिया है तथा प्रादेशिक सीमाओं का महत्व निरंतर कम होने लगा है। हेवुड का कहना है कि वैश्वीकरण ने स्थानीय तत्व को राष्ट्रीय और राष्ट्रीय तत्व को वैश्वीकरण तत्व के अधीन नहीं किया है अपितु स्थानीय राष्ट्रीय एवं वैश्वीकरण स्तरों पर सभी प्रकार की प्रक्रियाओं में सामंजस्य पैदा किया है। यह मात्र सूचनाओं मानव संसाधनों का स्वतंत्र आदान-प्रदान नहीं है अपितु यह आर्थिक, राजनितिक, सामजिक, सांस्कृतिक आदि रूपों का लोगों और राष्ट्रों के बीच संयोजन है। वैश्वीकरण एक सामजिक राजनीतिक प्रक्रिया है।

v. **तकनीकी:** तकनीक शब्द यूनानी शब्द "टेक्ने" से बना है जिसका अर्थ है शिल्प या कला। एक अन्य शब्द "प्रौद्योगिकी " भी उसी मूल से आया है। जब विज्ञान के साथ व्यावहारिक कला और औद्योगिक कला प्रयुक्त की जाती है तो उसे तकनीकी कहते हैं। सम विषयक क्षेत्रों, शैक्षिक और मानवीय कार्य-प्रदर्शन के लिए तकनीकी का अर्थ "व्यावहारिक विज्ञान है।" दूसरे शब्दों में, वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग के द्वारा मौलिक शोध से व्युत्पन्न कोई भी प्रक्रिया या प्रक्रियाएं तकनीकी मानी जा सकती हैं।

आदिकाल से मानव तकनीक का प्रयोग करता आ रहा है। आधुनिक सभ्यता के विकास में तकनीकी का बहुत बडा योगदान है। जो समाज या राष्ट्र तकनीकी रूप से सक्षम हैं वे सामरिक रूप से भी सबल होते हैं और और इतिहास साक्षी रहा है कि फिर वे कालांतर में आर्थिक रूप से भी सबल बन जाते हैं।

vi. **वैश्वीकरण और तकनीकी निहितार्थ:** वैश्वीकरण तकनीकी द्वारा प्रभावित हो रहा है और उसको प्रभावित कर भी रहा है। यदि वैश्वीकरण अपने इस रूप को प्राप्त कर पाया है तो इसके पीछे तकनीकी ही है। विचार, पूँजी, वस्तु और लोगों की विश्व में विभिन्न भागों में आवाजाही में आसानी के पीछे कारण विकसित तकनीकी ही है। तकनीकी ने उत्पादन, यातायात और संचार के साधनों में ऐसी वृद्धि की है कि सारी दुनिया एक गाँव में बदल गयी है।

तकनीकी वैश्वीकरण के द्वारा विकसित भी हो रही है और वैश्वीकरण के द्वारा सुदूर क्षेत्रों को भी प्रभावित कर रही है। एक वैश्विक दूरसंचार बुनियादी संरचना का विकास और सीमा पार आंकडों का अधिक प्रवाह, साथ ही ऐसी तकनीकों का उपयोग जैसे इंटरनेट, संचार उपग्रहों, समुद्र के भीतर ऑप्टिक केबल, वायरलेस टेलीफोन का प्रयोग विकसित तकनीकी के सहयोग से ही संभव है। वैश्वीकरण के कारण विभिन्न लोग और देश एक दूसरे के तकनीकी से अवगत हो रहे हैं और इस कारण से विश्व स्तर पर लागू मानकों की संख्या में वृद्धि, कॉपीराइट का कानून, पेटेंट, और विश्व व्यापार समझौतों की संख्या नित प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। तकनीकी शिक्षा कुशल जन शक्ति का सृजन कर, औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाकर और लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करके देश के मानव संसाधन विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। तकनीकी शिक्षा में इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी, प्रबंधन, वास्तुकला, नगर योजना, फार्मेसी, अनुप्रयुक्त कला एवं शिल्प, होटल प्रबंधन और केटरिंग प्रौद्योगिकी के कार्यक्रमों को शामिल किया जाता है और ये सभी कार्यक्रम वैश्वीकरण में योगदान कर रहे हैं। लोग शिक्षा प्राप्त कर विभिन्न अवसरों की तलाश में अन्तर्राज्यीय- अंतर्राष्ट्रीय रूप से प्रवर्जन करते हैं वह वैश्वीकरण में योगदान करता है। इसके साथ ही वैश्वीकरण के फलस्वरूप इन क्षेत्रों में बढ़े माँगों को देखते हुए उपरोक्त क्षेत्रों में शिक्षण संस्थाएं खुल रही हैं जो इसका प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। भारत से लेकर दुनिया के हर एक देश में बहुराष्ट्रीय कंपनी खुल रही हैं जो तकनीकी और वैश्वीकरण का मिला जुला प्रभाव है। हर एक देश अपने देश के सामान को हजारों की संख्या में लेकर खड़ा है इस समय में यह आवश्यक हो जाता है कि अन्य देश भी अपने उत्पाद के लिए गुणवत्ता बनाए रखने के साथ ही कम कीमत में उत्पादों को उपभोक्ताओं तक पहुचायें अन्यथा वह बाज़ार से गायब हो जायेंगे। यह भी देशों और कंपनी को बेहतर तकनीकी सबलता के लिए दबाव बनाये रखता है। उदाहरण के लिए बाज़ार में मोबाइल फ़ोन की स्थिति देखि जा सकती है। आज हर दूसरे दिन एक नयी कंपनी नए और बढ़िया सुविधाओं के साथ नए हैण्ड सेट्स बाज़ार में ला रही है। चीन के उत्पादों का मूल्य भी कम है और सुविधाओं के रूप में भी अच्छी हैं ऐसे में हर एक देश और उसकी कंपनी पर दबाव है कि वे कम दाम में अच्छा फोन उपभोक्ताओं को उपलब्ध करायें।

उपसंहार के रूप में इस पाठ में यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त में वर्णित सभी तथ्य एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। राष्ट्रवाद की संकल्पना किसी भी देश की प्रगति के लिए आवश्यक हैं क्योंकि उस परिस्थिति में देश की सम्पूर्ण जनसंख्या एक साथ मिल कर देश हित के लिए कार्य करती है। पर

जब यह भावना अंध राष्ट्रवाद से जुड़ जाती है तब स्थिति विकृत हो जाती है और ऐसे में दूसरे देशों के साथ या गृहयुद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। आज के युग में जब औद्योगिकीकरण ने उदारीकरण को और उदारीकरण ने वैश्वीकरण और निजीकरण को जन्म दे दिया है ऐसे में युद्ध जैसी स्थिति का सम्पूर्ण विश्व पर प्रभाव पड़ना स्पष्ट है। साथ ही वैश्वीकरण ने सम्पूर्ण देश की अर्थव्यवस्था, राजनीति और तकनीकी को जोड़ रखा है ऐसे में एक देश की होने वाली घटनाएँ प्रत्यक्ष रूप में अन्य देशों को प्रभावित करते हैं।

अभ्यास प्रश्न:

7. यूनानी शब्द पोलिस का क्या अर्थ है ?
8. वर्तमान समय में दो देशों के मध्य के राजनीतिक सम्बन्ध को कौन से से प्रभावित करते हैं?
9. तकनीकी ने वैश्वीकरण को किस तरह प्रभावित किया है?

3.6 सारांश

प्रस्तुत पाठ में हमने देखा कि राष्ट्रवाद क्या है और इसकी आलोचना क्यों की जाती है। यदि उग्र राष्ट्रवाद हो तो युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और यह युद्ध किस प्रकार से बाज़ार पर असर डालता है। ऐसे वक़्त में जब दुनिया का बाज़ार एक हो, पूरी दुनिया का एक हित हो और सभी देशों की अर्थव्यवस्थाएं एक दूसरे जुड़ी हों और नवीन नीतियों और वैज्ञानिक उपलब्धियों ने पूरे विश्व को एक मंच पर ला दिया हो तो कैसे ये सारे तत्व एक दुसरे को प्रभावित करते हैं

3.7 शब्दावली

1. राष्ट्र: एक ऐसे जन समूह जो कि एक भौगोलिक सीमाओं में एक निश्चित देश में रहता हो, समान परम्परा, समान हितों तथा समान भावनाओं से बँधा हो और जिसमें एकता के सूत्र में बाँधने की उत्सुकता तथा समान राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाएँ पाई जाती हों, राष्ट्र कहलाता है।
2. राष्ट्रवाद: राष्ट्रवाद, साझा संस्कृतियों, संस्कृति, भाषा, जाति, धर्म, राजनीतिक लक्ष्यों या एक समान वंश में एक विश्वास के आधार पर एक राष्ट्रीय पहचान को विकसित करने और बनाए रखने की ओर उन्मुख होने की अवधारणा है।
3. वैश्वीकरण: भूमंडलीकरण विश्वव्यापी सामाजिक संबंधों का गहनीकरण है जो दूर-दूर स्थित आबादियों को एक दुसरे से इस तरह जोड़ता है कि बहुत दूर पर होने वाली घटनाओं का स्थानीय घटनाओं और स्थानीय घटनाओं का मीलों दूर होने वाली घटनाओं पर प्रभाव पड़ता है।

4. अर्थव्यवस्था: अर्थव्यवस्था उत्पादन, वितरण तथा खपत की एक सामाजिक व्यवस्था है। यह किसी देश या क्षेत्र विशेष में अर्थशास्त्र का गतित चित्र है जो किसी विशेष समय काल से सम्बंधित होता है।
5. राजनीति: राजनीति नागरिक स्तर पर या व्यक्तिगत स्तर पर कोई विशेष प्रकार का सिद्धान्त एवं व्यवहार है।
6. तकनीकी: वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग के द्वारा मौलिक शोध से व्युत्पन्न कोई भी प्रक्रिया या प्रक्रियाएं हैं।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. Primordialism राष्ट्रवाद को एक प्राकृतिक घटना के रूप में देखता है। यह मानता है कि राष्ट्रवाद की अवधारणा भले ही नयी हो परन्तु राष्ट्र हमेशा से अस्तित्व में है।
2. Modernism राष्ट्रवाद को एक हालिया घटना के रूप में देखता है, जिसे अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आधुनिक समाज की संरचनात्मक स्थितियों की आवश्यकता होती है।
3. रविंद्रनाथ टैगोर ने राष्ट्रवाद की आलोचना राष्ट्रीय राज्य की आक्रमक नीति, प्रतियोगी वाणिज्य-वाद की विचारधारा, और प्रजातिवाद के आधार पर की थी ।
4. जिस देश में युद्ध होता है उसके निवेशों को झटका लगता है और उस मुद्रा की कीमत गिर जाती है जिससे उसकी अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुंचता है।
5. वैश्वीकरण मुख्य रूप से संयोजन पर बल देता है।
6. अर्थव्यवस्था शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग कौटिल्य के द्वारा अर्थशास्त्र नामक पुस्तक में किया गया था।
7. यूनानी शब्द पोलिस का अर्थ समुदाय या जनता या समाज है।
8. वर्तमान समय में राष्ट्रों के बीच के सम्बन्ध बाज़ार के रूप में राष्ट्रीय हित की प्राप्ति, वैश्वीकरण में दूसरे देश की भागीदारी और उसकी बाज़ार व्यवस्था से प्रभावित हो रहे हैं ।
9. तकनीकी ने उत्पादन, यातायात और संचार के साधनों में ऐसी वृद्धि की है कि सारी दुनिया एक गाँव में बदल गयी है और वैश्वीकरण को प्रोत्साहन मिला।

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Wikipedia. (n.d.). Globalization. Retrieved from https://en.m.wikipedia.org/wiki/globalozation
2. Wikipedia. (n.d.). Nationalism. Retrieved from https://en.m.wikipedia.org/wiki/nationalism

3. सिंह, ए. के. (2009). आधुनिक स्त्रातेजिक विचारधारा एवं राष्ट्रीय सुरक्षा. इलाहाबाद: प्रयाग पुस्तक भवन.
4. सिंह, एल. (2037). राष्ट्रीय रक्षा और सुरक्षा. बरेली:प्रकाश बुक डिपो.

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रवाद को परिभाषित करते हुए इसकी समालोचना करें।
2. युद्ध और बाज़ार के संबंधों को स्पष्ट करें ।
3. वैश्वीकरण क्या है ? वैश्वीकरण के आर्थिकी, राजनीतिक और तकनीकी निहितार्थों की व्याख्या करें।

इकाई 4- बाल्यावस्था में द्वंद विन्यासः कुछ क्षेत्रों का केस अध्ययन जहां विभिन्न प्रकार के द्वंदों ने विस्थापन, हिंसा अथवा सामाजिक अशांति की ओर प्रेरित किया

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 बाल्यावस्था तथा द्वंद
4.3.1 बाल्यावस्था की संकल्पना
4.3.2 द्वंद की संकल्पना
4.3.3 द्वंदों के प्रकार
4.3.4 बाल्यावस्था में द्वंद
4.4 बाल्याबस्था में द्वंद के स्त्रोत
4.5 व्यक्ति अध्ययन
4.5.1 उन प्रमुख क्षेत्रों का केस अध्ययन जिसमें विभिन्न प्रकार के द्वंदों ने विस्थापन, हिंसा अथवा सामाजिक अशांति को प्रेरित किया है
4.5.2 कुछ अन्य क्षेत्रों का केस अध्ययन जो बालकों को विस्थापन, हिंसा तथा सामाजिक अशांति की ओर ले जाते हैं
4.6 द्वंदों को समाप्त कर शांति निर्माणकर्त्ता के रूप में शिक्षक की भूमिका
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

शांतिः मुद्दो तथा चुनौतियों से संबंधित यह तीसरी इकाई है, इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा पर्यावरण से जुड़े हुए शांति के क्या मुद्दे तथा चुनौतियाँ है?

शांति के महत्व को समझते हुए बाल्यावस्था में होने वाले विभिन्न द्वंदो तथा उन क्षेत्रों का अध्ययन प्रस्तुत इकाई में विस्तार से किया गया है जिसनें बाल्यावस्था में विस्थापन, हिंसा तथा सामाजिक अशांति को उत्पन्न करने में एक उत्प्रेररक का कार्य किया है। साथ ही एक शांति निर्माणकर्त्ता के रूप में शिक्षक की भूमिका का भी वर्णण किय गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बाल्यावस्था में द्वंद विन्यास को समझा सकेंगे तथा उन क्षेत्रों का विश्लेषण कर सकेंगे जिन्होंने विस्थापन, हिंसा अथवा सामाजिक अशांति की ओर प्रेरित किया और एक भावी शिक्षक के रूप में अपनी भूमिका को भी समझ सकेंगे।

4.2. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

1. बाल्यावस्था तथा द्वंद की संकल्पना को समझ सकेंगे।
2. बाल्यावस्था में द्वंद के स्त्रोतों का वर्णन कर सकेंगे।
3. बाल्यावस्था में द्वंद के प्रकारों को सूचीबद्ध कर सकेंगे।
4. बाल्यावस्था में द्वंद विन्यासों को बता सकेंगे।
5. व्यक्ति अध्ययन को परिभाषित कर सकेंगे।
6. उन प्रमुख क्षेत्रों की व्याख्या कर सकेंगे जिसमें विभिन्न प्रकार के द्वंदों ने विस्थापन, हिंसा अथवा सामाजिक अशांति को प्रेरित किया है।
7. एक शांति निर्माता के रूप में शिक्षक की भूमिका का विवेचन कर सकेंगे।

4.3 बाल्यावस्था तथा द्वंद

''जीवन की प्रत्येक अवस्था में शांति संभव है तथा यह पूर्णतः मनुष्य पर निर्भर करता है कि वह अपना भाग्य चुनें या युद्ध के भय से ग्रसित रहे। आज मानवता उस दोराहे पर है जहाँ उसे साहस, दृढ़ निश्चय तथा कल्पना के साथ उचित पथ को चुनना होगा'' **फेडेरिको मेयर**

शांति के लिए शिक्षा जीवन के लिए शिक्षा है ना कि जीविका के लिए प्रशिक्षण मात्र। शांति शिक्षा का उद्देश्य है लोगों को ऐसे मूल्यों, कौशलों और अभिवृत्तियों से लैस करना जिनसे उन्हें दूसरों के साथ सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार रखनेवाले पूर्ण व्यक्ति और उत्तरदायी नागरिक बनने में सहायता मिले। विद्यालयीं शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा 2000 के अनुसार, ''धर्म मूल्य-सृजन का एक स्त्रोत है। मूल्य और अभिवृत्तियाँ शांति की संस्कृति का निर्माण करने वाली भवन-सामग्री की तरह है।''मूल्य शिक्षा, शांति के लिए शिक्षा कक्षागत द्वदों से अधिगम स्वतंत्रता का आवाहन करती है तथा इसका रूपान्तरण जागरूकता के उत्सव में करती है जो खोज करने के बीज को अनुप्राणित (सजीव) करती है।

बाल्यावस्था विकास की वह अवस्था होती है जिसमें वे सामान्यतः अपनी अस्मिता से धीरे-धीरे परिचित होते जाते हैं। वे स्वतंत्र व्यक्ति बनने की कगार पर होते हैं यद्यपि उनमें परिपक्वता की अभी भी कमी होती है। परिणामतः यह क्रम साथियों, अभिभावकों और शिक्षकों के साथ द्वंदों की ओर ले जाता है।

4.3.1 बाल्यावस्था की संकल्पना

साधारण शब्दों में बाल्यावस्था, शैशावस्था के बाद की अवस्था है। हरलॉक के शब्दों में ''उत्तर बाल्यवस्था 6 वर्ष की आयु से लेकर यौनिक परिपक्वता के आरंभ होने तक ग्यारह और बारह वर्षों के बीच होती है।''

इससे स्पष्ट होता है कि बाल्यावस्था 6 से 42 वर्ष तक होती हैं। शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार इस अवस्था में नियमित रूप से बालक विद्यालय जाने लगता है। कुछ अभिभावक इस अवस्था को ''चुस्ती की आयु'' (ेउंतज ंहमद्ध कहते है- क्योंकि इसमें बालक दौड़-धूप, कार्य आदि में लगा रहता है। कुछ अभिभावन गण इसे 'गंदी आयु' (क्पतजल ंहम) कहते है, क्योंकि इस समय बालक गंदा, मैला-सा और लापरवाह सा दिखाई पड़ता है। मनोवैज्ञानियों के द्वारा इस अवस्था को 'समूह की आयु'(ळंदह ंहम) कहा गया है क्योंकि इसमें लड़के-लड़कियाँ अपना-अपना समूह या वर्ग बनाते है और उसके सदस्य होते है। 'हालिंगवर्थ' नामक मनोविज्ञानी ने इसे 'डवतवद भ्नतकसम' क्षीण बौद्धिक बाधा की अवस्था कहा है जिसमें आगामी वयस्क जीवन को प्राप्त करने के लिए सफल प्रयास किये जाते हैं क्योंकि बाल्यावस्था में 'हालिंगवर्थ' के अनुसार भावावेश और आगम दृष्टि का अभाव पाया जाता है। ''पुनः 'हरलॉक' के शब्दों को संदर्भित करते हुए कहा जा सकता है'' वह अपनी नाक से आगे नही देख सकता, और वह क्षणिक भावावेश में परिणाम की परवाह न करके काम करता है।''

इससे स्पष्ट होता है कि बाल्यावस्था 6 वर्ष से लेकर 42 वर्ष तक की आयु के बीच का समय होता है तथा इसमें बालक क्रियाशील रहता है, समूह में काम करता है और भावावेशी भी होता है, परन्तु वयस्क जीवन में प्रवेश के लिए सफल प्रयास करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. बाल्यावस्था से आप क्या समझते है?
2. किस मनोवैज्ञानिक ने बाल्यावस्था को 'Moron Hurdle' की अवस्था कहा है ?

4.3.2 द्वंद की संकल्पना

द्वंद शब्द का प्रयोग हम अपनी दिन -प्रतिदिन की जिन्दगी में कई रूपों में करते रहते है किन्हीं दो या दो से अधिक मतालम्बियों, संस्कृतियों, धर्मों तथा संगठनों से हमें प्रायः विभिन्न प्रकार के वैचारिक और सामाजिक संघर्ष द्वंद देखने में मिल सकते है। द्वंद का सामान्य अर्थ है-''विपरीत विचारों, इच्छाओं, उद्देश्यों आदि का विरोध।'' द्वंद की दशा में व्यक्ति में संवेगात्मक तनाव उत्पन्न हो जाता है, उसक मानसिक शांति नष्ट हो जाती है और वह किसी प्रकार का निर्णय करने में असमर्थ होता है।

द्वंद के अनेक रूप हो सकते है, जैसे- एक व्यक्ति का दूसरे से द्वंद ,व्यक्ति का उसके वातावरण से द्वंद, पारिवारिक द्वंद, सांस्कृतिक द्वंद आदि। इन सबसे अधिक गंभीर है-आंतरिक द्वंद। यह द्वंद व्यक्ति के विचारो, संवेगों, इच्छाओं, भावनाओं, दृष्टिकोणों आदि में होता है।

द्वंद का मुख्य आधार-उचित और अनुचित का विचार होता है। उदाहरणार्थ, बालक जानता है कि उसके पिताजी का बटुआ आलमारी में रखा रहता है। वह उसके बारे में सोचने लगता है। वह उसमें से कुछ धन निकाल लेना चाहता है पर वह यह समझता है कि चोरी करना अनुचित कार्य है और यदि उसकी चोरी का पता लग जाएगा तो उसको दण्ड मिलेगा। वह इन विरोधी बातों पर विचार करता हैं फलस्वरूप, उसमें मानसिक द्वंद आरम्भ हो जात है। वह इसका अंत केवल उत्तम और उचित कार्य को करने का निर्णय करके ही कर सकता है।

डगलस एवं हॉलैंड के अनुसार ''द्वंद का अर्थ है- विरोध और विपरीत इच्छाओं में तनाव के परिणामरूवरूप उत्पन्न होन वाली कष्टदायक संवेगात्मक दशा''

क्रो एवं क्रो के शब्दों में, ''द्वंद उस समय होत हैं जब एक व्यक्ति को अपने वातावरण में ऐसी शक्तियों का सामना करना पड़ता है, जो उसके स्वयं के हितों और इच्छाओं के विरूद्ध कार्य करती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि द्वंद एक ऐसी कष्टदायक संवेदात्मक दशा है जिसमें व्यक्ति को ऐसी परिस्थितयों का सामना करना पड़ता है जो उसके स्वयं के हितों और इच्छाओं के विरूद्ध होती है।

4.3.2.1 द्वंदों के प्रकार

द्वंद दो प्रकार के होते हैः-कार्यात्मक तथा दुष्क्रियात्मक। कार्यात्मक द्वंद तब उत्पन्न होत है जब द्वंद कार्यशील समूह, विभाग, संगठन या समुदाय का समर्थन करते हैं जबकि दूसरी तरफ दुष्क्रियात्मक द्वंद झगड़ों, असहमतियों आदि के रूप में उत्पन्न होते है जो समूह के निष्पादन को रोक देते है। निम्नांकित चित्र द्वंदों के प्रकारों का वर्गीकरण प्रस्तुत करता है-

द्वंद के प्रकार

	कार्यात्मक द्वंद	**दुष्क्रियात्मक द्वंद**
1.	सामाजिक द्वंद	1. संवेगात्मक द्वंद
2.	आर्थिक द्वंद	2. मूल्य संबंधी द्वंद
3.	क्षेत्रीय द्वंद	3. रूचि संबंधी द्वंद
4.	अंतर्सामाजिक द्वंद	4. कार्यस्थल द्वंद
5.	अन्तरा सामाजिक द्वंद	5. संगठनात्मक द्वंद
6.	आंतरिक/राज्य स्तरीय द्वंद	6. सामूहिक द्वंद
7.	सैनिक द्वंद	7. आंकड़ें संबंधी द्वंद
8.	भूमण्डलीय द्वंद	

3. द्वंद का सामान्य अर्थ अपने शब्दों में लिखिए?

4.3.3 बाल्यावस्था में द्वंद

यह वह अवस्था होती है जब नन्हीं कली प्रस्फुटित होकर खिलने के लिए तैयार होती है। बालक पारिवारिक वातावरण के साथ-साथ नये विद्यालयी वातावरण को स्वीकार करने के लिए तैयार होते है। परन्तु खेद का विषय है कि हमारा आज का विद्यालयी वातावरण शांति के स्थान पर द्वंदों को बढ़ावा देने वाला हो गया है। बच्चों में सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में अत्यधिक विविधता होन के कारण विद्यालयी वातावरण में द्वंदों की उपस्थिति पायी जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य मुद्दे जैसे- लड़के-लड़कियों का संबंध, पारिवारिक तनाव, अभिभावकों का ध्यान न देना, हिंसात्मक प्रवृत्ति आदि भी बाल्यावस्था में द्वंदो को बढ़ावा देती है।

जिस प्रकार ''अब्राहम मासलो'' (4960) ने मनुष्य की पॉच मूलभूत आवश्यकताएॅ बतायी है उसी प्रकार ''ई0 वालेट'' (4974) ने मासलो के मॉडल का अनुसरण करते हुए बालकों की पॉच आवश्यकताओं को पहचानने का प्रयास किया। जिनका अभाव मुख्य रूप से बालकों में द्वंद को उत्पन्न करता है।

1. मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ- उदाहरणार्थ, भोजन, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य।
2. प्यार और अवधान- उदाहरणार्थ, प्रोत्साहन, प्रतिनिधित्वता, शारीरिक छुअन और गर्माहट, समर्थन।
3. सृजनात्मक अभिव्यक्ति- उदाहरणार्थ, संवेदना, खुशी की क्षमता का विकास, सृजनात्मक आत्माभिव्यक्ति, खुशी, आत्माभिव्यक्ति के नये उपायों को खोजना।
4. संज्ञानात्मक कुशलताओं की उपलब्धि- उदाहरणार्थ, जानने के लिए सीखना।
5. सामाजिक कुशलता- उदाहरणार्थ, साथी-समूह द्वारा स्वीकृति अन्य लोगों के साथ अंतर्क्रिया तथा अन्यों से संबंधित रहने की आवश्यकता।

4.4 बाल्यावस्था में द्वंद के स्त्रोत

द्वंद के स्त्रोतों को समझना एक कठिन विषय है। द्वंदों की गतिकी को समझने के लिए विविध परिप्रेक्ष्य प्रयोग किए जा सकते है।किसी विशेषता के प्रति पक्षपात जोकि दूसरों पर दोषारोपण करके किया जाता है। जब व्यक्ति समझते है कि किसी वस्तु की आवश्यकता और मूल्य सबके लिए है परन्तु उसका समान वितरण नहीं हो सका। द्वंद का अन्य संदर्भ है कि द्वंद किसी परिस्थिति के उत्पाद के रूप में है जिसमें अलग-अलग आवश्यकताएँ परेशानियॉ उत्पन्न करती है। सबसे महत्वपूर्ण आंतरिक चिंतायें हैं जो दबाव

का निर्माण करती है और द्वंद उत्पन्न करती हैं। फिर भी, उपयुक्त परिप्रेक्ष्यों के साथ बाल्यावस्था में निम्नलिखित विन्यासों के कारण द्वंद उत्पन्न होता है-

i. **पारिवारिक विन्यास** –पारिवारिक व्यवस्था में असंतुलन बाल्यावस्था के द्वंद का सबसे बड़ा स्त्रोत होता है।परिवार की अपनी प्रकृति, अर्न्तक्रिया शैली तथा मान्यताएँ, स्वास्थ्य, स्व-संकल्पना, अस्तित्व, अभिवृत्ति, विश्वास तथा पूर्वाग्रह में अंतर उत्पन्न करते है जो एक बालक को शांति उन्मुख या आक्रामक अथवा हिंसात्मक बनाते हैं। सुरक्षा, गर्माहट, प्यार तथा देखभाल की भावना जो बालक को परिवार में उपलब्ध होती है, यही पूर्व शांति अभिवृत्तियाँ तथा मूल्य का निर्माण करती है जबकि आक्रामकता, शत्रुता तथा उपेक्षा हिंसा की ओर ले जाती है। जो बच्चे माता-पिता की अपेक्षाओं के अनुसार अंक या ग्रेड नही प्राप्त कर पाते, उन्हें योग्यहीन सिद्ध किया जाता है। एक ही परिवार में भाई-बहन अलग-अलग वातावरण अनुभव करते है जो उनको मिलने वाली सफलता/असफलता पर निर्भर करता हैं। इसके अतिरिक्त परिवार में होने वाले लिंगीय भेदभाव एवं पक्षपात, असफल होने पर तिरस्कार, उपेक्षा, सफल भाई-बहनों से तुलना द्वंद की स्थिति उत्पन्न कर देते है।

परिवार की संरचना- परिवार की सामाजिक संरचना भी द्वंद का स्त्रोत बन जाती है । उदाहरणार्थ , परिवार में पैसे खर्च करने का निर्णय सामान्यतः घर के मुखिया या माता-पिता का होता है जो आज के समय द्वंद का एक प्रमुख स्त्रोत बन गया हैं क्योंकि रूचियों में अंतर होने के कारण घर के छोटे अपनी इच्छा से खर्च करना चाहते हैं।

संसाधन संबंधी- इस तरह के द्वंद को समझना सरल है क्योंकि ये असानी से पहचाने जा सकते है। उदाहरणार्थ, यदि किसी पारिवार में दो भाई-बहन है और पिताजी द्वारा नया लंच बाक्स लाया जाता है तो वे दोनों उसे प्राप्त करने लिए लड़ते है और वह संसाधन द्वंद का कारण बन जाता है।

ii. **विद्यालयी विन्यास -** बाल्यावस्था में ही बालक विद्यालय जाना प्रारंभ करता है। विद्यालय के विभिन्न संसाधन- मानव तथा भौतिक संसाधनों की अनुपलब्धता तथा वहॉ का वातावरण भी कभी-कभी बाल्यावस्था में द्वंद के स्त्रोत बन जाते हैं।

सूचना अथवा ज्ञान- हो सकता है कि आपको लगे कि सूचना या ज्ञान द्वंद का कारण कैसे बन सकता है? परन्तु यह भी द्वंद का एक स्त्रोत हैं हालांकि सूचना या ज्ञान का आदान-प्रदान अच्छा माना जात है परन्तु उस सूचना को कुछ ही लोगों के बीच रखना, अन्य के लिए द्वंद का कारण बन जाता है। उदाहरणार्थ, कक्षा में तीन मित्र है -सुमन, रेखा और वैशाली। सुमन ने एक पुस्तक खरीदी और रेखा का बता दिया परन्तु वैशाली को नहीं क्योंकि वैशाली को सुमन अपना प्रतिस्पर्द्धी मानती है जो उन विद्यार्थियों में द्वंद का कारण बन सकता है।

दैहिक दण्ड- बाल्यावस्था में विद्यालयों में द्वंद का सबसे बड़ा स्त्रोत दैहिक दण्ड है।बिजनेस स्टैन्डर्ड द्वारा किए गए सर्वे के अनुसार भारत के प्रत्येक तीन बच्चों में से एक बच्चा अपनी विद्यालयी सुरक्षा से चिन्तित रहता है। अवसंरचना तथा सौचालयों के अभाव के अतिरिक्त सर्वे में सम्मिलित बच्चों ने दैहिक दण्ड, अपमानजनक शब्दों का प्रयोग तथा धौंस दिखाने को भी

अपने चिंतित विषयों में लिखा है। अनुशासन बहुत महत्वपूर्ण है परन्तु यदि अनुशासन के नाम पर बच्चों को तिरस्कृत किया जाय तथा शारीरिक रूप से पीटा जाए तो यह आघात प्रौढ़ावस्था तक चलता है। इस तरह की हिंसा केवल शारीरिक ही नहीं होती बल्कि मौखिक तथा ढँचागत हिंसा होती है जोकि लिंग, जाति तथा क्षेत्रीय मतभेद के रूप में भी दृष्टिगोचर होती है।

iii. **सामाजिक विन्यास -** समाज का संगठनात्मक विन्यास भी द्वंद का स्त्रोत होता है। इस प्रकार के द्वंद की कल्पना करना भी कठिन है जोकि उन संबंधों में, विशेषरूप से अत्यधिक नजदीकी रिश्तों में पाया जाता है जिसे भावात्मक तथा सामाजिक समर्थन को स्त्रोत माना जाता है। बाल्यावस्था में बालक सामाजिक रूप से पूर्ण क्रियाशील नहीं होता परन्तु उसका सामाजिक समूह बन जाता है अतः यह द्वंद भाई-बहनों के साथ, माता-पिता के साथ, साथी-समूह तथा मित्रों के मध्य भी पाया जाता है।

iv. **सामुदायिक विन्यास -**द्वंद होना अपरिहार्य है क्योंकि हम सभी अपने पर्यावरण को तथा अन्य वस्तुओं को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखते है। हमारी अभिवृत्तियाँ हमारे परिवार, साथी-समूह, पड़ोसी, समाज तथा हमारे चारो ओर के संसार के प्रति अवश्यक रूप से एक-दूसरे से अलग होती है।उदाहरणार्थ, हम में से कुछ आतंकवाद, पर्यावरणीय असंतुलन, सामाजिक अपराधों से इस हद तक प्रभावी हो जाते हैं कि वो जुलूस निकालते है, रैलियॉ करते है तथा अन्य ऐसी प्रकार की क्रियाओं में लग जाते हैं परन्तु कुछ ऐसे भी होते है जो इन सब कार्यों में भाग नहीं लेते परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे इन सब मुद्दों के बारे में नहीं सोचते।

इसी प्रकार किसी समुदाय में रहने वाले विविध, धर्म, जाति, वर्ग तथा भाषा के लोग काम करते हैं वहाँ निर्णय लेने का अधिकार केन्द्र मे होता है जिससे द्वंद उत्पन्न हो जाता हैं।

4.5 व्यक्ति अध्ययन

केस अध्ययन एक या व्यक्ति अध्ययन एक ऐसी विधि है जिसमें किसी सामाजिक इकाई के जीवन की घटनाओं का अन्वेषण एवं विश्लेषण किया जाता है। सामाजिक इकाई के रूप में किसी एक व्यक्ति, एक परिवार, एक संस्था, एक समुदाय, घटना, नीति, संगठन आदि को लिया जा सकता है।

पी0 वी0 यंग(4974) के अनुसार ‘‘केस अध्ययन एक ऐसी विधि है जिसके द्वार सामाजिक इकाई के जीवनी का अन्वेषण तथा विश्लेषण किया जा सकता है।‘‘

गुंडे तथा हाट (4987) ने भी केस अध्ययन विधि के बारे में बतलाते हुए कहा है कि यह एक ऐसी विधि है जिसके सहारे किसी भी सामाजिक इकाई जो एक व्यक्ति भी हो सकता है या कोई अन्य सामाजिक समूह भी हो सकता है, के एकात्मक स्वरूप को बरकरार रखते हुए उसका अध्ययन किया जाता है।

बिंसाज और बिसांज के अनुसार ‘‘व्यक्ति अध्ययन एक प्रकार का गुणात्मक विश्लेषण है जिसमें किसी व्यक्ति, स्थिति, या संस्था का सावधानीपूर्ण किया गया अवलोकन शामिल होता है’’

इस प्रकार स्पष्ट है कि केस अध्ययन विधि किसी भी इकाई के बारे में गहराई से किया गया गुणात्मक अध्ययन है।

अभ्यास प्रश्न

4. व्यक्ति अध्ययन को अपने शब्दों में परिभाषित करें?

4.5.1 उन क्षेत्रों का केस अध्ययन जिसमें विभिन्न प्रकार के द्वंदों ने विस्थापन, हिंसा अथवा सामाजिक अशांति को प्रेरित किया

काम करने की जगहों पर निश्चित कार्यसूची युद्ध, घरों में लिंग भेद युद्ध, विद्यालयों में पक्षपातयुक्त व्यवहार, समानता तथा न्याय की अवहेलना, सर्वजनिक जगहों पर दुष्प्रचार युद्ध आदि ने अनजाने में ही बच्चों को द्वंद के जाल में फसा दिया है। किसी भी राष्ट्र का सबसे बड़ा और बुरा अपकार है, उसके बच्चों के मस्तिष्क को हिंसा से प्रदूषित करना।

आइए, हम उन क्षेत्रों का केस अध्ययन करते हैं जिसमें द्वंद ने बच्चों को विस्थापन, हिंसा अथवा सामाजिक अशांति की ओर प्रेरित किया है-

4.5.4.1 विद्यालयी वातावरण

आज हम स्थानीय, राष्ट्रीय और भूमंडलीय स्तर पर अभूतपूर्व हिंसा के याुग में जी रहे है। यह एक गंभीर बिंदु है कि विद्यालय, जिन्हें शाति की पौधशाला बनना था, ऐसे द्वंदों को बढ़ावा देने वाले केन्द्र बन गए है जो हमारे बालकों को हिंसात्मक तथा आक्रामक व्यवहार की ओर ले जा रहे है। हाल ही की एक घटना में दिल्ली के एक जाने-माने कॉलेज का एक पुराना विद्यार्थी पटना में अपहरण-गिरोह चलाता हुआ पकड़ा गया। अपने अनुभवों के आधार पर विद्यालयी परिवर्तन व्यवस्था में आए बदलावों पर एक शहरी अध्यापक क्या कहते हैं देखिए:''हिंसा में अप्रत्याशित उछाल आया है। बच्चे जिन शब्दों का उपयोग करते है, वे हिंसक है । उनके खेल और उनकी रूचियाँ हिंसक हैं अनके रिश्ते हिंसक हैं लेकिन मैं उन्हें दोष नहीं देता। उनके घर ही हिंसा को बढ़ावा देते है।

एक अध्ययन देखते है कि एक 44 वर्षीय बालिका रश्मि (परिवर्तित नाम) जो एक निजी विद्यालय की विद्यार्थी है , के बारे में बाल अधिकारों के संरक्षण के लिए बने कमीशन के समाचार पत्र में रिपोर्ट किया गया। उसने बताया कि उस्तरे के सामने तेज धार वाली शिक्षकों की जुबान को उसे इस सामा तक प्रभावित कर दिया गया कि वह आत्महत्या करने के बारे में सोचने लगा। जब एक बार शिक्षक ने एक विद्यार्थी को यह कहते हुए फटकार लगायी कि वह (रश्मि) ''किसी में भी अच्छी नहीं है'' अथवा उसे एक ''विशिष्ट

विद्यालय'' में भेज देना चहिए अथवा ''शिक्षकों को उसके मुख से एलर्जी है।'' ऐसे वाक्यों ने उसे बहुत समय तक डराकर रखा। जिससे वह आन्तरिक द्वंद में फॅसी रही।

शांति के लिए शिक्षा, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधारपत्र, NCERT

अब सुनिये दक्षिण भारतीय स्कूल की एक सफाईकर्मी की मनोव्यथा- विद्यार्थियों को हिंसा से खतरा हैं शांति के लिए शिक्षा राष्ट्रीय फोकस समूह द्वारा आयेजित एक सर्वे के संदर्भ में शंाति शिक्षा के लिए शिक्षा को लेकर बने फोकस ग्रुप के एक सदस्य ने उनका साक्षात्कार लिया था।

मैं 40 साल की थी जब 4945 के सत्याग्रह आंदोलन में मेरे पिता की मौत हो गई। महात्माजी हमें देखने आए। ये देखे, ये मेरा खजाना(वह एक चरखा और एक सफेद टोपी की ओर इशारा करते है)। उन्होंने मुझे यह दिया और कहा, ''रोओ मत, तुम्हारे पिता एक हीरो थे, आओ और वानरसेना में शामिल हो जाओ।''मेरा बड़ा भाई भी इंदिरा गाँधी के साथ आंदोलन में शामिल था। हम लोग आज के समय के हिसाब से निरक्षर थे, क्योंकि हम कभी विद्यालय नहीं गए थे। लेकिन अब मैं मानती हूँ कि हम लोग शिक्षित थे। हमें पढ़ाने वाले राष्ट्र के महान नेता थे। मेरा पोता, यह छोटा-सा बच्चा, अभी सिर्फ 43 साल का है । 40 साल पहले जब इसकी माँ मर गई, तब से मैं इसकी देखरेख कर रही हूँ। एक दिन इसने सीना ठोककर सच बोला, जिसके एवज में इसे बंुरी पिटाई मिली और इसकी पसलियाँ टूटीं। इस दिन से पहले यह अच्छा, दयालु, सच्चा ओर संयमी बालक था। यह बदलाव तब हुआ जब एक दिन विद्यालय निरीक्षक ने बच्चों से विद्यालय, अध्यापकों और सुविधाओं के बारे में पूछा। उसने निर्भीकता दिखाते हुए सब सच-सच कह दिया। उसने निरीक्षक को बताया कि एक लड़के को विज्ञान की परीक्षा में इसलिए नकल करने दी गई कि वह हेडमास्टर का भतीजा था। निरीक्षक ने हेडमास्टर के खिलाफ करावाई की और हेडमास्टर ने बालक की पिटाई की। उसने कुछ गुंडों से उसकी जमकर पिटाई करवाई। मैं पुलिस के पास गई, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। आज यह बालक पूरी तरह से बदल गया है। अब वह दूसरों को डरा धमकाकर अपना काम निकालता है। वह दूसरे स्कूल में चला गया है। अपनी कद-काठी और ताकत के चलते वह दूसरे विद्यालय में हीरो बन बैठा है। मैं नही मानती इस बालक ने घर से हिंसा सीखी है। मैंने अपना पूरा जवीन गाँधीवादी सत्य और अंहिसा को आधार बनाकर गुजारा हैं क्या मैं उस समय चैन से दम तोड़ सकूँगी, जब मेरा ही खून हिंसा में लगा हुआ हो। कृपा कर स्कूल से मिलने वाली इस गलत सीख को बदलने के लिए कुछ करो। उससे शांति की बात करना प्र्याप्त नहीं है हमें उन्हें शांति के लिए प्रशिक्षित करने की आवश्यकता हैं। गाँधी ने हमें शांतिमार्ग के लिए सत्य और अहिंसा में प्रशिक्षित किया था। तुम मुझसे कहते हो कि वह सब दिल्ली में किया जाता है-उनसे कहो- कम-से-कम अब तो जागो। उन्हें गाँधी का आशीर्वाद प्राप्त है। आगे बढ़ों और बच्चों को शांति का पाठ पढ़ाओ। अपने पोते के के बारे में मुझे कभी -कभार भयानक विचार आते है। क्या वह आतंकवादी बनेगा या गुंडा? जब उसका अहिंसा में विश्वास ही नहीं है, तो मैं उसे कैसे यह विरासत (चरखा और टोपी) दूँगी?

तुलसीअम्माः तामिलनाडु के एक विद्यालय में 70 वर्षीय एक सफाई कर्मी

शांति के लिए शिक्षा, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र,NCERT

ऐसी दुश्चिंता की शिकार अकेली तुलसी अम्मा ही नहीं हैं। शहरी भारत में उनके जैसे अनगिनत लोग हैं इनमें से हर कोई शारीरिक हिंसा से ही चिंतित नहीं हैं कईयों की चिंता शब्दहीन भावात्मक हिंसा का लेकर हैं वे सभी इस बात से परेशान नही है कि उनके बच्चे आतंकवादी हो सकते है लेकिन यह सोचकर जरूर परेशान है कि कभी उनका अपने बच्चों के साथ आत्मा को तृप्ति देने वाला हार्दिक रिश्ता बन पाएगा।

घर का वातावरण

घर का वातावरण ही बालकों को शांति उन्मुख अथवा हिंसा उन्मुख बनाता है। जो बच्चे ऐसे पारिवारिक वातावरण में बढ़ते है जहॉ महिलाओं पर घरेलू हिंसा एक आम बात है वे बडे होकर इस बात के लिए तैयार रहते हैं कि महिलाओं पर हिंसा करना कोई गलत बात नही। इसके विपरीत वो बच्चे जो ऐसे पारिवारिक वातावरण में बढ़ते हैं जहाँ महिलाओं का सम्मान होता है तो उनकी महिलाओं के प्रति अभिवृत्ति दूसरे प्रकार की होती है।

आज घर के सदस्यों में आत्मा को तृप्ति देने वाले हार्दिक रिश्तों का अभाव है । बढ़ता भावात्मक अलगाव, जिसके परिणामस्वरूप धरों में आपसी लगाव का क्षरण हो रहा है और संवाद मृतप्राय होता जा रहा है,यह सब ही उनकी मौन पीड़ा के मूल में है। ऐसा लगता है कि यह चीज महामारी के पैमाने पर फैलने वाली है। अलगाव हिंसा का बीज है। इस तरह की शिक्षा बच्चों को ऐसे दिमागी संयत्रों में बदल देती है जो तथ्यों पर अपना अधिकार जमाते हैं और फिर स्वंय उनके द्वारा वशीभूत हो जाते हैं, लेकिन यह उनके भावात्मक और संबंधात्मक कौशलों को विकासित नहीं कर पाता। परिणामतः एक व्यक्ति जितना ही उपलब्धियों के पीछे दौड़ता है, उतना ही अपने प्रिय लोगों तक के साथ संवेदनशील, अन्योन्य और उत्तरदायित्वपूर्ण तरीके से जुड़ पाने में अक्षम भी हो जाता है।अधूरी समाज-कल्पना के निशान ढ़ोता असंतुलित विकास बच्चों को हिंसा के प्रति सुभेद्य बनाता है। शांति के लिए शिक्षा, राष्ट्रीय फोकस समूह द्वारा आयेजित सर्वे में पाया गया कि हमारे दायरे मे आने वाले 48ः बच्चे ऐसे है जिनहें हिंसा से जुड़ी विभिन्न गतिविधियों में आनंद आता हैं। पिल्लों और बिल्ली के बच्चों को पत्थर मारना, फूलों की कलियों को तोड़ना, उंगलियो के बीच तितलियाँ पकड़कर रखना उन्हें अच्छा लगता है। कुछ बड़ें बच्चों को छेड़खानी और जानलेवा होने की हद तक उत्पीड़न करना आनंददायी लगता है।

अभी हाल ही में विभिन्न सामाजिक साइटों में दिख रहा वीडियो जिसमें कुत्ते के बच्चे को बेदर्दी से उपर से नीचे फेंकना अथवा इंजीनियरिंग के छात्रों द्वारा बंदर को करेंट देकर मार देना हिंसात्मक प्रवृत्तियों के ही उदाहरण है।

प्रत्येक वर्ष जब लाखों बच्चे स्कूलों में प्रवेश लेते है,राष्ट्र का भविष्य अवैयक्तिक दुःस्वप्न का प्रदर्शन करता हैं तीन साल की उम्र में मोमी रंग, धाक या पंसिल पकड़ना अपने आप में एक महत्वपूर्ण कदम है।

चौथे जन्मदिन तक छोटे बच्चे से अपेक्षा की जाती है कि वह जाने: 30, 25 से अधिक होता है कक्षा में दूसरे स्थान पर आना 25वें स्थान पर आने से अधिक प्रशं्सनीय होता है। पाँचवे जन्मदिन से पहले, उससे सिर्फ 500 तक गिनने की ही नहीं, बल्कि लिखने को भी उम्मीद की जाती है। उसके वर्दी पहनने और उसके जूते के पहले जोड़े पहनने तक यह संख्या 4000 तक पहुँच जाती है। क्या तुम जो सबसे अच्छा कर सकते हो वह यही है? इसी तरह के प्रश्न उसे संपूर्ण विद्यालयी दिनों में सताते है। अधिकतर बच्चे जब दस या बारह साल के होते हैं, अपना प्राकृतिक आशावाद और खुशी खो देते हैं। उनमें से कई तो भय, तनाव तथा द्वंद की स्थिति में हेते हैं, वयस्क जिसे बगावत या जिद्दीपन मानते हैं। **शांति के लिए शिक्षा, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधारपत्र, NCERT**

अभ्यास प्रश्न

5. बाल्यावस्था की कुछ हिंसात्मक गतिविधियॉ लिखें?

अंतर्द्वंद और कुण्ठायें

द्वंदो के विभिन्न प्रकारों में सबसे गंभीर है अंतर्द्वंद जो बच्चों को इस सीमा तक प्रभावित करता है कि वे न तो स्वंय प्रसन्न रहते है, न ही दूसरों को प्यार करते हैं। विभिन्न प्रकार की क्रूरता हर जगह और बढ़ते स्तर पर देखी जा सकती है। जैसे, गंुडागर्दी की हद तक चिढ़ाना, चुगलखोरी, अशालीनता, अभद्र भाषा का प्रयोग और चोरी। रानी सरीखी त्रासदियाँ इस बात के लिए तर्क करती हैं कि हम बच्चों के नैतिक विकास की अनदेखी कर रहे हैं।

दस वर्षीय रानी (परिवर्तित नाम) एक प्रतिष्ठित अंग्रेजी माध्यम विद्यालय में पढ़ती थी। अचानक उसमें परिवर्तन आना शुरू हो गया। उसने बद्तमीजियाँ शुरू कर दी। वह अपने सहपाठियों की कलमें चुराती और टिफिनबॉक्स तोड़ देती। शिक्षिका ने इस पर उसे जमकर डाँट लगाई। रानी घर लौटी। उसने अपने ऊपर केरासिन छिड़ककर आग लगा ली। उसे 50 फिसदी जलने के साथ अस्पताल में भर्ती कराया गया। कुछ दिनों तक वह मौत से जुझती रही आखिरकार उसने दम तोड़ दिया। उसके स्तब्ध माता-पिता बोले, ‘‘हम कहाँ गलत थे।‘‘ रानी ने हम में वैयक्तिक और सामूहिक अपराध की भावना को जागृत किया। हम जानते हैं, हमने व्यवस्थाओं की ऐसी कड़ी तैयार की थी जिसमें बच्चों की मासूमियत की अनदेखी हो रही है। क्या रानी हिंसक माहौल में बड़ी हो रही थी? उसमें आक्रामकता के शुरूआती संकेतों को स्कूल को कुछ अलग दृष्टिकोण से नहीं देखना चाहिए था?

शांति के लिए शिक्षा, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधारपत्र, छब्म्त्ज्

4.5.2 कुछ अन्य क्षेत्रों का अध्ययन जो बालकों को विस्थापन, हिंसा तथा सामाजिक द्वंद की ओर ले जाते हैं-

पाठ्य-पुस्तक लेखन -पाठ्यपुस्तक लिखते समय सावधानी बरतना जरूरी है, जिसमें शब्द शैली और चित्रों में हिंसा से बचा जा सकता है। कई बार प्रभाव डालने के उद्देश्य से दिए गए उदाहरण और चित्र हिंसापूर्ण और अति नाटकीयता वाले पक्ष को मजबूत करते हैं। हिंसा के अस्पष्ट रूप पाठ्यपुस्तक लेखन में आम हैं वे पूर्वाग्रहों और भेदभावों की रूढ़ता को थोपते प्रतीत होते हैं।

मध्य प्रदेश में सरकारी स्कूलों की कक्षा 4,5 और 6 की पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण किया गया। उनमें एक भी चरित्र ऐसा नहीं था जो अनुसूचित जाति की पृष्ठभूमि का हो। हालांकि इन स्कूलों में आनेवाले विद्यार्थियों का एक बड़ा हिस्सा अनुसुचित जाति और अनुसूचित जनजाति से हैं। इस तरह का निष्कासन भी एक प्रकार का हिंसा है जो हीनता के भाव को जन्म देती है।
उत्तरप्रदेश की कक्षा तीन की हिन्दी की पाठ्य-पुस्तक (ज्ञान भारती) में 49 चित्र पुरूषों के है।इनमें वैज्ञानिक, सिपाही, दो डॉक्टर, एक अध्यापक, एक राजा और कवि शामिल हैं वही इसके विपरीत सिर्फ 44 महिलाओं या लड़कियों को स्थान दिया गया हैं। लगभग सभी को सहयोगी भूमिकाओं या मानक ''औरत'' की भूमिका में पेश किया गया है। यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के निर्देशों के खिलाफ है जिसमें स्कूली पठ्यचर्या में ''लिंग रूढ़ता'' से बचने केी बात कही गई है।

प्रोब (पी0 आर0 ओ0 बी ई0) रिपोर्ट

पाठ्यपुस्तक लेख में शांति बोध को समाहित कर इन अनियमितताओं के दूर किया जा सकता हैं। सूचना प्रदान करने के एकमात्र उद्देश्य के साथ पाठ्यपुस्तक लेखन एकदम नीरस होता है और विद्यार्थियों में रूचि जगाने में भी असफल इस प्रक्रिया में शान्ति मूल्यों को बढ़ाने और शांति संबंधी अंतर्दृष्टि को गहरा करने के बेशकीमती मौके खो जाते है।

मूल्यांकन एवं परीक्षा - शांति के लिए शिक्षा के अंतर्गत मूल्यांकन हमारे सामने दो मुख्य आयामों के रूप में आता है। पहला, पाठ्यक्रम के बोझ से दबी मौजूदा परीक्षा एंव मूल्यांकन प्रणाली हिंसा से दूषित है। सीखना जो कि मनोरंजक अनुभव होना चहिए, इसे बोझ और यहॉ तक कि दमन में परिवर्तित कर दिया गया है। इसका कारण है इसका लक्ष्य, जोकि परीक्षा आधारित श्रेष्ठता है जिसकी अपेक्षा रोजगार के दौरान की जाती है।सख्त प्रतियोगिता - तब और भी कड़ी हो जाती है जब उच्च शिक्षा के लिए पर्याप्त अवसरों की अनदेखी की जाती है- ऊपर से वह कलंक जो असफलता के कारण लगता है जिसके कारण लाखों बच्चे दुख के सागर में डूब जाते हैं और कई तो आत्महत्या तक कर लेते है।

मीडिया - आज मीडिया की व्यापक मौजूदगी है और इसके विस्तार को किसी भी तरह कम विकास की बाधाओं से सीमित नहीं किया जा सकता है। ग्रामीण भारत में सुरक्षित पेयजल की अपेक्षा बच्चों को टेलीविजन आसानी से उपलब्ध है। हजारों गॉवों में शौचालयों की अपेक्षा टेलीविजन हैं। बच्चे अपना

अधिकतर समय टेलीविजन कार्यक्रम देखने में ही देते हैं शोधकर्ताओं ने अनुमान लगाय कि औसतन बच्चा साल में लगभग 2400 से अधिक घंटे टेलीविजन देखता है। इस प्रक्रिया के दौरान बच्चा हजारों बार हिंसा के विभिन्न प्रकरणों जैसे हत्या, दुष्कर्म और दंगों से गुजरता हैं। मीडिया अनजाने में ही हिंसा की संस्कृति को बढ़ावा देने में मुख्य भूमिका निभा रहा हैं। टेलीविजन पर हिंसा को आकर्षक, प्रभावी और अधिकतर संघर्षों के हल के रूप में दिखाया जाता हैं। मीडिया हिंसा के परिणामों को छिपाकर रखता है। स्क्रीन पर हिंसा मनोरंजक है। जबकि असल जिंदगी में यह एक दुःस्वप्न है। बच्चों से इस सच्चाई को छिपाकर रखा जाता है जिसके चलते वे वास्तविकता के बारे में गलत विचारों को ग्रहण कर लेते है। वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि हिंसा ठीक है और सुरक्षित भी।

दूरदर्शन पर हिंसा देखने वाले दर्शकों में एक बड़ी संख्या बच्चों की है जो समानुभूति और विरोध करने की योग्यता खो देते है और हिंसा के वास्तविक जीवन कृत्यों से तनाव में रहते हैं।

अभी तक द्वंदों को हल करने के लिए हिंसा को प्रभावी और स्वीकृत तरीके के रूप में मीडिया द्वारा प्रदर्शित किया जाता रहा है । इसलिए अहिंसा वाले विकल्प बच्चों को आकर्षित नही करतें। फीचर फिल्मों में अधिकतर हिंसा को बढा-चढ़ा कर दिखाया जाता है। इसके परिणामस्वरूप बहुत सारे बच्चे हिंसक, क्रोधी और असमाजिक उपागमों का समस्याओं के समाधान के लिए पक्ष लेते हैं।

एक केस लेते हैं, सुनियेः किसी भी विद्यालय में एक शिक्षिका द्वारा दीवाली पाठ पढ़ाते समय यह पूछा गया कि आप सभी बच्चें दिवाली तथा ईद कैसे मनाते हैं ? तभी उस कक्षा में से एक विद्यार्थी ने पिछले दिन हुए बम-विस्फोट के बारे में बताया जोकि ठीक दीवाली से पहले किया गया था ताकि आतंकवादी किसी विशेष समुदाय के लोगों को मार सके। शिक्षिका नें छात्र से पूछा तुम्हें कैसे पता कि सभी लोग जो उस विशेष समुदाय से संबंध रखते है, आतंकवादी होते है। वह छात्र तथा कक्षा के सभी छात्र हॅसने लगे। तब उस छात्र ने कहा कि बस वो जातना है। बाद में उसनें यह भी कहा कि उसने यह टेलीविजन पर देखा है।

यदि उपर्युक्त केस को लिया जाय तो समझा जा सकता है कि टेलीविजन किस प्रकार से सामाजिक अशांति को उत्पन्न करने का कारण बन सकती हैं। वह छात्र उस विशेष समुदाय के सभी लोगों के बारे में एक पूर्वाग्रह बना लेगा और एक द्वंद की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी तब जब वह अपने आस-पास उस विशेष समुदाय के लोगों को देखेगा ा। जो न केवल उसे मानसिक अशांति तथा तनाव की स्थिति में ला देगा बल्कि बालक सामाजिक अशांति का कारक भी बन सकता है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि बालक जिस वातावरण में रहता है, उसकी सोच उसी प्रकार विकसित होती है तथा व्यवहार नियंत्रित होता है। अतः यह हमारी जिम्मेदारी है, एक शिक्षक के रूप में, माता-पिता के रूप में व समाज तथा समुदाय के क्रियाकारी सदस्य के रूप में हम बच्चों केा ऐसा पर्यावरण दें ताकि वे न केवल शांति के ग्रहणकर्त्ता बनें बल्कि शांति के सक्रिय निर्माणकर्त्ता के रूप में भी अपनी सहभागिता सुनिश्चित कर सके।

अभ्यास प्रश्न

6. मीडिया अनजाने में ही _____की संस्कृति को बढ़ावा देने में मुख्य भूमिका निभा रहा है।
7. मीडिया हिंसा के परिणामों को _____रखती है।

4.6 द्वंदों को समाप्त कर शांति निर्माण का उत्तरदायित्व के रूप में शिक्षक की भूमिका

शांति शिक्षा में शिक्षक की भूमिका एक शिक्षक के रूप में न होकर, एक सुविधाकर्ता के रूप में होती है। एक नियोक्ता के रूप में, शिक्षक लक्ष्य निर्धारित करता है तथा सर्वोपयुक्त अधिगम गतिविधियों का चुनाव करता है। एक अधिगम प्रारंभकर्ता के रूप में वह रूचि उत्पन्न करता है तथा गतिविधियों से परिचय कराता है। वह पाठ के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करता है। वह सम्पूर्ण अधिगत प्रक्रिया को दिषा निर्देषन, समर्थन तथा छूटे हुए बिन्दुओं को सामने लाकर लक्ष्यों की ओर ले जाने में उत्प्रेरक का कार्य करता है। वह समूहों अथवा विभिन्न व्यक्तियों के बीच मध्यस्थता करता है जब वे किसी समस्या में फंस जाते हैं। गतिविधि के अंत में शिक्षक उनके ज्ञान को चर्चा के द्वारा संगठित करता है। अंत में वह मूल्यांकन करता है कि लक्ष्यों को किस सीमा तक प्राप्त किया गया।

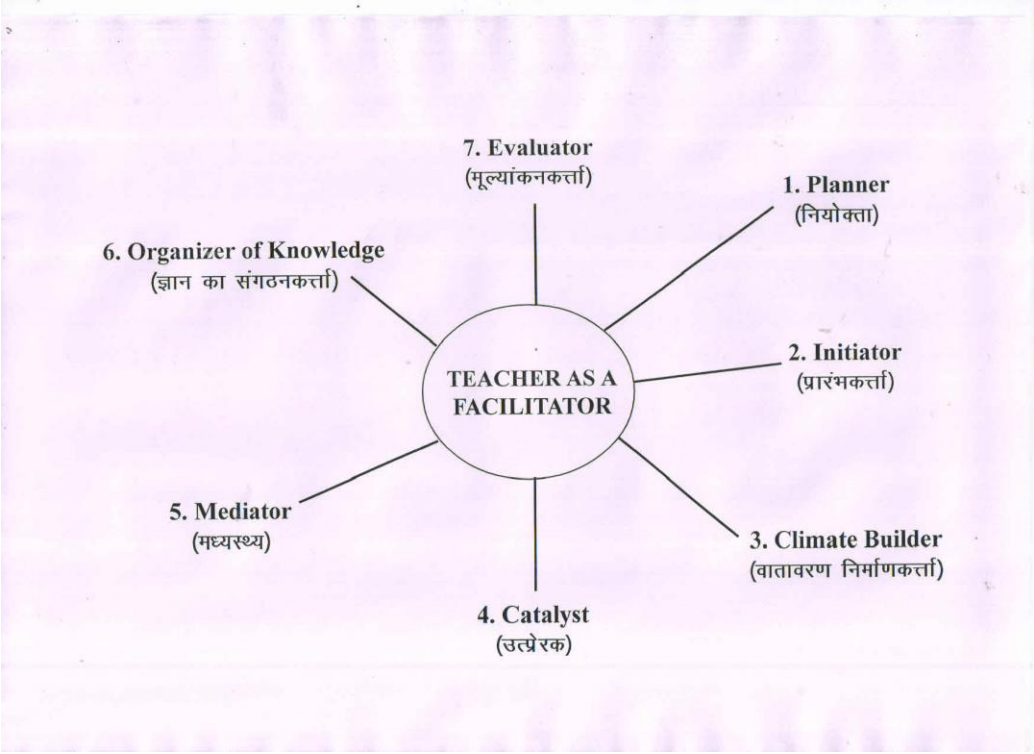

एक शांतिपूर्ण तथ जागरूक समाज के निर्माण का उत्तरदायितव शिक्षक के ऊपर होता है। शांति को बल द्वारा स्थापित नही किया जा सकता, इसे केवल सहयोग एवं सामजंस्य द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता हैं (वार्ड, 2004)। कहने का अर्थ यह है कि शांति कोई वस्तु नहीं है, जिसे बलपूर्वक हासिल किया जा सके। अगर सच्चे अर्थों में इसे प्राप्त करना है तो हमें व्यक्ति-व्यक्ति के बीच समझदारी को ओर अधिक विकसित करना होगा। इसके अलावा न तो यह वंशानुगत लक्षण है बल्कि इसको व्यवहार में सिखाया जाता हैं यूनिसेफ ने शांति शिक्षा को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है जो ज्ञान, कौशल, दृष्टिकोण, मूल्यों व व्यवहार में पविर्तन लाने के लिए आवश्यक तत्वों को प्रोत्साहित करती है जिससे बच्चे, किशोर व युवा इस योग्य हो सकें कि वह किसी भी प्रकार के मतभेदों व हिंसा को रोकने तथा ऐसी परिस्थितियों को उतपन्न करने में जो शांति स्थापना की ओर ले जा सके, सक्षम हो सके। इस प्रकार की शांति क उपयोगिता को बच्चों के संदर्भ में कनवेंशन ऑन दि राइट ऑफ चाइल्ड (1998) में यह कहा गया है- बच्चों की शिक्षा को इस प्रकार निर्देशित करना होगा कि वे स्वतंत्र समाज में जिम्मेदारीयुक्त जीवन जीने के लिए तैयार हो सके, जिसमें समझदारी, शांति, सहनशीलता, लैंगिक समानत की ओर सभी के बीच मित्रता निहित हो। शांति की संस्कृति की अवश्यकता को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र की सामान्य सभा में दशक 2004-2040 को विश्व के बच्चों के लिए शांति की संस्कृति व अहिंसा के लिए अंतराष्ट्रीय दशक के रूप में घोषित किया गया है।

विद्यालयी विन्यास

शांति स्थापित करने के प्रयास में हमें इसकी शुरूआत विद्यालयों से करना होगा। विद्यालयों में शांति का वातावरण स्थापित करना होगा। बच्चों को शांति से संबंधित गतिविधियों से जोड़ना होगा।। इसी संदर्भ में गाँधी जी ने कहा था ''यदि हमें विश्व में वास्तविक शांति का पाठ पढ़ाना है तो इसकी शुरूआत बच्चों से करनी होगी।''

शांति शिक्षक के रूप में हमारी भूमिका विद्यालयों में विद्यमान सामाजिक वातावरण को समझना तथा परिवर्तनकर्त्ता के रूप में मध्यस्थता करना है। हम सभी स्तरों पर विद्यार्थियों, शिक्षकों, अभिभावकों तथा स्टॉप कर्मचारियों तथा अफसरों के मध्य, जहॉ तक संभव हो, स्वस्थ्य अभिवृत्तियों तथा रिश्तों के विकास को सरल बना सकते है।

विद्यालयों में अधिकतर विभिन्न रिश्तों में द्वंद तथा तनाव हमारी उनके प्रति निर्णयात्मक अभिवृत्तियों के कारण उत्पन्न होता है। इनका निराकरण अनिर्णयात्मक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाकर, क्रियाशील सुनने की संप्रेशण क्षमता का विकास करके तथा तद्रुभूति का विकास करके स्वंय तथा पूर्वाग्रहों से जुड़ी नाकारात्मक ऊर्जा को समाप्त करके किया जा सकता है।

विद्यालयों में संभावित हस्तक्षेप

शांतिपूर्ण उन्मुखीकरण को प्रोत्साहित करने में जो अभिवृत्तियों तथा मूल्यों का विकास करता है, विद्यालय एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। यह वह स्थान है जो ''शांति के लिए संवर्द्धनस्थान'' होना चहिए, जहॉ

उत्साह, लगन तथा इच्छापूर्वक कार्य करने की संस्कृति का प्रतिनिधित्व हो ना कि भय, द्वंद तथा हिंसा उत्पन्न करने का परिवेश हो।

विद्यालयी गतिविधियाँ तथा प्रोजेक्टस

विद्यालयी जीवन में परिवर्तन लाने केलिए हमें बहुत बड़े प्रोजेक्ट प्रारंभ करने की आवश्यकता नहीं है आर न ही बहुत फंड चाहिए। विद्यालयों में होन वाली प्रतिदिन की गतिविधियों पूर्व शांति परिप्रेक्ष्य देकर भी परिवर्तन की प्रक्रिया को बढ़ाया जा सकता हैं। उदाहरणार्थ, प्रातःकाल की प्रार्थना सभा बहुत ही यांत्रिक तरीके से प्रारंभ होती है; इसे शांति तथा संतुलन के विषयानुसार नियोजित किया जा सकता है जिसमें नागरिकता, उत्तरदायित्व की भावना, पूर्वाग्रह तथा द्वंद का निवारण, न्याय के अंतर्गत सम्मिलत मुद्दे तथा लोकतंत्र के मूल्य आदि सम्मिलित हो ।

विद्यार्थियों को वाद-विवाद प्रतियोगिता, सेमिनार, नाचना, नाटक तथा अन्य प्रदर्शनियों, गाना तथा कविताओं को लिखने आदि में शांति संबंधी मुद्दों को सम्मिलित करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

महत्वपूर्ण दिनों जैसे - गणतंत्र दिवस, स्वतंत्रता दिवस, त्योहार तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय दिवस जैसे मानवाधिकार दिवस, बाल दिवस, अन्तर्राष्ट्रीय संघ दिवस, विकलांगों के लिए, पर्यावरण दिवस आदि विद्यालयों में मनाये जा सकते हैं जिसके अन्तर्गत शांति के संदेश को प्रमुख रूप से दिखाया जा सके।

कार्यक्रम, प्रोजेक्ट्स तथा उन गतिविधियों को प्रोत्साहित करना चाहिए जो महिलाओं, पर्यावरण, अपंग तथा निर्धन आदि लोगों के प्रति सम्मान को बढ़ाती हो।

पुस्तकालयों में शांति शिक्षा से संबंधित पुस्तकों तथा अन्य सामंग्री को व्यवस्थित करके एक अलग सेक्शन बनाया जा सकता हैं ।

शांति निर्माण में बच्चों को सम्मिलित करना

समान आयु वाले बच्चों के समूह बनाये जा सकते है जो द्वंद तथा अशांति से जुड़े अन्य तत्वों की सूचना एकत्र करे। इस रणनीति के अन्तर्गत बच्चों को शांति निर्माण का प्रतिनिधि बनाना सम्मिलित है ताकि उन्हें परिवर्तनकर्त्ता की लम्बी श्रृंखला के लिए तैयार किया जा सके जो शांति शिक्षक द्वारा किए गए प्रयासों को लागू करने में सहायता कर सके।

घर तथा विद्यालयी अंतरापृष्ठीय

व्यक्ति को प्रभावित करने वाले अन्य प्रभावों में, घर तथा परिवार सबसे अधिक शक्तिशाली हैं। घर तथा विद्यालय पर सभी शैक्षिक प्रयत्नों में माता-पिता को सम्मिलित होना वांछनीय है। घर तथा विद्यालय दोनों

ही वांछनीय परिवर्तनों को प्रारंभ करने तथा बनाये रखने में आवश्यक है।यह सत्य है कि माता-पिता तथा परिवार को विद्यालय द्वारा किए गए प्रयासों केलिए पूरक की तरह कार्य करना चाहिए।

एक शांति शिक्षक के रूप में बालकों की संवृद्धि में हस्तक्षेप करने के लिए परिवार के प्रभाव को जानना अवश्यक है। हालांकि अधिकतर शिक्षक माता-पिता की ऊँची अपेक्षाओं तथा व्यवसाय संबंधी चिंताओं से अवगत रहते हैं। इसके विपरीत कुछ परिवार ऐसा होते है जो अपनी जीविका कमाने के दबाव में बच्चों के अध्ययन तथा स्वास्थ्य को कोई महत्व नहीं देते हैं। अतः इन स्थितियों में कम से कम एक शांति शिक्षक जागरूकता कार्यक्रम की व्यवस्था कर सकते हैं।

समुदाय की सहभागिता

माता-पिता का स्थानीय समुदाय विद्यालय में कल्याण कार्यक्रमों को गतिशील बनाने में योगदान दे सकता है। हम अपने प्रयासों से अपने चारो ओर उपलब्ध संसाधनों की पहचान कर विभिन्न व्यवसाय के विशेषज्ञों जैसे-डॉक्टर, मनोवैज्ञानिक, इंजीनियर आदि को माता-पिता, बच्चों तथा शिक्षको से स्वास्थ्य, सम्प्रेषण, संबंधों के निर्माण, मातृत्व-पितृत्व तथा व्यवसाय-उन्मुखीकरण मुद्दों पर बोलने के लिए आमंत्रित कर सकते है।

मीडिया

मीडिया के अन्तर्गत प्रिंट, ऑडियो तथा वीडियो स्त्रोतों को जो हमें सूचना उपलब्ध कराते है, सम्मिलित किया जाता है। मीडिया हमारी जीवन-शैली का आन्तरिक तथा अविलगीय पक्ष हो गया है। यह कहा जाता है कि भारत में ग्रामीण बच्चों की पहुच स्वच्छ पेयजल की तुलना में टेलीविजन तक अधिक है।
वर्तमान समय में व्यक्तियों पर, विशेषकर बढ़ते हुए बच्चों तथा युवाओं तक मीडिया एक प्रभावी संसाधन है। उदाहरणार्थ, अपभाषा का प्रयोग समयानुसार परिवर्तित हो रहा है। पहले लोग एक दूसरे से मिलने पर सर झुका कर नमस्कार कहते थे, जिसे अब समकालीन ने प्रतिस्थापित कर दिया। हालांकि यह सत्य है कि किशोर तथा नवयुवक ही मीडिया से अधिक प्रभावित है, परन्तु यही समय अस्तित्व निर्माण का होता हैं।

एक शिक्षक के रूप में मीडिया के प्रभाव को आलोचनात्मक रूप से सोचने केलिए विद्यार्थियों को प्रेरित करना चाहिए। हमें उनकी सोच पर पड़ने वाले प्रभावों को खोजने में उनकी सहायता करनी होगी।
एक शिक्षक के रूप में शर्मानें के स्थान पर निश्चित समाचारों या रेडियो या टी0 वी0 कार्यक्रमों या फिल्म पर चर्चा केलिए अवसरों का निर्माण करना चाहिए।
एक शांति शिक्षक के रूप में शांति शिक्षा को वढ़ावा देने के लिए विद्यार्थियों को उपदेश देने के स्थान पर सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए तथा वर्तमान अभिवृत्तियों, गतिविधियों तथा प्रयासों के अन्य परिप्रेक्ष्य देने के लिए व्यवहार में परिवर्तन लाना चाहिए। विद्यार्थियों से सदैव प्रश्न पूछने चाहिए कि क्या सही तथा क्या गलत है और कम हिंसा तथा तनावपूर्ण सुझावों के लिए प्रेरित करना चाहिए।

एक शांति शिक्षक के रूप में हमें प्रयास जारी रखना होगा। हो सकता है कि ये छोटी-छोटी बूँदें हो परन्तु ये हमेशा छोटी नहीं रहेंगी तथा समय एवं धैर्य के साथ धीरे-धीरे बड़ी हो जाएंगी। जैसा कि मदर टेरेसा

(4175) ने कहा है ''हम स्वयं में अनुभव करते हैं कि हम जो कर रहे है, वह सागर में एक बूँद के समान है, परन्तु सागर की महत्ता उस बूंद की अभाव में कम हो जाएगी।'' अतः इन छोटे-छाटे प्रयासों की भी अपनी ही महत्ता है।

अभ्यास प्रश्न

8. कन्वेंशन ऑन द राइट ऑफ चाइल्ड किस वर्ष पारित हुआ?
9. संयुक्त राष्ट्र सभा में दशक 2004-2040 को किस अंतर्राष्ट्रीय दशक के रूप में घोषित किया गया है?

4.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि बाल्यावस्था में बालक को विभिन्न प्रकार के द्वंदों का सामना करना पड़ता है। बाल्यावस्था जीवन की वह अवस्था है जिसमें नन्हीं कली प्रस्फुटित होकर पुष्प्प बनने को तैयार हेाती है। जीवन का यह काल अनोखा काल है जिसमें बालक क्रियाशील रहता है, समूह में काम करता है और आवावेशी भी हो ा है तथा साथ ही वयस्क जीवन के लिए तैयार भी हेता हें इस अवस्था में बालक को घर तथा परिवार, विद्यालय, समाज एवं समुदाय में विभिन्न द्वंदों का सामना करना पड़ता है जो आगे चलकर उसके भविष्य का निर्माण करता है। इन इकाइयों में सामान्य वातावरण न मिलने के कारण बालक विस्थापित, हिंसात्मक, आक्रामक तथा सामाजिक अशांति को उत्पन्न करने का कारण बन जाता है। अतः एक शिक्षक के रूप में हमें न केवल विद्यालयी वातावरण बल्कि घर तथा विद्यालय, समाज एवं समुदाय के सहयोग से एक ऐसा महौल बालक को प्रदान करना होगा जो उसके द्वंदों को समाप्त कर उसे न केवल शांति ग्रहणकर्त्ता बल्कि शांति निर्माणकर्त्ता के रूप में तैयार कर सके। इस इकाई के अध्ययन से आप शांति निर्माणकर्त्ता भावी अध्यापकों के रूप में अपनी सहभागिता सुनिश्चत कर सकेंगे।

4.8 शब्दावली

1. **संज्ञानात्मक कुशलता-** संज्ञानात्मक कुशलता से तात्पर्य अधिगम कुशलताओं से है जैसे - अवधान, स्मरण तथा चिंतन
2. **अभिवृत्ति-** व्यक्ति के किसी वस्तु, व्यक्ति, क्रया एवं विचार आदि के प्रति मनोभाव को अभिवृत्ति कहते हैं।
3. **मूल्य-** व्यवहार के मानक अथवा सिद्धांत जो व्यक्ति को यह निर्णय लेने में सहायता करे कि जीवन में क्या महत्वपूर्ण है तथा क्या उचित अथवा अनुचित है।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. बाल्यावस्था, शैशवावस्था के बाद की अवस्था है जो 6 से 42 वर्ष तक होती है। इसमें बालक क्रियाशील रहता है, समुह में काम करता है और भावावेशी भी होता है, परन्तु व्यस्क जीवन में प्रवेश के लिए सफल प्रयास करता है।
2. हालिंगवर्थ नामक मनोवैज्ञानिक ने बाल्यावस्था को 'MORON HURDLE' की अवस्था कहा है।
3. द्वंद का सामान्य अर्थ है- विपरीत विचारों, इच्छाओं, उद्देश्यों आदि का विरोध। यह एक ऐसी कष्टदायक संवेदात्मक दशा है जिसमें व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जो उसके स्वंय के हितों और इच्छाओं के विरूद्ध कार्य करती है।
4. व्यक्ति अध्ययन एक ऐसी विधि है जिसमें किसी सामाजिक इकाई के जीवन की घटनाओं का अन्वेषण एवं विश्लेषण किया जाता है।
5. पिल्लों तथा बिल्ली के बच्चों को पत्थर मारना, फुलों की कलियाँ तोड़ना, उंगलियों के बीच तितलियाँ पकड़कर रखना, बच्चे द्वारा कुछ मांगने पर और अभिभावकों द्वारा न दे पाने पर उनको मारना आदि।
6. मीडिया अनजाने में ही हिंसा की संस्कृति को बढ़ावा देने में मुख्य भूमिका निभा रही है
7. मीडिया हिंसा के परिणामों को छिपाकर रखती है।
8. 1998
9. संयुक्त राष्ट्र की सामान्य सभा में दशक 2004-2010 को विश्व के बच्चों के लिए शांति की संस्कृति व अहिंसा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय दशक के रूप में घोषित किया गया है।

4.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गार्डिया, ए0 तथा पाठक, पी0 (2040). '' शांति शिक्षा एवं विद्यालयों में शांति संस्कृति की अवधारणा'' , भारतीय आधुनिक शिक्षा, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली
2. एन0 सी0 ई0 आर0 टी0 2006, नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क 2005. पोजिशन पेपर नेशनल फोकस ग्रुप ऑफ एजुकेशन फॉर पीस, नई दिल्ली
3. पाठक, पी0 डी0 (2008). भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएॅ, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा
4. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्. शांति के लिए शिक्षा. नई दिल्ली: राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् , 2002
5. वशिष्ठ, के0 सी0 (2046). शांति शिक्षा एवं सतत विकास. श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

6. यूनेस्को(2004), लर्निंग द वे टू पीस- ए टीचर्स गाइड टू ऐजुकेशन फॉर पीस, नई दिल्ली: यूनेस्को
7. यूनाइटेड नेशन जनरल एसेम्बली, 4998, दि कन्वेशन दि राइट्स ऑफ दि चाइल्ड

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. बाल्यावस्था तथा द्वंद की संकल्पना को समझाते हुए बाल्यावस्था में द्वंद के स्त्रोतों को वर्णन कीजिए।
2. द्वंदों को समाप्त कर शांति निर्माणकर्त्ता के रूप में शिक्षक की भूमिका की विवेचना कीजिए।